संशोधित संस्करण

याज्ञवल्क्यस्मृति

[भाषाटीका सहित]

श्रीपंडित गुरुप्रसादजी शास्त्री

टीकाकार

श्रीपंडित गिरिजाप्रसादजी द्विवेदी

संशोधक

लखनऊ

श्रीकेसरीदास सेठ के प्रबन्ध से

नवलकिशोर-प्रेस में मुद्रित और प्रकाशित

छठी बार] [सन् १९२९ ई०

याज्ञवल्क्य स्मृति

भाषाटीका सहित

टीकाकार

श्रीपंडित गुरुप्रसादजी शास्त्री

संशोधक

श्रीपंडित गिरिजाप्रसादजी द्विवेदी

लखनऊ

श्रीकेसरीदास सेठ द्वारा

नवलकिशोर-प्रेस में मुद्रित होकर प्रकाशित

छठी बार] [सन् १९३० ई०

भूमिका।

वेद को श्रुति और धर्मशास्त्र को स्मृति कहते हैं । इसलिये मनुस्मृति का अर्थ मनु का बनाया धर्मशास्त्र हुआ । यही याज्ञवल्क्यस्मृति का भी अर्थ है ।

धर्मशास्त्र में उन अनेक कर्मों का विधान कहा है, जिनसे मनुष्य स्वर्ग और मोक्ष को प्राप्त होता है । यह बात एक श्लोक में स्पष्ट है:—

'प्राप्नुवन्ति यतः स्वर्गमोक्षौ धर्मपरायणे ।
मानवा मुनिभिर्नूनं स धर्म इति कथ्यते ॥'

सारांश यह है कि जिस कर्म के करने से शारीरिक और मानसिक भावों की उन्नति और सत्त्वगुण की वृद्धि हो, वही धर्म पदार्थ है। इसके विरुद्ध, जिस कर्म के करने से तमोगुण के क्रोध, मोह आदि भावों की उन्नति हो, वही अधर्म है । धारण के लिये है इसलिये धर्म कहा गया है । इसको धारण किये विना लौकिक और पारलौकिक सत्य सुख मनुष्य को कभी नहीं मिल सकते । धर्म के सहारे जो सुख उत्पन्न होता है, वह चिरकाल तक स्थिर रहता है। धर्म के अनेक अङ्गों में, किसी एक का भी पूर्ण रीति से साधन अर्थ, काम और मोक्ष देने में समर्थ होता है।

यही शास्त्रों का सिद्धान्त और ऋषि-मुनियों की आज्ञा है । धर्म ही के सहारे अनादिकाल से संसार ठहरा है । धर्म क्या है? उसके कितने विभाग हैं? कैसे वे धारण किए जाते हैं?

इत्यादि विषयों का मनु आदि स्मृतियों में विस्तार से प्रतिपादन किया गया है। याज्ञवल्क्यस्मृति के आदि में 'मन्वात्रिविष्णुहारीत–' इत्यादि कई स्मृतियों के नाम हैं। इससे निश्चित होता है कि इन सब स्मृतियों को देखकर, सबका सारभूत याज्ञवल्क्यजी ने अपनी स्मृति बनाई है। मनु के बाद याज्ञवल्क्यजी का ही नाम लिया जाता है। वे बड़े महर्षि, ब्रह्मज्ञानी और योगी थे। उनका स्थान ऋषियों में बहुत ऊँचा माना गया है। इसलिये उनकी स्मृति भी सर्वमान्य है।

इस स्मृति के सिवा, आप वाजसनेयिसंहिता और शतपथ-ब्राह्मण के भी आविर्भावकर्ता हैं। एक योगशास्त्र को भी आपने बनाया है। बृहदारण्यक-उपनिषद् को आपने सूर्यभगवान् से प्राप्त किया था। यह बात स्वयं इस स्मृति में लिखी है:—

'ज्ञेयं चारण्यकमहं यदादित्यादवाप्तवान्।
योगशास्त्रं च मत्प्रोक्तं ज्ञेयं योगमभीप्सता ॥'

(प्रायश्चित्ताध्याय, श्लो० १०)

पाणिनिसूत्रों के वार्तिककार सुप्रसिद्ध कात्यायन ने अपने सर्वानुक्रमणीनामक ग्रन्थ में—

'शुक्लानि यजूंषि भगवान् याज्ञवल्क्यो यतः प्राप तं विवस्वन्तम्।

और शतपथब्राह्मण के शेष भाग में लिखा है—

'आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूंषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येनाख्यायन्त।'

इन सब लेखों से याज्ञवल्क्य के प्रकट किये हुए वैदिक भाग का पता पूरा मिलता है।

याज्ञवल्क्य का समय ।

पाणिनि ने अपने सूत्रों में वाजसनेयी, शतपथ और याज्ञवल्क्य इन नामों के विषय में कुछ नहीं लिखा । 'पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु' इस सूत्र का वार्तिक कात्यायन ने इस प्रकार लिखा है—

'पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु याज्ञवल्क्यादिभ्यः प्रतिषेधस्तुल्यकालत्वात् ।'

और पतञ्जलि ने महाभाष्य में लिखा है—

'याज्ञवल्क्यानि ब्राह्मणानि । सौलभानीति । किं कारणम् । तुल्यकालत्वात् । एतान्यपि तुल्यकालत्वात् ।

इन लेखों से स्पष्ट हुआ कि पाणिनि के बाद याज्ञवल्क्य के ब्राह्मण ग्रन्थ आदि प्रसिद्ध हुए और वे कात्यायन के समकालिक थे । कात्यायन का समय पाणिनि के बहुत पीछे और पतञ्जलि से पहले, ईसा के पूर्व प्रायः चौथी सदी में ऐतिहासिकों ने निश्चित किया है* ।

कात्यायन के समकालिक ही याज्ञवल्क्य हैं । तभी उस समय इनकी प्राचीनों में गणना नहीं हुई । कात्यायन बड़े प्रतिष्ठित वैदिक ऋषि थे । इन्होंने यजुर्वेद का माध्यन्दिन प्रातिशाख्य, सर्वानुक्रमणी, वैदिक कल्पसूत्र और सूत्रवार्तिकों की रचना की है ।

---

* पाणिनि-कात्यायन-पतञ्जलि के समय-निर्णय का पूरा विचार गोल्डस्टुकर-कृत 'पाणिनि' नामक ग्रन्थ और सुप्रसिद्ध डाक्टर भाण्डारकर लिखित 'पतञ्जलि का समय' अंग्रेज़ी में और इन सबके मतों की आलोचना स्वर्गीय बाबू रजनीकान्त गुप्त के 'पाणिनि' नामक बँगला निबन्ध में देखना चाहिए । और भी कई लेख लोगों ने लिखे हैं—पर सबके मूल उक्त ग्रन्थ ही हैं ।

याज्ञवल्क्य और उनकी ब्रह्मवादिनी मैत्रेयी तथा गार्गी नामक धर्मपत्नियों का उपाख्यान, बृहदारण्यक उपनिषद् में बड़ी उत्तम रीति से वर्णित है।

मैत्रेयी।

यह मित्र नामक विख्यात पण्डित की कन्या थी। बाल्यकाल से ही पिता से पूर्ण शिक्षा पाकर विदुषी हो गई और पिता ने याज्ञवल्क्य के साथ उसका विवाह कर दिया था। मैत्रेयी का ब्रह्मविद्यासम्बन्धी गूढ विचार जिन्होंने बृहदारण्यक में पढ़ा होगा, वे ही उसके ज्ञान-गाम्भीर्य का पता पा सकते हैं।

जिस समय महर्षि याज्ञवल्क्य वानप्रस्थ-आश्रम जानेवाले थे, उसी समय मैत्रेयी से उनके साथ तर्क हो गया। महर्षि ने अपनी सम्पत्ति के दो भाग करके दोनों स्त्रियों से ले लेने को कहा, यही तर्क की जड़ है। तब मैत्रेयी ने सांसारिक सम्पत्ति की असारता वर्णन करके कहा—क्या मैं इस सम्पत्ति से मोक्ष को प्राप्त हूँगी? महर्षि ने उत्तर दिया 'नहीं'। यह सुनकर वह बोल उठी—

'येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्याम्?'

अर्थात् जिस धन को पाकर मैं अमर नहीं हो सकती, उस धन को लेकर क्या करूँगी?। इस प्रकार लम्बा संवाद है।

गार्गी।

यह मैत्रेयी की सपत्नी थी। उसके पिता का नाम रचक्नु था। रचक्नु भी मुनि थे। जिन दिनों मैत्रेयी और गार्गी ब्रह्मविद्या के विचार में मग्न रहती थीं, उन्हीं दिनों में राजा जनक भी ब्रह्मविद्या के विचार में लगे रहते थे। उनको जब कभी किसी

कठिन विषय में संदेह होता था, तभी वे अनेक विद्वान् ऋषि-मुनियों को बुलाकर सभा किया करते थे।

राजा जनक ने एक बार यज्ञ किया। उसमें एक हज़ार गायों के दान करने का विचार किया। सब गायों के सींगों पर दस-दस अशर्फ़ियाँ बाँध दीं। इस बड़े यज्ञ में दूर-दूर के ब्रह्मज्ञानी निमन्त्रित होकर आये। यज्ञ के अन्त में जनक ने पण्डितमण्डली से कहा—आप लोगों में जो सबसे अधिक ब्रह्मज्ञानी हो, वही इन दस हज़ार गायों को पा सकता है। यह सुनकर कोई भी लेने को न उठा। हज़ारों ब्रह्मज्ञानियों में सबसे अधिक होने का कौन साहस करता?

जब कोई न उठा, तो याज्ञवल्क्य गायें लेने को तैयार हुए। यह देखकर, पण्डितमण्डली का मन कुछ मलीन हो गया, पर किसी ने कुछ न कहा। याज्ञवल्क्य सबसे श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी हैं, यह सभी मानते थे। इतने में उस सभा से गार्गी उठीं और महर्षि की ओर देखकर कहा—क्या इस भरी सभा में सबसे अधिक ब्रह्मज्ञानी आप ही हैं? महर्षि ने उत्तर दिया 'हाँ'। तब गार्गी ने कहा—इसको सिद्ध करना चाहिए।

बस, लगे प्रश्नोत्तर होने। गार्गी के प्रश्नों ने महर्षि को व्याकुल कर दिया। सभा देखकर चकित हो गई और सब लोग ब्रह्मवादिनी गार्गी की प्रशंसा करने लगे।

इस प्रकार, लम्बे-चौड़े उपाख्यान बड़े ही महत्त्व के हैं, जिनसे प्राचीन समय के विद्या-विज्ञान का विकाश पूर्ण रीति से ज्ञात होता है।

याज्ञवल्क्यस्मृति की टीकाएँ।

इस स्मृति पर अपरार्क, विश्वरूप, विज्ञानेश्वर और बाल-

म्भट्टी-कृत टीकाएँ प्रसिद्ध हैं। इनमें विज्ञानेश्वर-कृत 'मिताक्षरा' टीका है। यह बहुत प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित टीका है। यह संस्कृत-विद्यालयों में पढ़ाई जाती है। वास्तव में बिना गुरु से पढ़े, इसकी व्यवस्था की उलझन दूर नहीं होती।

श्रीशङ्कराचार्य के मतानुयायी विज्ञानेश्वर बड़े प्रतिष्ठित विद्वान् हो गये हैं। मिताक्षरा की एक हस्तलिखित पुस्तक १३८९ की लिखी, प्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ डाक्टर बूलर साहब को मिली थी। उसके अन्त में विज्ञानेश्वर के विषय में दो चार श्लोक लिखे थे। उसके मूल पर डाक्टर बूलर का अनुमान है कि विज्ञानेश्वर एकादश किंवा द्वादश शताब्दी में थे। विज्ञानेश्वर ने धारेश्वर का नाम लिखा है, जो सम्भवतः धारा के प्रसिद्ध भोज ही हैं। भोज का समय निश्चित ही है। इसलिए ११ वीं सदी में (अर्थात् आज से ८०० वर्ष पूर्व) मिताक्षरा का बनना सिद्ध होता है।

उक्त श्लोकों से यह भी ज्ञात होता है कि विज्ञानेश्वर दक्षिण देश के प्राचीन कल्याणपुर (वर्तमान कल्याणी) नामक स्थान में, किसी विक्रमादित्य के राज्यकाल में थे—प्रथम किंवा दूसरे विक्रमादित्य के नहीं। यह कल्याणपुर स्थान बहुत दिनों तक चालुक्यवंशीय राजाओं के अधिकार में भी था। यह सब वृत्तान्त डाक्टर बूलर साहब ने रायल एशियाटिक सोसाइटी बंबई के, सन् १८६८ के जर्नल में प्रकाशित किया था।

मिताक्षरा का इस देश में तो आदर बहुत है ही, अंग्रेजी में भी इसके दो तीन अनुवाद हुए हैं, जिससे विदेशीय पण्डितों को भी इसकी प्रामाणिकता विदित है।

बहुतों का अनुमान था कि बालम्भट्टी को बनानेवाली इस

नाम की कोई विदुषी स्त्री थी, परन्तु काशीप्रान्त में प्रचलित जन-श्रुतियों से, उस स्त्री के पति वैद्यनाथ पायगुण्डे-कृत वह सिद्ध होती है। ऐतिहासिकों का निश्चय है कि अठारहवीं सदी में पायगुण्डेजी काशी में वर्तमान थे। बालम्भट्टी टीका बहुत बड़ी है, उसको बहुत से धर्मशास्त्रीय प्रमाण वाक्यों का भण्डार समझना चाहिए। इस देश में, सांप्रत में, इस ग्रन्थ को प्रकाशित करने की चेष्टा हो रही है।

याज्ञवल्क्यस्मृति का मिताक्षरा के साथ हिन्दी अनुवाद ठीक ठीक अभी प्रकाशित नहीं हुआ। बंबई में दो एक निकले हैं, परन्तु वे मूल से भी कठिन और जटिल हैं—उनसे कोई लाभ नहीं उठा सकते। हाँ, मूलस्मृति के दो एक उत्तम अनुवाद अवश्य प्रकाशित हुए हैं।

यह हिन्दी अनुवाद जिसका मैंने शोधन किया है, लाहौर ओरियण्टल कालेज के संस्कृताध्यापक स्वर्गवासी पं० श्रीगुरुप्रसाद शास्त्रीजी का किया हुआ है। इसका प्रथम संस्करण अब से कोई २७ वर्ष पहले प्रकाशित हुआ था। इसकी भाषा पुराने ढंग की थी, जिसे मैंने बहुत कुछ अदल-बदल करके सीधी बोलचाल की भाषा का रूप दे दिया है और कहीं-कहीं नोट भी लिख दिये हैं। आशा है, हिन्दी-प्रेमी इस अनुवाद से याज्ञवल्क्यस्मृति के गूढ भावों को सहज ही समझ सकेंगे।

नवलकिशोर-विद्यालय, गोमतीतट, लखनऊ. ७।१।१५ — निवेदक गिरिजाप्रसाद द्विवेदी

श्रीगणेशाय नमः

याज्ञवल्क्यस्मृतिः

आचाराध्यायः ।

योगीश्वरं याज्ञवल्क्यं संपूज्य मुनयोऽब्रुवन् ।
वर्णाश्रमेतराणां नो ब्रूहि धर्म्मानशेषतः ॥ १ ॥
मिथिलास्थः स योगीन्द्रः क्षणं ध्यात्वा ब्रवीन्मुनीन् ।
यस्मिन् देशे मृगः कृष्णस्तस्मिन्धर्म्मान्निबोधत ॥ २ ॥

ॐ नमः शिवाय ।

उपक्रमप्रकरण ।

किसी समय सोम श्रवस् आदि मुनियों ने योगिश्रेष्ठ याज्ञवल्क्य मुनि की भली भाँति पुजा करके पूछा कि महाराज! ब्राह्मण आदि वर्ण ब्रह्मचर्य आदि आश्रम और दूसरे अनुलोमज प्रतिलोमज संकर जातियों का सम्पूर्ण धर्म हमलोगों से कहिये ॥ १ ॥ मिथिला नगरी में रहनेवाले योगीश्वर ने क्षणभर ध्यानकर, मुनियों से कहा— जिस देश में काले हिरण होते हैं, उस देश के धर्म सुनो ॥ २ ॥

पुराणन्यायमीमांसाधर्म्मशास्त्रांगमिश्रिताः ।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्म्मस्य च चतुर्द्दश ॥ ३ ॥
मन्वत्रिविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनोंगिराः ।
यमापस्तम्बसंवर्त्ताः कात्यायनबृहस्पती ॥ ४ ॥

अठारह पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र और व्याकरण आदि छः अंगों के सहित चारों वेद ये चौदह विद्या के अर्थात् पुरुपार्थ ज्ञान के और धर्म के कारण हैं ॥ ३ ॥ मनु (१) अत्रि (२) विष्णु (३) हारीत (४) याज्ञवल्क्य (५) भृगु (६) अङ्गिरा (७) यम (८) आपस्तम्ब (९) संवर्त्त (१०) कात्यायन (११) बृहस्पति (१२) ॥ ४ ॥

पराशरव्यासशङ्खलिखितादक्षगौतमौ ।
शातातपो वशिष्ठश्च धर्मशास्त्रप्रयोजकाः ॥ ५ ॥
देशकालउपायेन द्रव्यं श्रद्धासमन्वितम् ।
पात्रे प्रदीयते यत्तत्सकलं धर्मलक्षणम् ॥ ६ ॥

पराशर (१३) व्यास (१४) शङ्खलिखित (१५) दक्ष (१६) गौतम (१७) शातातप (१८)और वशिष्ठ (१९) ये धर्मशास्त्र के मुख्य बनानेवाले हैं ॥ ५ ॥ पवित्रदेश और अच्छे काल में जो वस्तु सत्पात्र को श्रद्धापूर्वक दी जाती है वह और इसी प्रकार के सब काम धर्म के लक्षण हैं ॥ ६ ॥

श्रुतिस्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
सम्यक् संकल्पजः कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम् ॥ ७ ॥
इज्याचारदमाहिंसा दानं स्वाध्यायकर्म च ।
अयन्तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम् ॥ ८ ॥

श्रुति अर्थात् वेद स्मृति धर्मशास्त्र धर्मशीललोग जो काम करते आये हों, अपनी आत्मा को जो प्रिय है और श्रुति संकल्प से उत्पन्न जो कामना है ये सब धर्म के मूल हैं ॥ ७ ॥ और यज्ञ, सदाचार इन्द्रियों का दमन, जीववध न करना, दान और वेद

आदि का पढ़ना इन सबोंसे बड़ा धर्म यह है कि योगद्वारा आत्मा का दर्शन करना ॥ ८ ॥

चत्वारो वेदधर्मज्ञाः पर्षत्त्रैविद्यमेव वा ।
सा ब्रूते यः स धर्मः स्यादेको वाध्यात्मवित्तमः ॥ ९ ॥

वेद और धर्म के जाननेवाले चार मनुष्य या तीन वेद जाननेवाले तीन मनुष्य की पर्षत् होती है, वह अथवा अध्यात्म विद्या का वेदान्त योग आदि जाननेवाला एक ही मनुष्य जो कहे वही धर्म कहलाता है ॥ ९ ॥

उपक्रमप्रकरणं समाप्तम् ।

ब्रह्मचारिप्रकरणम् ।

ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रा वर्णास्त्वाद्यास्त्रयो द्विजाः ।
निषेकादिश्मशानान्तास्तेषां वै मन्त्रतः क्रियाः ॥ १० ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण हैं। इनमें पहले तीन को द्विज कहते हैं उनका गर्भाधान से लेकर अन्तक्रिया तक सब संस्कार मन्त्र से होते हैं ॥ १० ॥

गर्भाधानमृतौ पुंसः सवनं स्यन्दनात्पुरा ।
षष्ठेऽष्टमे वा सीमन्तः प्रसवे जातकर्म च ॥ ११ ॥
अहन्येकादशे नाम चतुर्थे मासि निष्क्रमः ।
षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि चूडा कार्या यथाकुलम् ॥ १२ ॥

रजोदर्शनकाल में, गर्भाधान, गर्भ के डोलने से पूर्व ही पुंसवन, छठे वा आठवें महीने में सीमन्त और प्रसव होने पर जातकर्म ॥ ११ ॥

ग्यारहवें दिन नामकरण, चौथे महीने निष्क्रमण, छठे महीने अन्नप्राशन और अपने कुल की रीति के अनुसार, तीसरे या पांचवें वर्ष चूड़ाकर्म करे ॥ १२ ॥

एवमेनः शमं याति बीजगर्भसमुद्भवम् ।
तूष्णीमेताः क्रियाः स्त्रीणां विवाहस्तु समन्त्रकः ॥ १३ ॥
गर्भाष्टमेऽष्टमे * वाब्दे ब्राह्मणस्योपनायनम् ।
राज्ञामेकादशे सैके विशामेके यथाकुलम् ॥ १४ ॥

इस प्रकार बीज और गर्भ की अपवित्रता दूर होती है ये सब कर्म स्त्रियों के विना मन्त्र पढ़े होते हैं, केवल उनके व्याह में मन्त्र पढ़े जाते हैं ॥ १३ ॥ गर्भ से या जन्म से आठवें वर्ष ब्राह्मण का, क्षत्रियों का ग्यारहें और वैश्यों का बारहें या जब उनके कुल में होता हो तब यज्ञोपवीत करना चाहिये ॥ १४ ॥

उपनीय गुरुः शिष्यं महाव्याहृतिपूर्वकम् ।
वेदमध्यापयेदेनं शौचाचारांश्च शिक्षयेत ॥ १५ ॥
दिवासन्ध्यासु कर्णस्थब्रह्मसूत्र उदङ्मुखः ।
कुर्यान्मूत्रपुरीषे तु रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः ॥ १६ ॥

शिष्य का यज्ञोपवीत करके उसको गुरु महाव्याहृति सहित वेद पढ़ावे, शौच (द्रव्यशुद्धि) और सदाचार भी सिखावे ॥ १५ ॥ दिन में और सांझ सवेरे जनेऊ कान पर चढ़ा के उत्तरमुख होकर मूत्र और शौच करे और रात को दक्षिणमुख होकर करे ॥ १६ ॥

गृहीतशिश्नश्चोत्थाय मृद्भिरभ्युद्धृतैर्जलैः ।

---

* आश्वलायन गृह्यसूत्र में लिखा है:—'अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत् गर्भाष्टमे वैकादशे क्षत्रियम् द्वादशे वैश्यम्' ।

गन्धलेपक्षयकरं कुर्य्याच्छौचमतन्द्रितः ॥ १७ ॥
अन्तर्जानुशुचौ देशे उपविष्ट उदङ्मुखः ।
प्राग्ब्राह्मेण तीर्थेन द्विजो नित्यमुपस्पृशेत् ॥ १८ ॥

(यदि अपने पास जल न हो तो) मूत्रद्वार हाथ से पकड़ कर, जलाशयतक जाकर वहाँ जल और मिट्टी लेकर सावधानी से इतना धोवे कि जिसमें मल की गन्ध और चिकनाई चली जावे ॥१७॥ प्रतिदिन, द्विज जानुओं के वीच हाथ रखकर पवित्र स्थल में उत्तर-मुख या पूर्वमुख वैठे और ब्रह्मतीर्थ से आचमन करे ॥ १८ ॥

कनिष्ठादेशिन्यंगुष्ठमूलान्यग्रं करस्य च ।
प्रजापतिपितृब्रह्मदेवतीर्थान्यनुक्रमात् ॥ १९ ॥
त्रिःप्राश्यापोद्विरुन्मृज्य खान्यद्भिः समुपस्पृशेत् ।
अद्भिस्तु प्रकृतिस्थाभिर्हीनाभिः फेनबुद्बुदैः ॥२०॥

कनिष्ठिका तर्जनी और अँगूठा इनका मूलभाग और हाथ का अग्रभाग ये सव क्रम से प्रजापतितीर्थ, पितृतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ और देवतीर्थ कहलाते हैं ॥ १९ ॥ तीनबार जल ब्रह्मतीर्थ से पीवे और दोवार मुँह धोवे अनन्तर नाक, कान, आँख और मुँह इन सवोंमें जल स्पर्श करे वह जल निर्मल हो जिसमें फेन और वुलवुले न हों ॥ २० ॥

हृत्कण्ठतालुगाभिस्तु यथासंख्यं द्विजातयः ।
शुद्धेरन् स्त्री च शूद्रश्च सकृत्स्पृष्टाभिरन्ततः ॥ २१ ॥
स्नानमब्दैवतैर्मन्त्रैर्मार्ज्जनं प्राणसंयमः ।
सूर्य्यस्य चाप्युपस्थानं गायत्र्याः प्रत्यहं जपः ॥२२॥

उसको ब्राह्मणादि तीनों वर्ण क्रम से इतना-इतना पीवें कि जो हृदय कण्ठ और तालु तक पहुँच जावे स्त्री और शूद्र तो ओठों में जल स्पर्श करने ही से शुद्ध होते हैं ॥ २१ ॥ स्नान, वेदमन्त्रों से मार्जन, प्राणायाम, सूर्य का उपस्थान और गायत्री का जप, प्रतिदिन करे ॥ २२ ॥

गायत्रीं शिरसा सार्द्धं जपेद् व्याहृतिपूर्व्विकाम् ।
प्रतिप्रणवसंयुक्तां त्रिरयं प्राणसंयमः ॥ २३ ॥
प्राणानायम्य संप्रोक्ष्य ऋचेनाऽब्दैवतेन तु ।
जपन्नासीत सावित्रीं प्रत्यगातारकोदयात् ॥ २४ ॥

शिरोमन्त्र, महाव्याहृति और सवोंमें प्रणव जोड़ के गायत्री को तीनबार श्वास रोककर जपे तो एक प्राणायाम होता है ॥ २३ ॥ प्राणायाम करके मार्जन के मंत्र से शिर पर जल छिड़ककर, सन्ध्या-समय में, जबतक तारे निकल आवें गायत्री जपता रहे ॥ २४ ॥

सन्ध्यां प्राक् प्रातरेवेह तिष्ठेदासूर्य्यदर्शनात् ।
अग्निकार्य्यं ततः कुर्य्यात्सन्ध्ययोरुभयोरपि ॥ २५ ॥
ततोऽभिवादयेद् वृद्धानसावहमिति ब्रुवन् ।
गुरुञ्चैवाप्युपासीत स्वाध्यायार्थं समाहितः ॥ २६ ॥

इसी प्रकार प्रातःसंध्या की भी सूर्योदय तक उपासना करे, अनन्तर दोनों सन्ध्याओं में अग्निहोत्र करे ॥ २५ ॥ उसके बाद वृद्धों को अपना नाम लेकर प्रणाम करे और स्वस्थचित्त होकर पढ़ने के लिये गुरु के निकट जावे ॥ २६ ॥

आहूतश्चाप्यधीयीत लब्धं चास्मै निवेदयेत् ।

हितं चास्याचरेन्नित्यमनोवाकायकर्मभिः ॥ २७ ॥
कृतज्ञाद्रोहिमेधाविशुचिकल्पानसूयकाः ।
अध्याप्याधर्मतः साधु शक्ताप्तज्ञानवित्तदाः ॥ २८ ॥

गुरु बुलावे तो पढ़ने को जावे जो मिले सो गुरु को निवेदन करे और मन वाणी और कर्म से उसका हितसाधन करे ॥ २७॥ जो उपकार मानें, वैर न करें, बुद्धिमान् हों, शुचि हों, अनिन्दक होवें और जो धन या ज्ञान दें ऐसे ही सब धर्म से पढ़ाने योग्य हैं ॥ २८ ॥

दण्डाजिनोपवीतानि मेखलाञ्चैव धारयेत् ।
ब्राह्मणेषु चरेद्भैक्ष्यमनिन्द्येष्वात्मवृत्तये ॥ २९ ॥
आदिमध्यावसानेषु भवच्छब्दोपलक्षिता ।
ब्राह्मणक्षत्रियविशां भैक्ष्यचर्या यथाक्रमम् ॥ ३० ॥

ब्रह्मचारी पलाश आदि दण्ड, मृगचर्म, यज्ञोपवीत और मेखला धारण करे और अपनी वृत्ति के लिये शुद्ध ब्राह्मणों के घर भिक्षा माँगे ॥ २९ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य क्रम से आदि मध्य और अन्त में भवत् शब्द कहकर भिक्षा माँगे* ॥ ३० ॥

कृताग्निकार्यो भुञ्जीत वाग्यतो गुर्वनुज्ञया ।
आपोशानक्रियापूर्वं सत्कृत्यान्नमकुत्सयन् ॥ ३१ ॥
ब्रह्मचर्ये स्थितो नैकमन्नमद्यादनापदि ।
ब्राह्मणः काममश्नीयाच्छ्राद्धे व्रतमपीडयन् ॥ ३२ ॥

अग्निहोत्र के बाद मौन होकर आचमन करके भोजन करे

* ब्राह्मण ब्रह्मचारी 'भवति ! भिक्षां देहि' ऐसा बोलकर भीख माँगे ।

और उस अन्न की निन्दा न करे, वरन सत्कार करे ॥ ३१ ॥ आपत्काल न हो तो ब्रह्मचारी एक के घर से माँग के अन्न न खावे और ब्राह्मण ब्रह्मचारी श्राद्ध में नेवता चाहे जितना खावे उसका व्रत नहीं बिगड़ता ॥ ३२ ॥

मधुमांसाञ्जनोच्छिष्टशुक्तस्त्रीप्राणिहिंसनम् ।
भास्करालोकनाश्लीलपरिवादांश्च वर्जयेत् ॥ ३३ ॥
स गुरुर्यः क्रियाः कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति ।
उपनीय दद्वेदमाचार्यः स उदाहृतः ॥ ३४ ॥

ब्रह्मचारी मधु मांस न खावे, अञ्जन और तैल आदि न लगावे (गुरु को छोड़) किसी का जूठा न खाय, कठोर वचन, स्त्रीसंग, जीवहिंसा, साँझ सबेरे सूर्य का देखना, लज्जा के वचन बोलना, दूसरे की निन्दा करनी इत्यादि बातों को छोड़ दे ॥ ३३ ॥ जो ब्रह्मचारी को (गर्भाधान से लेके उपनयन पर्यन्त) क्रिया यथाविधि करके वेद पढ़ाता रहे उसको गुरु और जो केवल यज्ञोपवीत करके वेद उसे पढ़ाता है उसको आचार्य कहते हैं ॥ ३४ ॥

एकदेशमुपाध्याय ऋत्विग्यज्ञकृदुच्यते ।
एते मान्या यथापूर्वमेभ्यो माता गरीयसी ॥ ३५ ॥
प्रतिवेदं ब्रह्मचर्यं द्वादशाब्दानि पञ्च वा ।
ग्रहणान्तिकमित्येके केशान्तश्चैव षोडशे ॥ ३६ ॥

जो थोड़ा-सा वेद पढ़ावे वह उपाध्याय और जो यज्ञ करावे वह ऋत्विक् कहलाता है इनमें जो जो पहले पढ़े हैं वे पिछलेवालों से अधिक मान्य हैं और इन सबोंसे माता श्रेष्ठतम है ॥ ३५ ॥ हर एक वेदों के पढ़ने में बारह वर्ष वा पांच वर्ष ब्रह्मचर्य

करना चाहिये, कोई कहते हैं पाठ समाप्त तक ब्रह्मचर्य करके शांतकर्म ब्राह्मण का सोलहवें वर्ष करना चाहिये ॥ ३६ ॥

आषोडशाद्द्वाविंशाच्चतुर्विंशाच्च वत्सरात्।
ब्रह्मक्षत्रविशां काल औपनायनिकः परः ॥ ३७ ॥
अत ऊर्ध्वं पतन्त्येते सर्वधर्मबहिष्कृताः।*
सावित्रीपतिता व्रात्या व्रात्यस्तोमादृते क्रतोः ॥ ३८ ॥

सोलह, बाईस और चौबीस वर्ष तक क्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के उपनयन की परम अवधि है ॥ ३७ ॥ इसके बाद ये पतित होकर सब धर्मों से रहित होते हैं सावित्री पतित, संस्कारहीन यदि व्रात्यस्तोम यज्ञ न करें तो पतित गिने जाते हैं ॥ ३८ ॥

मातुर्यदग्रे जायन्ते द्वितीयं मौञ्जिबन्धनात्।
ब्राह्मणक्षत्रियविशस्तस्मादेते द्विजाः स्मृताः ॥ ३९ ॥
यज्ञानां तपसां चैव शुभानां चैव कर्मणाम्।
वेद एव द्विजातीनां निःश्रेयसकरः परः ॥ ४० ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इस हेतु से द्विज कहे जाते हैं कि उनका एक जन्म माता से और दूसरा मौंजीबंधन से गिना जाता है ॥ ३९ ॥ यज्ञ, तप और सब शुभकर्मों से द्विजों का बड़ा उपकार करनेवाला वेदही है ॥ ४० ॥

मधुना पयसा चैव स देवांस्तर्पयेद् द्विजः।
पितॄन्मधुघृताभ्यां च ऋचोऽधीते च योऽन्वहम् ॥ ४१ ॥

---

* 'आषोडशाद् ब्राह्मणस्यानतीतः काल आद्वाविंशात् क्षत्रियस्य आचातुर्विंशाद् वैश्यस्य। अत ऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवन्ति'। आश्व० गृह्यसूत्र।

यजूंषि शक्तितोऽधीते योऽन्वहं स घृतामृतैः ।
प्रीणाति देवानाज्येन मधुना च पितृंस्तथा ॥४२॥

जो द्विज प्रतिदिन ऋग्वेद पढ़े वह मधु और दूध से देवताओं का और मधु और घी से पितरों का तर्पण करे ॥ ४१ ॥ प्रतिदिन यजुर्वेद पढ़नेवाले घी और जल से देवताओं का और घी, मधु से पितरों का तर्पण करें ॥ ४२ ॥

स तु सोमघृतैर्देवांस्तर्पयेद्योऽन्वहं पठेत् ।
सामानि तृप्तिं कुर्याच्च पितॄणां मधुसर्पिषा ॥४३॥
मेदसा तर्पयेद्देवानथर्वाङ्गिरसः पठन् ।
पितृंश्च मधुसर्पिर्भ्यामन्वहं शक्तितो द्विजः ॥४४॥

सामवेदपाठी सोमलता के रस और घी से देवताओं का और मधु, घी से पितरों का तर्पण करे ॥ ४३ ॥ अथर्वाङ्गिरा वेद पढ़नेवाले, मेद से देवताओं का और मधु, घृत से पितरों का अपनी शक्ति के अनुसार, प्रतिदिन तर्पण करें ॥ ४४ ॥

वाकोवाक्यं पुराणं च नाराशंसीश्च गाथिकाः ।
इतिहासांस्तथाविद्याः शक्त्याऽधीते हि योऽन्वहम् ४५
मांसक्षीरौदनमधुतर्पणं स दिवौकसाम् ।
करोति तृप्तिं कुर्याच्च पितॄणां मधुसर्पिषा ॥ ४६ ॥

जो वाकोवाक्य (वेदों के प्रश्नोत्तर) पुराणनाराशंसी (रुद्रदैवतमश्च) गाथिका (इन्द्रयज्ञप्रभृतिके) इतिहास और (वारुणीप्रभृति) विद्या अपनी शक्ति अनुसार नित्य नित्य पढ़ते हैं ॥ ४५ ॥ वे मांस, दूध, भात और मधु से देवताओं का तर्पण करें और पितरों का मधु, घी से करें ॥ ४६ ॥

ते तृप्तास्तर्पयन्त्येनं सर्वकामफलैः शुभैः।
यं यं क्रतुमधीतेऽसौ तस्य तस्याप्नुयात्फलम् ॥४७॥
त्रिर्वित्तपूर्णपृथिवीदानस्य फलमश्नुते।
तपसो यत्परस्येह नित्यं स्वाध्यायवान् द्विजः ॥४८॥

ये देव और पितर तृप्त होकर तर्पण करनेवाले की सब कामनाएँ पूरी करते हैं और जिस जिस यज्ञ को जो पढ़ता है वह उस उसका फल पाता है ॥ ४७ ॥ जो द्विज नित्य वेद पढ़ता है वह धन से भरी हुई सारी पृथ्वी के तीन बार दान और बड़े उच्च तप का फल पाता है ॥ ४८ ॥

नैष्ठिको ब्रह्मचारी तु वसेदाचार्यसन्निधौ।
तदभावेऽस्य तनये पत्न्यां वैश्वानरेऽपि वा ॥४९॥
अनेन विधिना देहं साधयन्विजितेन्द्रियः।
ब्रह्मलोकमवाप्नोति न चेह जायते पुनः ॥ ५० ॥

नैष्ठिक ब्रह्मचारी आचार्य के पास रहे, आचार्य न हो तो उसके पुत्र के पास, वह न हो तो आचार्य की पत्नी अथवा, अग्निहोत्र की अग्नि के निकट रहे ॥ ४९ ॥ इस विधि से ब्रह्मचारी देह को साधकर जितेन्द्रिय होकर ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है और इस संसार में जन्म कभी नहीं पाता है ॥ ५० ॥

ब्रह्मचारीप्रकरण समाप्त।

विवाहप्रकरण।

गुरवे तु वरं दत्त्वा स्नायीत तदनुज्ञया।
वेदव्रतानि वा पारं नीत्वा ह्युभयमेव वा ॥ ५१ ॥

अविप्लुतब्रह्मचर्यो लक्षण्यां स्त्रियमुद्वहेत् ।
अनन्यपूर्विकां कान्तामसपिण्डां यवीयसीम् ॥५२॥

गुरु को दक्षिणा देकर उसकी आज्ञा से अथवा वेद समाप्त करके वा व्रत से पार होकर या दोनों को समाप्त करके (समावर्तन) स्नान करे ॥ ५१ ॥ ब्रह्मचर्य से न डिगकर लक्षण-युक्त क्वारी असपिण्ड और अपने से छोटी अवस्थावाली स्त्री को ब्याहे ॥ ५२ ॥

अरोगिणीं भ्रातृमतीमसमानार्षगोत्रजाम् ।
पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतस्तथा ॥ ५३ ॥
दशपूरुषविख्याताच्छ्रोत्रियाणां महाकुलात् ।
स्फीतादपि न संचारिरोगदोषसमन्वितात् ॥५४॥

(असाध्य) रोगसे हीन हो, जिसके भाई हों, अपने गोत्र और प्रवर की न हो और जो मातृकुल में पांच पीढ़ी से ऊपर हो और पितृमातृकुल में सात पीढ़ी से ऊपर हो उसे ब्याहे ॥ ५३ ॥ दश पुरुष से प्रसिद्ध वेदपाठियों के कुल से कन्या लेवे परन्तु कुष्ठ आदि संचारी रोगयुक्त उत्तमकुल से भी कन्या न लेव ॥ ५४ ॥

एतैरेव गुणैर्युक्तः सवर्णः श्रोत्रियो वरः ।
यत्नात्परीक्षितः पुंस्त्वे युवा धीमान् जनप्रियः ॥५५॥
यदुच्यते द्विजातीनां शूद्राद्दारोपसंग्रहः ।
न तन्मम मतं यस्मात्तत्रात्मा जायते स्वयम् ॥५६॥

इन्हीं पूर्वोक्त गुणों से युक्त, सवर्ण, वेदपाठी, यत्न से जिसका पुंस्त्व परीक्षित हो, युवा, बुद्धिमान् और लोगों को प्रिय हो ऐसा

वर होना चाहिये ॥ ५५ ॥ शूद्र से कन्या लेने की अनुमति द्विजों को जो कही है यह मेरा मत नहीं, क्योंकि, दारा में आत्मा स्वयं उत्पन्न होता है ॥ ५६ ॥

तिस्रो वर्णानुपूर्व्येण द्वे तथैका यथाक्रमम् ।
ब्राह्मणक्षत्रियविशां भार्या स्याच्छूद्रजन्मनः ॥ ५७ ॥
ब्राह्मो विवाह आहूय दीयते शक्त्यलंकृता ।
तज्जः पुनात्युभयतः पुरुषानेकविंशतिम् ॥ ५८ ॥

वर्ण की अनुलोमता से ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य के क्रम से* तीन दो और एक स्त्रियां होती हैं, शूद्र की केवल अपनी ही वर्ण की स्त्री होती है ॥ ५७ ॥ वर को बुलाकर अपनी शक्ति के अनुसार, आभूषण सहित जो कन्यादान है उसे ब्राह्मविवाह कहते हैं। ऐसे ब्याह से जो पुत्र उत्पन्न होता है वह अपनी ऊपर की दश और नीचे की दश और एक अपनी, यों इकीस पीढ़ियों को पवित्र करता है ॥ ५८ ॥

यज्ञस्थ ऋत्विजे दैव आदायार्षस्तु गोद्वयम् ।
चतुर्दश प्रथमजः पुनात्युत्तरजश्च षट् ॥ ५९ ॥
इत्युक्त्वाचरतां धर्मं सह या दीयतेऽर्थिने ।
सकायः पावयेत्तज्जः षट् षट् वंश्यान् सहात्मना ६०

यज्ञ करानेवाले ऋत्विज् को कन्या दे तो दैवविवाह, और दो गौ शुल्क लेकर कन्या दे तो आर्षविवाह कहा जाता है। इनमें

---

* अर्थात् ब्राह्मण अपने वर्ण की, क्षत्रिय की और वैश्य की कन्या ले सक्ता है इसी प्रकार क्षत्रिय अपने वर्ण की और वैश्य की ले सक्ता है, वैश्य और शूद्र केवल अपने वर्ण की ही लेसक्ते हैं। मनुजी ने भी शूद्रा के साथ विवाह का खण्डन किया है।

पहिले से पैदा पुत्र चौदह और दूसरे से पैदा हुआ छः छः पीढ़ियों को पवित्र करता है ॥ ५६ ॥ तुम दोनों इकट्ठे होकर धर्म आचरण करो ऐसा कहकर मांगनेवाले को जो कन्या दी जाती है वह कायविवाह कहलाता है । इससे उत्पन्न पुत्र अपने सहित छः छः पीढ़ियों को पवित्र करता है ॥ ६० ॥

आसुरो द्रविणादानाद्गान्धर्वः समयान्मिथः ।
राक्षसो युद्धहरणात्पैशाचः कन्यकाच्छलात् ॥६१॥
पाणिर्ग्राह्यः सवर्णासु गृह्णीयात्क्षत्रिया शरम् ।
वैश्या प्रतोदमादद्याद्वेदने त्वग्रजन्मनः ॥ ६२ ॥

बहुत धन लेकर कन्या दे तो आसुर विवाह होता है । और कन्यावर आपस में सलाह करके ब्याह कर लें तो, गान्धर्व विवाह होता है । युद्ध में हरी हुई कन्या से राक्षसविवाह और छल से जो हो वह पैशाच विवाह कहलाता है ॥ ६१ ॥ अपनी जाति की कन्या के साथ ब्याह हो तो पाणिग्रहण करे अर्थात् हाथ पकड़े । और ब्राह्मण, यदि क्षत्रिया को ब्याहे तो क्षत्रिया बाण पकड़े, और वैश्या प्रतोद अर्थात् (पैना) और रस्सी पकड़े ॥६२॥

पिता पितामहो भ्राता सकुल्यो जननी तथा ।
कन्याप्रदः पूर्वनाशे प्रकृतिस्थः परः परः ॥ ६३ ॥
अप्रयच्छन्समाप्नोति भ्रूणहत्यामृतावृतौ ।
गम्यन्त्वभावे दातॄणां कन्या कुर्यात्स्वयंवरम् ॥ ६४ ॥

बाप दादा भाई अपने कुल का कोई पुरुष और माता इनमें पहले के न होने पर दूसरा दूसरा, यदि सावधान हो तो, कन्या-दान का अधिकारी है ॥ ६३ ॥ जो ये कन्या का विवाह न कर

दें तो उसके हरएक ऋतुकाल में इन्हें भ्रूण (गर्भ) हत्या का पाप लगता है। यदि कन्यादान का अधिकारी कोई न हो तो योग्य वर को कन्या खुद वरण करे ॥ ६४ ॥

सकृत्प्रदीयते कन्या हरंस्तां चोरदण्डभाक्।
दत्तामपि हरेत्पूर्वां ज्यायांश्चेद्वर आव्रजेत् ॥ ६५ ॥
अनाख्याय ददद्दोषं दण्ड उत्तमसाहसम्।
अदुष्टान्तु त्यजन्दण्ड्यो दूषयंस्तु मृषा शतम् ॥६६॥

कन्या एकही बार दीजाती है जो उसका हरण करे तो चोर के समान दण्ड का भागी होता है। और यदि पहले वर से अच्छा वर आ मिले तो दी हुई कन्या का भी हरण कर लेवे ॥ ६५ ॥ कन्या का दोष विना कहे ही जो कन्यादान कर देते हैं उनको उत्तम साहस का दण्ड देना चाहिये। और निर्दोष कन्या को त्याग करनेवाले पति को भी यही दण्ड देना चाहिये। यदि कोई झूठा दोष लगावे तो उसे सौ पण दण्ड देना चाहिये ॥६६॥

अक्षता च क्षता चैव पुनर्भूः संस्कृता पुनः।
स्वैरिणी या पतिं हित्वा सवर्णं कामतः श्रयेत् ॥६७॥
अपुत्रां गुर्वनुज्ञातो देवरः पुत्रकाम्यया।
सपिण्डो वा सगोत्रो वा घृताऽभ्यक्तऋतावियात् ६८॥

कन्या चाहे अक्षता चाहे क्षता हो दूसरी बार विवाह होने से वह पुनर्भू कहलाती है। और जो पति को छोड़ किसी अपने दूसरे सवर्ण पुरुष को स्वीकार अपनी इच्छा से कर ले वह स्वैरिणी कहलाती है ॥ ६७ ॥ जिसके पुत्र उत्पन्न न हुआ हो उस विधवा भौजाई से, ऋतुकाल में सब अङ्ग में घी लगाकर अपने

पिता आदि बड़ों की आज्ञा से, देवर, सपिण्ड, अथवा कोई सगोत्र पुरुष गमन करे ॥ ६८ ॥

आगर्भसंभवाद्गच्छेत्पतितस्त्वन्यथा भवेत् ।
अनेन विधिना जातः क्षेत्रजोऽस्य भवेत्सुतः ॥ ६९ ॥
हृताधिकारां मलिनां पिण्डमात्रोपजीविनीम् ।
परिभूतामधःशय्यां वासयेद्व्यभिचारिणीम् ॥ ७० ॥

परन्तु गर्भ रहने तक ही जावे नहीं तो पतित होता है इस प्रकार उत्पन्न पुत्र क्षेत्रज कहलाता है* ॥ ६९ ॥ व्यभिचारिणी स्त्री को सब अधिकार से हीन करके मैले वस्त्र पहनाकर भोजनमात्र अन्न देकर प्रतिदिन अनादर से भूमि पर सुलावे ॥ ७० ॥

सोमः शौचं ददावासां गन्धर्वश्च शुभां गिरम् ।
पावकः सर्वमेध्यत्वं मेध्या वै योषितः स्मृताः ॥ ७१ ॥
व्यभिचाराहतौ शुद्धिर्गर्भे त्यागो विधीयते ।
गर्भभर्तृवधादौ च तथा महति पातके ॥ ७२ ॥

सोमदेवता ने स्त्रियों को पवित्रता, गन्धर्व ने मीठी बोली और अग्नि ने सब प्रकार पवित्र होने की शक्ति दी है इसलिये स्त्रियां पवित्र होती हैं ॥ ७१ ॥ ऋतुकाल प्राप्त होने पर व्यभिचार से शुद्ध होती हैं । जो दूसरे का गर्भ रह जावे, गर्भ का पतन करा देवे, अपने पति के मारने पर उद्यत हो और महापातक करे, तो उस स्त्री का त्याग करना चाहिये ॥ ७२ ॥

---

* इस विधि को 'नियोग' कहते हैं । इस विधि से पैदा हुआ पुत्र मृतपुरुष का 'क्षेत्रज' कहा जाता है । यह वही राजा वेन का चलाया नियोग है जो सर्वथा कलियुग में निषिद्ध है । इसी का खण्डन मनुजी ने अपनी स्मृति के ९ नवें अध्याय में वेदविरुद्ध जानकर, किया है ।

सुरापी व्याधिता धूर्ता वन्ध्यार्थघ्न्यप्रियंवदा ।
स्त्रीप्रसूश्चाधिवेत्तव्या पुरुषद्वेषिणी तथा ॥ ७३ ॥
अधिविन्ना तु भर्तव्या महदेनोऽन्यथा भवेत् ।
यत्रानुकूल्यं दम्पत्योस्त्रिवर्गस्तत्र वर्धते ॥ ७४ ॥

सुरापान करनेवाली, सदा रोगिणी रहनेवाली, धूर्त, बांझ, धननाश करनेवाली, अप्रिय बोलनेवाली, जिसके लड़की हुआ करे, और जो अपने पति का दोष करती हो तो ऐसी स्त्री के रहते दूसरा व्याह विहित है ॥ ७३ ॥ पर अधिविन्ना (प्रथम विवाहिता) का पालन करना चाहिये नहीं तो बड़ा पाप होता है । जहाँ स्त्री पुरुष की परस्पर अनुकूलता होती है वहाँ त्रिवर्ग (अर्थ, धर्म और काम) बढ़ता रहता है ॥ ७४ ॥

मृते जीवति वा पत्यौ या नान्यमुपगच्छति ।
सेह कीर्तिमवाप्नोति मोदते चोमया सह ॥ ७५ ॥
आज्ञासंपादिनीं दक्षां वीरसूं प्रियवादिनीम् ।
त्यजन् दाप्यस्तृतीयांशमद्रव्यो भरणं स्त्रियाः ॥ ७६ ॥

पति के जीते वा मरने पर जो दूसरे के पास नहीं जाती वह इस लोक में अच्छी कीर्ति पाती है और परलोक में देवियों के साथ सुख पाती है ॥ ७५ ॥ यदि आज्ञा पालन करनेवाली, घर के काम में चतुर, वीरपुत्र जननेवाली और प्रियवचन बोलनेवाली स्त्री को छोड़े तो उस पुरुष से तीसरा भाग दिलाना चाहिये और निर्धन हो तो स्त्री का पालन कराना चाहिये ॥ ७६ ॥

स्त्रीभिर्भर्तृवचः कार्यमेष धर्मः परः स्त्रियाः ।
आशुद्धेः संप्रतीक्ष्यो हि महापातकदूषितः ॥ ७७ ॥

लोकानन्त्यं दिवः प्राप्तिः पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः ।
यस्मात्तस्मात्स्त्रियः सेव्या कर्तव्याश्चसुरक्षिताः ७८॥

स्त्रियों का यह परमधर्म है कि पति का कहना माने और पति को महापातक लगा हो तो उसकी शुद्धितक आसरा देखें ॥ ७७ ॥ पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र के द्वारा अनन्तलोक और स्वर्ग मिलता है इसलिये स्त्रियों का संग्रह और बड़ी सावधानी से उनका पालन करना चाहिये ॥ ७८ ॥

षोडशर्तुर्निशाः स्त्रीणां तासु युग्मासु संविशेत् ।
ब्रह्मचार्येव पर्वण्याद्याश्चतस्रश्च वर्जयेत् ॥ ७९ ॥
एवं गच्छन् स्त्रियं क्षामां मघां मूलं च वर्जयेत् ।
सुस्थ इन्दौ सकृत्पुत्रं लक्षण्यं जनयेत्पुमान् ॥ ८० ॥

ऋतुकाल की सोलह रात होती हैं, उनमें युग्म ६, ८, १०वीं आदि रात्रियों में स्त्रीगमन करे इससे ब्रह्मचारी ही रहता है । परन्तु कृष्णपक्ष की चौदश, अष्टमी, अमावस, पूर्णिमा और पहली चार रातें छोड़ देवे ॥ ७९ ॥ शुभचन्द्र विचारकर मघा और मूल नक्षत्र को छोड़कर जो स्त्री के पास एकवार जावे तो शुभलक्षण-युक्त पुत्र उत्पन्न होता है ॥ ८० ॥

यथाकामी भवेद्वापि स्त्रीणां वरमनुस्मरन् ।
स्वदारनिरतश्चैव स्त्रियो रक्ष्या यतः स्मृताः ॥ ८१ ॥
भर्तृभ्रातृपितृज्ञातिश्वश्रूश्वशुरदेवरैः ।
बन्धुभिश्च स्त्रियः पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः ८२॥

अथवा स्त्रियों को पतिव्रता रखने के लिये जब उसकी इच्छा देखे गमन करे और अपनी ही स्त्री में रत रहे क्योंकि, स्त्रियों

की रक्षा आवश्यक है ॥ ८१ ॥ पति, भाई, पिता, जाति के लोग, सास, ससुर, देवर और सब प्रकार के बन्धु लोग (मामी का पुत्र, फूफू का लड़का आदि) भी गहने कपड़े और भोजन से स्त्रियों का सत्कार करें ॥ ८२ ॥

संयतोपस्करा दक्षा हृष्टा व्ययपराङ्मुखी ।
कुर्यात् श्वशुरयोः पादवन्दनं भर्तृतत्परा ॥ ८३ ॥
क्रीडां शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम् ।
हास्यं परगृहे यानं त्यजेत्प्रोषितभर्तृका ॥ ८४ ॥

घर की चीज़ों का संयम, कार्य में चतुर होना, प्रसन्नचित्त, बहुत खर्च न करना, सास ससुर के पैरों पर प्रणाम करना और पति की सेवा में तत्पर रहना ये स्त्री के धर्म हैं ॥ ८३ ॥ खेलना, शृङ्गार करना, भीड़ में जाना, उत्सव देखना, हँसना और दूसरे के घर जाना, जिसका पति विदेश गया हो वह ये सब बातें छोड़ देवे ॥ ८४ ॥

रक्षेत्कन्यां पिता विन्नां पतिः पुत्रास्तु वार्धके ।
अभावे ज्ञातयस्तेषां न स्वातन्त्र्यं क्वचित्स्त्रियाः॥८५॥
पितृमातृसुतभ्रातृश्वश्रूश्वशुरमातुलैः ।
हीना न स्याद्विना भर्त्रा गर्हणीयान्यथा भवेत्॥८६॥

कुमारी की रक्षा पिता करे, विवाहिता होने पर पति, बुढ़ापे में पुत्र, और इनमें कोई न हो तो जाति के लोग रक्षा करें, स्त्रियों को स्वतन्त्र कभी न होने देना चाहिये ॥ ८५ ॥ पति पास न हो तो पिता, माता, पुत्र, भाई, सास, ससुर और मामा इनके पास रहे, नहीं तो निन्दित होती है ॥ ८६ ॥

पतिप्रियहिते युक्ता स्वाचारा विजितेन्द्रिया ।
इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमां गतिम् ॥ ८७ ॥
सत्यामन्यां सवर्णायां धर्मकार्यं न कारयेत् ।
सवर्णासु विधौ धर्म्ये ज्येष्ठयानविनेतरा ॥ ८८ ॥

पति के प्रिय और हितकाम में तत्पर, अच्छा आचरण करनेवाली और इन्द्रियों को अपने वश में रखनेवाली स्त्री यहाँ बड़ाई पाती है और परलोक में बड़ा सुख पाती है ॥ ८७ ॥ सवर्णा स्त्री के रहते दूसरी से (धर्मकार्य) यज्ञ आदि न करावे सवर्णा कई हों तो बड़ी को छोड़ औरों से न करावे ॥ ८८ ॥

दाहयित्वाग्निहोत्रेण स्त्रियं वृत्तवतीं पतिः ।
आहरेद्विधिवद्दारानग्नींश्चैवाविलम्बयन् ॥ ८९ ॥
सवर्णेभ्यः सवर्णासु जायन्ते हि सजातयः ।
अनिन्द्येषु विवाहेषु पुत्राः सन्तानवर्द्धनाः ॥ ९० ॥

सुशीला स्त्री मर जावे तो अग्निहोत्र की अग्नि से उसका दाह करके पति फिर अग्नि और स्त्री का संग्रह करे विलम्ब न करे ॥ ८९ ॥ अच्छे विवाह से ब्याही सवर्णा स्त्री से सवर्ण पुरुष से सजाति (उसी जाति) के पुत्र उत्पन्न होते हैं और उनसे सन्तान की बढ़ती होती है ॥ ९० ॥

विवाहप्रकरण समाप्त ।

वर्णजातिविवेकप्रकरण ।

विप्रान्मूर्धावसिक्तो हि क्षत्रियायां विशः स्त्रियाम् ।
अम्बष्ठः शूद्र्यां निषादो जातःपारसवोऽपि वा ॥ ९१ ॥

वैश्या शूद्र्योस्तु राजन्यान् माहिष्योग्रौ सुतौ स्मृतौ।
वैश्यात्तु करणः शूद्र्यां विन्नास्वेष विधिः स्मृतः ॥९२॥

ब्राह्मण से क्षत्रिया स्त्री में उत्पन्न पुत्र मूर्द्धाभिषिक्त, वैश्या में अम्बष्ठ और शूद्रा में उत्पन्न हुआ निषाद वा पारसव कहलाता है ॥ ९१ ॥ क्षत्रिय से वैश्या में पैदा हुआ माहिष्य और शूद्रा में उत्पन्न उग्र कहा जाता है। वैश्य से शूद्रा में उत्पन्न करण (कायथ) होता है यह बात विवाहिता स्त्रियों में जानना ॥ ९२ ॥

ब्राह्मण्यां क्षत्रियात्सूतो वैश्याद्वैदेहिकस्तथा।
शूद्राज्जातस्तु चाण्डालः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥ ९३ ॥
क्षत्रिया मागधं वैश्याच्छूद्रात्क्षत्तारमेव च।
शूद्रादायोगवं वैश्या जनयामास वै सुतम् ॥ ९४ ॥

क्षत्रिय से ब्राह्मणी स्त्री में उत्पन्न सूत, वैश्य से वैदेहिक और शूद्र से चाण्डाल होता है। चाण्डाल सब धर्मों से रहित होता है ॥ ९३ ॥ क्षत्रिया स्त्री में वैश्य से मागध और शूद्रा से क्षत्ता उत्पन्न होता है। वैश्या में शूद्र से आयोगव नामक पुत्र उत्पन्न होता है ॥ ९४ ॥

माहिष्येण करण्यां तु रथकारः प्रजायते।
असत्सन्तस्तु विज्ञेयाः प्रतिलोमानुलोमजाः ॥ ९५ ॥
जात्युत्कर्षो युगे ज्ञेयः पञ्चमे सप्तमेऽपि वा।
व्यत्यये कर्मणां साम्यं पूर्ववच्चाधरोत्तरम् ॥ ९६ ॥

माहिष्यजाति के पुरुष से करणी जाति की स्त्री में रथकार (बढ़ई) पैदा होता है, इनमें प्रतिलोमज (नीचजाति के पुरुष से उत्तम जाति की स्त्री में उत्पन्न) को बुरा और अनुलोमज

(उत्तमजाति पुरुष से हीनवर्ण स्त्री में उत्पन्न) को अच्छा जानना चाहिये ॥ ९५ ॥ सातवें या पांचवें जन्म में (किसी जाति की कन्या अपने से बड़ी जाति के पुरुष से व्याही जाय उससे जो कन्या हो वह भी उसी बड़ी जाति को दीजाय इसी तौर सातवीं पीढ़ी में (जाति बड़ी होजाती है कर्मों के व्यत्यय से) ब्राह्मण आदि को आपत्काल में अपनी वृत्ति से जीवन न होसके तो नीचवृत्ति से भी निर्वाह करें यह कर्म व्यत्यय है सात या पांच पुरुष तक जिस जाति का कर्म करे उसीके तुल्य हो जाता है । वर्णसंकरों में आपस के व्यभिचार से जो अनुलोमज सन्तान होते हैं वे सत् अच्छे-कहे जाते हैं । और प्रतिलोमज सन्तान असत् नीच कहे जाते हैं । अर्थात् अनुलोमज सब अच्छे और प्रतिलोमज सब नीच होते हैं ॥ ९६ ॥

वर्णजातिविवेकप्रकरण समाप्त ।

गृहस्थधर्मप्रकरण ।

कर्म स्मार्तं विवाहाग्नौ कुर्वीत प्रत्यहं गृही ।
दायकालाहृते वापि श्रौतं वैतानिकाग्निषु ॥ ९७ ॥
शरीरचिन्तां निर्वर्त्य कृतशौचविधिर्द्विजः ।
प्रातःसन्ध्यामुपासीत दन्तधावनपूर्वकम् ॥ ९८ ॥

गृहस्थ प्रतिदिन स्मार्त (बलिवैश्वदेव आदि) कर्म विवाहाग्नि अथवा विभागकाल में प्राप्त अग्नि से करे और श्रौत (अग्निहोत्रादि) कर्म वैतानिक (आहवनीया) आदि अग्निहोत्र करे ॥ ९७ ॥ द्विज, शरीरचिन्ता (मलमूत्रोत्सर्ग), शौच (हाथ पाँव धोना) और दाँतून करके प्रातःसंध्या की उपासना करे ॥ ९८ ॥

हुत्वाग्नीन्सूर्यदैवत्यान् जपेन्मन्त्रान्समाहितः ।
वेदार्थानधिगच्छेच्च शास्त्राणि विविधानि च ॥ ९९ ॥
उपेयादीश्वरं चैव योगक्षेमार्थसिद्धये ।
स्नात्वा देवान्पितॄंश्चैव तर्पयेदर्चयेत्तथा ॥ १०० ॥

अग्निहोत्र करके सूर्यदेवता के मन्त्र सावधान होकर जपे अनन्तर वेद के अर्थ और अनेक प्रकार के शास्त्रों को सुने वा पढ़े ॥ ९९ ॥ तब ईश्वर (राजा) के पास योग (अलब्धवस्तु के लाभ) और क्षेम (रक्षा) के लिये जावे स्नान करके पितरों का तर्पण और देवताओं की पूजा करे ॥ १०० ॥

वेदाथर्वपुराणानि सेतिहासानि शक्तितः ।
जपयज्ञप्रसिद्ध्यर्थं विद्यां चाध्यात्मिकीं जपेत् ॥ १ ॥
बलिकर्म स्वधा होमस्वाध्यायातिथिसत्क्रिया ।
भूतपितृपरब्रह्ममनुष्याणां महामखाः ॥ २ ॥

अनन्तर वेद अथर्व उच्चाटनादि मन्त्र पुराण और इतिहास और अध्यात्मविद्या का जप करे ॥ १ ॥ बलिवैश्वदेव, स्वधा (तर्पण और श्राद्ध) होम, स्वाध्याय (पाठ पढ़ना) और अतिथि का सत्कार ये पांचों क्रम से भूत, पितृ, देव, ब्रह्म और मनुष्यों के महायज्ञ कहलाते हैं * ॥ २ ॥

देवेभ्यश्च हुतादन्नाच्छेषाद्भूतबलिं हरेत् ।
अन्नं भूमौ श्वचाण्डालवायसेभ्यश्च निःक्षिपेत् ॥ ३ ॥

---

* शतपथ ब्राह्मण में लिखा हैः—'पञ्च एव महायज्ञाः । तान्येव महासत्राणि भूतयज्ञो मनुष्ययज्ञः, पितृयज्ञो देवयज्ञो भूतयज्ञ इति । अहरहः भूतेभ्यो बलिं हरेत् । तथैतं भूतयज्ञं समाप्नोति' । इत्यादि ।

अन्नं पितृमनुष्येभ्यो देयमप्यन्वहं जलम् ।
स्वाध्यायं चान्वहं कुर्यान्न पचेदन्नमात्मने ॥ ४ ॥

देवताओं के होम से जो अन्न बच रहे उससे भूतबलि देना कुत्ता, चाण्डाल और कौवों के लिये भी भूमिपर अन्न फेंक देना चाहिये ॥ ३ ॥ पितर और मनुष्यों को भी प्रतिदिन अन्न और जल देवे नित्य वेद पढ़े, और अपने ही लिये अन्न न पकावे ॥ ४ ॥

बालस्ववासिनीवृद्धगर्भिण्यातुरकन्यकाः ।
संभोज्यातिथिभृत्यांश्च दम्पत्योः शेषभोजनम् ॥ ५ ॥
आपोशानेनोपरिष्टादधस्तादश्नता तथा ।
अनग्नममृतं चैव कार्यमन्नं द्विजन्मना ॥ ६ ॥

बालक सुवासिनी—सुहागिनि, वृद्ध, गर्भिणी, आतुर, कन्या, अतिथि और भृत्यों को खिलाकर शेष अन्न स्त्री-पुरुष आप भोजन करे ॥ ५ ॥ द्विजों को भोजन के समय आदि और अन्त में आपोशान मन्त्र पढ़कर, आचमन करके अन्न को अनग्न और अमृत करना चाहिये ॥ ६ ॥

अतिथित्वेन वर्णेभ्यो देयशक्त्यानुपूर्वशः ।
अप्रणोद्योऽतिथिः सायमपि वाग्भूतृणोदकैः ॥ ७ ॥
सत्कृत्य भिक्षवे भिक्षा दातव्या सुव्रताय च ।
भोजयेच्चागतान्काले सखिसम्बन्धिबान्धवान् ॥ ८ ॥

कई अतिथि आये हों तो वर्णक्रम से पहले ब्राह्मण, तब क्षत्रिय आदि को अपनी शक्ति के अनुसार अन्न देना, सायंकाल में भी अतिथि आवे तो निराश न करना कुछ अधिक न बन पड़े तो

अच्छे वचन, भूमि, तृण और जल से ही सत्कार करना * ॥ ७ ॥ सत्कारपूर्वक भिखारी और व्रती को भिक्षा देनी चाहिये भोजन के समय में यदि कोई मित्र, सम्बन्धी और बान्धव आजाय तो उसे भी खिलाना ॥ ८ ॥

महोक्षं वा महाजं वा श्रोत्रियायोपकल्पयेत्।
सत्क्रियान्वासनं स्वादु भोजनं सूनृतं वचः ॥ ९ ॥
प्रतिसंवत्सरं त्वर्घ्याः स्नातकाचार्यपार्थिवाः।
प्रियो विवाह्यश्च तथा यज्ञं प्रत्यृत्विजः पुनः ॥१०॥

श्रोत्रिय (वेदपढ़ा) अतिथि आवे तो उसके आगे बड़ा भारी बकरा या बैल लाकर खड़ा करे सत्कार करे, अच्छा आसन दे मधुरभोजन करावे और मीठी बात बोले ॥ ९ ॥ स्नातक, आचार्य, मित्र जिसे कन्या देनी हो वह और राजा इनको हरसाल अर्घ्य देकर अर्थात् (मधुपर्क से) पूजे और ऋत्विज को वर्ष के बीच में भी हर यज्ञ के आरम्भ में पूजे ॥ १० ॥

अध्वनीनोऽतिथिर्ज्ञेयः श्रोत्रियो वेदपारगः।
मान्यावेतौ गृहस्थस्य ब्रह्मलोकमभीप्सितः ॥ ११ ॥
परपाकरुचिर्न स्यादनिन्द्यामन्त्रणादृते।
वाक्पाणिपादचापल्यं वर्जयेच्चातिभोजनम् ॥ १२ ॥

पथिक पहुना होता है, श्रोत्रिय (वेद पढ़नेवाला) और वेदपारग (जिसने वेद की एक शाखा समग्र पढ़ी हो) ये दोनों ब्रह्मलोक की इच्छा रखनेवाले गृहस्थ को अत्यन्त माननीय अतिथि

---

* प्रयोजन यह है कि घर में सत्कार के लिये कोई वस्तु न विद्यमान होतो, अतिथि और सम्भावित पुरुष के आने पर आदर से बैठावे और एक लोटा जल ही पूछे।

हैं ॥ ११ ॥ अच्छे मनुष्य के निमन्त्रण को छोड़ दूसरे के घर भोजन की अभिलाषा न रखनी चाहिये । वाणी, हाथ और पाँव इनकी चपलता और भूख से अधिक भोजन कभी न करे ॥ १२ ॥

अतिथिं श्रोत्रियं तृप्तमासीमान्तमनुव्रजेत् ।
अहःशेषं समासीत शिष्टैरिष्टैश्च बन्धुभिः ॥ १३ ॥
उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां हुत्वाग्नींस्तानुपास्य च ।
भृत्यैः परिवृतो भुक्त्वा नातितृप्तोऽथ संविशेत् ॥ १४ ॥

श्रोत्रिय, अतिथि हो तो उसको भोजन से तृप्त करके अपने ग्राम की सीमा तक पहुँचा आवे, और भोजन के बाद बाकी दिन, बड़ेलोग, मित्र और बन्धुओं के साथ बैठ के बितावें ॥ १३ ॥ पश्चिमा (सायं) संध्या की उपासना और अग्नियों में होम और उनकी उपासना करके भृत्यों सहित भोजन करे परन्तु ऐसा भोजन न करे कि जिससे अफर जावे पीछे शयन करे ॥ १४ ॥

ब्राह्मे मुहूर्त्ते चोत्थाय चिन्तयेदात्मनो हितम् ।
धर्मार्थकामान्स्वे काले यथाशक्ति न हापयेत् ॥ १५ ॥
विद्याकर्मवयोबन्धुवित्तैर्मान्या यथाक्रमम् ।
एतैः प्रभूतैः शूद्रोऽपि वार्धके मानमर्हति ॥ १६ ॥

ब्राह्ममुहूर्त में (रात के पिछले पहर में) उठकर अपना हित विचारे और धर्म, अर्थ और काम इन्हें अपने अपने समय में शक्ति के अनुसार न खोवे ॥ १५ ॥ विद्या, कर्म, अवस्था, बन्धु और धन इनके पराक्रम से मनुष्य बड़ा गिना जाता है । विद्या आदि से बुढ़ापे में शूद्र भी माननीय होता है ॥ १६ ॥

वृद्धभारिनृपस्नातस्त्रीरोगवरचक्रिणाम् ।
पन्था देयो नृपस्तेषां मान्यः स्नातश्च भूपतेः ॥१७॥
इज्याध्ययनदानानि वैश्यस्य क्षत्रियस्य च ।
प्रतिग्रहोऽधिको विप्रे याजनाध्यापने तथा ॥ १८ ॥

वृद्ध, बोझा ढोनेवाला, राजा, स्नातक (ब्रह्मचारी या यज्ञ-दीक्षित), स्त्री, रोगी, वर (जिसका ब्याह होने जाता हो) और गाड़ीवाला इन्हें देखकर रास्ते से हट जाना चाहिये । इन सबों में राजा वड़ा है और स्नातक राजा का भी माननीय है ॥ १७ ॥ यज्ञ करना, पढ़ना और दान देना ये कार्य वैश्य और क्षत्रिय को भी हैं, ब्राह्मण को प्रतिग्रह (दान लेना) यज्ञ कराना और पढ़ाना ये अधिक हैं ॥ १८ ॥

प्रधनं क्षत्रिये कर्म प्रजानां परिपालनम् ।
कुसीदकृषिवाणिज्यपाशुपाल्यं विशः स्मृतम् ॥१९॥
शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा तया जीवन्वणिग्भवेत् ।
शिल्पैर्वा विविधैर्जीवेद् द्विजातिहितमाचरन् ॥२०॥

प्रजा का पालन करना क्षत्रिय का श्रेष्ठ कर्म है कुसीद (ब्याज लेना) खेती, वाणिज और पशुपालन ये वैश्य के मुख्य कर्म हैं ॥ १९ ॥ द्विजों की सेवा करनी शूद्रों का प्रधान कर्म है । उससे न जीसके तो वनिज करके वा अनेक प्रकार की शिल्पविद्या से निर्वाह करे । परन्तु द्विजों का हित करता रहे ॥ २० ॥

भार्यारतिः शुचिर्भृत्यभर्ता श्राद्धक्रियारतः ।
नमस्कारेण मन्त्रेण पञ्चयज्ञान्न हापयेत् ॥ २१ ॥

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
दानं दया दमः क्षान्तिः सर्वेषां धर्म्मसाधनम् ॥ २२ ॥

और अपनी स्त्री में रत होवे, पवित्र रहे, भृत्यों का पालन करे, पितरों का श्राद्ध करे, और पंचयज्ञों को न छोड़े ॥ २१ ॥ जीववध न करना, सत्य बोलना, चोरी न करना, पवित्र रहना, इन्द्रियों को वश में रखना, दान, दया, दम (मन का संयम) और सहनशीलता ये सब मनुष्यों के धर्म प्रतिपालन करने के हैं ॥ २२ ॥

वयोबुद्ध्यर्थवाग्वेषश्रुताभिजनकर्मणाम् ।
आचरेत्सदृशीं वृत्तिमजिह्मामशठां तथा ॥ २३ ॥
त्रैवार्षिकाधिकान्नो यः स तु सोमं पिबेद्‌द्विजः ।
प्राक्सौमिकीः क्रियाः कुर्याद्यस्यान्नं वार्षिकं भवेत् २४

वय (अवस्था), बुद्धि, धन, वाणी, वेष, विद्या, कुल और अपने कर्म के अनुसार अपनी जीविका करनी, पर वह सीधे तरीके की करनी चाहिए ॥ २३ ॥ जिसके तीन वर्ष तक खाने से अधिक अन्न हो वह द्विज सोमपान करे जिसके वर्षभर खाने को अन्न हो वह प्राक्सौमिकी (अग्निहोत्र, दर्श, पौर्णमास आदि जो सोम से पहिले किये जाते) ऐसी क्रिया करे ॥ २४ ॥

प्रतिसंवत्सरं सोमः पशुः प्रत्ययनं तथा ।
कर्त्तव्याग्रयणेष्टिश्च चातुर्मास्यानि चैव हि ॥ २५ ॥
एषामसम्भवे कुर्यादिष्टिं वैश्वानरीं द्विजः ।
हीनकल्पं न कुर्वीत सति द्रव्ये फलप्रदम् ॥ २६ ॥

प्रतिवर्ष सोमयज्ञ, दोनों अयनों में या प्रतिवर्ष में, पशुयज्ञ, आग्रयणेष्टि (नवान्नयज्ञ) और चातुर्मास्य भी प्रतिवर्ष करना

चाहिए ॥ २५ ॥ यह न होसके तो वैश्वानर यज्ञ करे और पास में धन होने पर, बड़े यज्ञों को करना अच्छा है छोटे फलों को देनेवाले यज्ञों का करना, साधारण है ॥ २६ ॥

चाण्डालो जायते यज्ञकरणाच्छूद्रभिक्षितात् ।
यज्ञार्थं लब्धमददद्भासः काकोऽपि वा भवेत् ॥ २७ ॥
कुशूलकुम्भीधान्यो वा त्र्याहिकोश्वस्तनोपि वा ।
जीवेद्वापि शिलोञ्छेन श्रेयानेषां परः परः ॥ २८ ॥

शूद्र से धन माँगकर यज्ञ करे, तो वह चाण्डाल होता है, और जो धन यज्ञ के लिये मिला हो उसे न दे, तो भास (शकुन्त) अथवा कौओं का जन्म पाता है ॥ २७ ॥ कुशूलधान्य (कोठिला भर अन्न रखनेवाला), कुम्भीधान्य (घड़ाभर अनाज रखनेवाला), तीन दिन वा प्रतिदिन खाने योग्य अन्न रखनेवाला और शिलोञ्छ (दाना खेत का बीनकर) से जीनेवाला इनमें पिछले-पिछले पहलों से श्रेष्ठ हैं ॥ २८ ॥

गृहस्थधर्मप्रकरण समाप्त ।

स्नातकधर्मप्रकरण ।

न स्वाध्यायविरोध्यर्थमीहेत नयतस्ततः ।
न विरुद्धप्रसङ्गेन सन्तोषी च सदा भवेत् ॥ २९ ॥
राजान्तेवासियाज्येभ्यः सीदन्निच्छेद्धनं क्षुधा ।
दम्भिहैतुकपाखण्डबकवृत्तींश्च वर्जयेत् ॥ ३० ॥

अपने वेदपाठ में बाधा डालनेवाले और न ऐसे वैसे के

धन की तथा विरुद्ध (अयाज्ययाजनादि वा नृत्यगीतादि) काम से भी धन अर्जन की इच्छा न करे और अपने मन में सदा सन्तोष रक्खे ॥ २९ ॥ क्षुधा से पीड़ित हो, तो राजा, अन्तेवासी, ब्रह्मचारी विशेष और यज्ञ कराने के योग्य जो हो इनसे धन माँगे परन्तु अहंकारी, युक्तिबल से सर्वत्र संशय करनेवाले, पाखण्डी, और बगला-भगत से न माँगे ॥ ३० ॥

शुक्लाम्बरधरो नीचकेशश्मश्रुनखः शुचिः ।
न भार्यादर्शनेऽश्नीयान्नैकवासा न संस्थितः ॥ ३१ ॥
न संशयं प्रपद्येत नाकस्मादप्रियं वदेत् ।
नाहितं नानृतं चैव न स्तेनः स्यान्न वार्धुषिः ॥ ३२ ॥

वस्त्र स्वच्छ रक्खे, केश, दाढ़ी, मोछ और नख को सदा कटा रक्खे और पवित्र रहे । अपनी स्त्री के सामने, एक ही वस्त्र पहनकर और खड़ा होकर भोजन न करे ॥ ३१ ॥ जिसमें प्राण का संशय हो ऐसा काम न करे, अकस्मात् कड़ी बात न कहे, किसी का अहित और कूट न बोले, चोर और व्याजखोर न हो ॥ ३२ ॥

दाक्षायणी ब्रह्मसूत्री वेणुमान्सकमण्डलुः ।
कुर्यात्प्रदक्षिणं देवमृद्गोविप्रवनस्पतीन् ॥ ३३ ॥
न तु मेहेन्नदीछायावर्त्मगोष्ठाम्बुभस्मसु ।
न प्रत्यग्न्यर्कगोसोमसन्ध्याम्बुस्त्रीद्विजन्मनः ॥ ३४ ॥

दाक्षायण (सोने के कुंडल), यज्ञोपवीत, दण्ड और कमण्डलु इनको सदा धारण करे, देवता और देवमूर्त्ति बनाने के लिये जो मृत्तिका हो, गौ, ब्राह्मण और वनस्पति को दहिनी प्रदक्षिणा देकर गमन करे ॥ ३३ ॥ नदी, परछाहीं, पथ, गोशाला, जल

और राख में मूत्र और मल न करे, सूर्य, अग्नि, गौ, चन्द्रमा, जल, स्त्री और द्विजों के सामने मुँह करके तथा संध्या समय में भी मूत्र और पुरीष न करे ॥ ३४ ॥

नेक्षेतार्कं न नग्नां स्त्रीं न च संसृष्टमैथुनाम् ।
न च मूत्रं पुरीषं वा नाशुची राहुतारकाः ॥ ३५ ॥
अयं मे वज्र इत्येवं सर्वं मन्त्रमुदीरयेत् ।
वर्षत्यप्रावृतो गच्छेत्स्वपेत्प्रत्यक्शिरा न च ॥ ३६ ॥

सूर्य, नग्न और मैथुन की हुई स्त्री, मूत्र और पुरीष इनको न देखे, अशुद्ध देह हो तो राहु और तारों को न देखे ॥ ३५ ॥ पानी बरसते में कहीं जाना हो तो (अयम्मे वज्र) इस सारे मन्त्र को कहता छतरी के विना चलदे और पश्चिम शिर होकर शयन न करे ॥ ३६ ॥

ष्ठीवनासृक्शकृन्मूत्ररेतांस्यप्सु न निःक्षिपेत् ।
पादौ प्रतापयेन्नाग्नौ न चैनमभिलङ्घयेत् ॥ ३७ ॥
जलं पिबेन्नाञ्जलिना शयानं न प्रबोधयेत् ।
नाक्षैः क्रीडेन्न धर्मघ्नैर्व्याधितैर्वा न संविशेत् ॥ ३८ ॥

खखार, रुधिर, विष्ठा, मूत्र और वीर्य इन्हें जल में न डाले, पाँव आग में न तपावे और न आग को उलाँघे ॥ ३७ ॥ अंजली से जल न पीवे, कोई सोया हो तो न जगावे, पासा न खेले, धर्मनाश करनेवाले (पशुमारण आदि) वस्तुओं से भी न खेले और रोगियों के साथ शयन न करे ॥ ३८ ॥

विरुद्धं वर्जयेत्कर्म प्रेतधूमं नदीतरम् ।
केशभस्मतुषाङ्गारकपालेषु च संस्थितिम् ॥ ३९ ॥

नाचक्षीत धयन्तीं गां नाद्वारेण विशेत् क्वचित् ।
न राज्ञः प्रतिगृह्णीयाल्लुब्धस्योच्छास्त्रवर्त्तिनः ॥ ४० ॥

देश कुलादि के आचार से विरुद्ध कर्म न करे, प्रेतधूम और नदी का तैरना छोड़ देवे । केश, भस्म, भूसी, कोला और खपड़ोई पर न बैठे ॥ ३९ ॥ दूध पिलाती हुई गौ को न सतावे, कुराह से कहीं न बैठे, लोभी और शास्त्रविरुद्ध चलनेवाले राजा का दान न लेवे ॥ ४० ॥

प्रतिग्रहे सूनिचक्रिध्वजिवेश्यानराधिपाः ।
दुष्टा दशगुणं पूर्वात्पूर्वादेते यथाक्रमम् ॥ ४१ ॥
अध्यायानामुपाकर्म श्रावण्यां श्रवणेन च ।
हस्तेनौषधिभावे वा पञ्चम्यां श्रावणस्य तु ॥ ४२ ॥

दान लेने में कसाई, तेली, कलार, वेश्या और राजा ये पांचों पहिले-पहिले से दूसरे-दूसरे दश-दशगुना अधिक निषिद्ध (दुष्ट) हैं ॥ ४१ ॥ वेदों के पढ़ने का उपाकर्म (आरम्भ) औषधियों के उगने पर सावन महीने की पूर्णमासी को श्रवण नक्षत्रयुक्त किसी दूसरे दिन, अथवा हस्तनक्षत्र युक्त सावन की पंचमी को करे ॥ ४२ ॥

पौषमासस्य रोहिण्यामष्टकायामथापि वा ।
जलान्ते छन्दसां कुर्यादुत्सर्गविधिं बहिः ॥ ४३ ॥
त्र्यहं प्रेतेष्वनध्यायः शिष्यर्त्विग्गुरुबन्धुषु ।
उपाकर्मणि चोत्सर्गे स्वशाखाश्रोत्रिये तथा ॥ ४४ ॥

पौष महीने की रोहिणी वा अष्टमी के दिन ग्राम से बाहर किसी जलाशय के समीप विधिपूर्वक वेदों का उत्सर्ग (त्याग)

करे ॥ ४३ ॥ शिष्य, ऋत्विज्, गुरु और बन्धु इनके मरने पर वेदों के आरम्भ और उत्सर्ग में जो अपनी शाखा हो उसीको दूसरा भी पढ़ता हो और मरजाय भी तो तीन दिन अनध्याय होता है ॥ ४४ ॥

सन्ध्यागर्जितनिर्घातभूकम्पोल्कानिपातने ।
समाप्य वेदं द्युनिशमारण्यकमधीत्य च ॥ ४५ ॥
पञ्चदश्यां चतुर्दश्यामष्टम्यां राहुसूतके ।
ऋतुसन्धिषु भुक्त्वा वा श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च ॥ ४६ ॥

संध्या समय में मेघ की गर्जना हो, आकाश में कोई उत्पात शब्द हो, भूकम्प, उल्कापात (तारा टूटकर गिरे) और वेद समाप्त हुआ हो वा आरण्यक पढ़चुके हों, तो एक दिन रात अनध्याय होता है ॥ ४५ ॥ अमावस, पूर्णमासी, चतुर्दशी, अष्टमी, चन्द्र सूर्य ग्रहण जिस प्रतिपत् को ऋतुओं का आरम्भ हो, और श्राद्ध में भोजन करे वा दान लिया हो, तो भी एक दिन रात अनध्याय करना ॥ ४६ ॥

पशुमण्डूकनकुलमार्जारश्वाहिमूषकैः ।
कृतेन्तरे त्वहोरात्रं शक्रपाते तथोच्छ्रये ॥ ४७ ॥
श्वक्रोष्टुगर्दभोलूकसामबाणार्तनिःस्वने ।
अमेध्यशवशूद्रान्त्यश्मशानपतितान्तिके ॥ ४८ ॥

कोई पशु, मेंढक, नेवला, कुत्ता, सर्प, बिडाल और मूषक यदि पढ़ने पढ़ानेवालों के बीच से निकल जावें, इन्द्रध्वजा को खड़ी करें वा उतारें तो एक दिन रात अनध्याय करना चाहिए ॥ ४७ ॥ कुत्ता, शृगाल, गर्दभ, उलूकपक्षी, सामवेदध्वनि और

दुःखित मनुष्य इनका शब्द सुन पड़े कोई अपवित्र वस्तु मृतक, शूद्र, अन्त्यज, श्मशान और पतित ये नज़दीक हों ॥ ४८ ॥

देशे शुचावात्मनि च विद्युत्स्तनितसंप्लवे ।
भुक्त्वार्द्रपाणिरम्भोन्तरर्द्धरात्रेतिमारुते ॥ ४९ ॥
पांशुवर्षे दिशां दाहे सन्ध्यानीहारभीतिषु ।
धावतः पूतिगन्धे च शिष्टे च गृहमागते ॥ ५० ॥

अपवित्र स्थल अशुद्ध देह हो, वारंवार विजली चमके, वारम्बार मेघ गर्जे, भोजन करने से गीले हाथ हों, जलके बीच खड़ा हो, आधीरात में बहुत पवन चलता हो ॥ ४९ ॥ धूल बरसती हो, दिशा जलती देख पड़े, सांझ सवेरे के धुंध में कोई भय हो, दौड़ता हो, दुर्गन्ध आती हो, कोई शिष्ट अपने घर आया हो ॥ ५० ॥

खरोष्ट्रयानहस्त्यश्वनौवृक्षेरिणरोहणे ।
सप्तत्रिंशदनध्यायानेतांस्तात्कालिकान् विदुः ॥ ५१ ॥
देवर्त्विक्स्नातकाचार्यराज्ञां छायां परस्त्रियाः ।
नाक्रामेद्रक्तविण्मूत्रष्ठीवनोद्वर्तनादि च ॥ ५२ ॥

गधा, ऊंट, रथ, हाथी, घोड़ा, नौका, वृक्ष और ऊपर भूमि इनपर चढ़ना ये सैंतीस अनध्याय जब तक इनसे सम्बन्ध रहे तभी तक होते हैं ॥ ५१ ॥ देवता, ऋत्विज्, स्नातक, आचार्य, राजा और परस्त्री इनकी छाया और रुधिर, विष्ठा, मूत्र, खखार और उबटन की लीभी को लांघना न चाहिए ॥ ५२ ॥

विप्राहिक्षत्रियात्मानो नावज्ञेयाः कदाचन ।
आमृत्योःश्रियमाकांक्षेन्न कञ्चिन्मर्मणि स्पृशेत् ॥ ५३ ॥

दूरादुच्छिष्टविण्मूत्रपादाम्भांसि समुत्सृजेत्।
श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यङ्नित्यमाचारमाचरेत् ॥ ५४ ॥

बहुश्रुत ब्राह्मण, सर्प, क्षत्रिय और अपनी आत्मा का कभी अपमान न करना, मरणपर्यन्त धन की इच्छा रक्खे, किसी को दुःखदायी बात न कहे ॥ ५३ ॥ जूठा, मल, मूत्र और पांव धोने का जल दूर फेंकना, श्रुति और स्मृतियों में कहे आचार को भली भाँति नित २ करे ॥ ५४ ॥

गोब्राह्मणानलान्नानि नोच्छिष्टानि पदा स्पृशेत्।
न निन्दाताडने कुर्यात्सुतं शिष्यञ्च ताडयेत् ॥ ५५ ॥
कर्मणा मनसा वाचा यत्नाद्धर्मं समाचरेत्।
अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टं धर्ममप्याचरेन्न तु ॥ ५६ ॥

गो, ब्राह्मण, अग्नि और भोजन के अन्न को अशुद्ध होकर अथवा, पाँव से न छुवे किसी की निन्दा और ताड़ना न करे पुत्र और शिष्य को पढ़ने के लिये ताड़ना करे ॥ ५५ ॥ कर्म, मन और वाणी से यत्नपूर्वक धर्म करे जो कर्म शास्त्रविहित हो परन्तु लोकविरुद्ध हो और उससे स्वर्गगति न होती हो, तो उसे न करे ॥ ५६ ॥

मातृपित्रातिथिभ्रातृजामिसम्बन्धमातुलैः।
वृद्धबालातुराचार्यवैद्यसंश्रितबान्धवैः ॥ ५७ ॥
ऋत्विक्पुरोहितापत्यभार्यादाससनाभिभिः।
विवादं वर्जयित्वा तु सर्वाँल्लोकाञ्जयेद् गृही ॥५८॥

माता, पिता, अतिथि (पहुना), भाई, जिन स्त्रियों के पति जीते हों, संबंधी, मामा, वृद्ध, बालक, रोगी, आचार्य, वैद्य,

आश्रित बान्धव ॥ ५७ ॥ ऋत्विज्, पुरोहित, पुत्र, भार्या, दास, सोदर भाई और बहिन इनसे विवाद करना छोड़दे तो सब लोगों को वह गृहस्थ जीत लेता है ॥ ५८ ॥

पञ्चपिण्डाननुद्धृत्य न स्नायात्परवारिषु ।
स्नायान्नदीदेवखातह्रदप्रस्रवणेषु च ॥ ५९ ॥
परशय्यासनोद्यानगृहयानानि वर्जयेत् ।
अदत्तान्यग्निहीनस्य नान्नमद्यादनापदि ॥ ६० ॥

दूसरे के जलाशय में पाँच मुट्ठी मिट्टी निकाले विना, स्नान न करे और नदी, देवखात (पुष्कर आदि) ह्रद (कुण्ड) और झरना इनमें स्नान करले ॥ ५९ ॥ दूसरे की शय्या, आसन, बगीचा, घर और रथ का उपभोग उसकी आज्ञा विना यदि आपत्काल न हो, तो कभी न करना अग्निहोत्र का अधिकार जिसे न हो उसका अन्न भी विना आपत्काल के न खाना चाहिए ॥ ६० ॥

कदर्यबद्धचोराणां क्लीबरङ्गावतारिणाम् ।
वैणाभिशस्तवार्धुष्यगणिकागणदीक्षिणाम् ॥ ६१ ॥
चिकित्सकातुरक्रुद्धपुंश्चलीमत्तविद्विषाम् ।
क्रूरोग्रपतितव्रात्यदाम्भिकोच्छिष्टभोजिनाम् ॥ ६२ ॥

लोभी, बँधुवा, चोर, नपुंसक, रंगावतारी, नट, मनारी मल्ल आदि (वैण, अभिशस्त, वार्द्धुष्य ब्याजखोर) वेश्या, बहुयाचक ॥ ६१ ॥ वैद्य, रोगी, क्रोधी, व्यभिचारिणी, मत्त (विद्या आदि गर्भयुक्त) शत्रु, क्रूर (जिसके मन में अचलकोप हो) उग्र (जो वाणी व चेष्टा से दूसरे को उद्विग्न करे) पतित, व्रात्य (जिसे समय पर गायत्री का उपदेश न हुआ) ठग और जूठा खानेवाला ॥ ६२ ॥

अवीरास्त्रीस्वर्णकारस्त्रीजितग्रामयाजिनाम् ।
शस्त्रविक्रयकर्मारतन्तुवायाश्ववजीविनाम् ॥ ६३ ॥
नृसंसराजरजककृतघ्नवधजीविनाम् ।
चैलधावसुराजीविसहोपपतिवेश्मनाम् ॥ ६४ ॥

स्वतंत्र स्त्री, सोनार, स्त्रीवश, ग्रामयाजी, शास्त्रबेंचनेवाला, लोहार, खाती, तन्तुवाय (जोलाहा या दर्जी) और जिसकी जीविका कुत्तों के द्वारा हो ॥ ६३ ॥ निर्दय, राजा, रजक (रंगरेज) कृतघ्न (उपकार न माननेवाला) व्याध, धोबी, सुरा बेचनेवाला, जार, लम्पट पुरुष का पड़ोसी ॥ ६४ ॥

पिशुनानृतिनांश्चैव तथा चाक्रिकवन्दिनाम् ।
एषामन्नं न भोक्तव्यं सोमविक्रयिणस्तथा ॥ ६५ ॥
शूद्रेषु दासगोपालकुलमित्रार्द्धसीरिणः ।
भोज्यान्ना नापितश्चैव यश्चात्मानं निवेदयेत् ॥ ६६ ॥

पिशुन (परदोष सूचक) अनृती (मिथ्यावादी) तेली, गाड़ी चलानेवाला, वन्दीजन और सोमलता बेचनेवाला जो हो इन सबोंका अन्न भी कभी न खाना ॥ ६५ ॥ शूद्रों में दास, गोपाल अहीर, कुलमित्र (जिसकी मिताई बाप दादे से चली आती हो) अर्द्धसीरी (साझे में खेती करनेवाला) नापित और जो शरणागत इन सबोंका अन्न खाना ॥ ६६ ॥

स्नातक प्रकरण समाप्त ॥

भक्ष्याभक्ष्यप्रकरण ।

अनर्चितं वृथामांसं केशकीटसमन्वितम् ।
शुक्तं पर्युषितोच्छिष्टं श्वस्पृष्टं पतितेक्षितम् ॥ ६७ ॥

उदक्यास्पृष्टसंघुष्टं पर्य्यायान्नं च वर्जयेत् ।
गोघ्रातं शकुनोच्छिष्टं पदास्पृष्टं च कामतः ॥६८॥

अनादर से दिया हुआ अन्न, वृथामांस (अपनेलिये पकाया हुआ मांस) जिस अन्न में केश व कीट पड़े हों, जो अम्ल हो गया हो, बासी, जूठा, कुत्ता से छूगया, पतित से देखा हुआ ॥ ६७॥ रजस्वला स्त्री से छूगया, जो पुकार के दियाजाता हो, दूसरे का अन्न दूसरा देता हो, जिसको गौ ने सूंघा हो, पक्षी का जूठा और जिसको जानबूझ के कोई पाँव से छू दे, इन सब प्रकार के अन्नों को निषिद्ध जानना ॥ ६८ ॥

अन्नं पर्युषितं भोज्यं स्नेहाक्तं चिरसंस्थितम् ।
अस्नेहा अपि गोधूमयवगोरसविक्रियाः ॥ ६९ ॥
सन्धिन्यनिर्दशावत्सगोपयः परिवर्जयेत् ।
औष्ट्रमैकशफं स्त्रैणमारण्यकमथाविकम् ॥ ७० ॥

जिस अन्न में घृत आदि की चिकनाई हो, तो उसे बासी भी खाना । गेहूँ, यव और गोरस का विकार जो वस्तु हो उसमें चिकना न हो तो भी खा लेना ॥ ६९ ॥ संधिनी (बरदाई हुई गौ एक बार लगनेवाली वा जो दूसरे के बछरे से दुही जावे) जिसको लाये हुए दशदिन न बीते हों और जिसका बछड़ा न हो, ऐसी गौ और ऊँट, एक खुरवाले पशु, स्त्री, जंगलीपशु और भेड़ इनका दूध न पीवे ॥ ७० ॥

देवतार्थं हविः शिग्रुं लोहितान् व्रश्चनांस्तथा ।
अनुपाकृतमांसानि विड्जानि कवकानि च ॥ ७१ ॥

क्रव्यादपक्षिदात्यूहशुकप्रतुदटिट्टिभान्।
सारसैकशफान् हंसान्सर्वांश्च ग्रामवासिनः॥ ७२॥

देवता के निमित्त पकाया हुआ हविष्यान्न होम के पूर्व अभक्ष्य है। सहिंजन की फली और जिन वृक्षों से गोंद निकले, मल-स्थान में जो शाक भाजी पैदा हो, वर्षों में पैदा कठफूल, ये सब अभक्ष्य हैं। विधि के विना, सब मांस भी अभक्ष्य ही हैं॥७१॥ क्रव्याद पक्षी, कच्चा मांस खानेवाला पक्षी, चातक, तोता, चोंच से तोड़ के खानेवाले, टिटहरी, सारस, एक खुरवाले, हंस और जो पक्षी ग्राम में रहते हों॥ ७२॥

कौयष्टिप्लवचक्राह्वबलाकाबकविष्किरान्।
वृथाकृशरसंयावपायसापूपशष्कुलीः॥ ७३॥
कलविङ्कं सकाकोलं कुररं रज्जुदालकम्।
जालपादान्खञ्जरीटानज्ञातांश्च मृगद्विजान्॥ ७४॥

कौयष्टि (क्रौञ्च) जलकुक्कुट, चकवा, चकवी, बगला, विष्किर (जो नख से छील करके खाते हैं चकोर आदि) इन्हें और जो कृशर (तिलवा मूँगा की भाँति) संयाव (दूध, गुड़ और घी से जो बनै) पायस (खीर) पुआ और पूरी देवता के निमित्त बनी हो॥ ७३॥ कलविंक (चटकी) द्रोणकाक, कुरर, वृक्ष, कुट्टक, जालपाद (जिनका पैर चमड़े से मढ़ा हो चील्ह वगैरह), खिड़रीच और जिन पक्षी और मृगों को न जानते हों॥ ७४॥

चाषांश्च रक्तपादांश्च सौनं वल्लूरमेव च।
मत्स्यांश्च कामतो जग्ध्वा सोपवासस्त्र्यहं वसेत्॥७५॥

पलाण्डुं विड् वराहं च छत्राकं ग्रामकुक्कुटम् ।
लशुनं गृञ्जनं चैव जग्ध्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ ७६ ॥

चाष (नीलकण्ठ) रक्तपाद (कादंब आदि) कसाई के मारे हुए पशु का मांस, सूखा मांस और मछली इन सबोंको न खावे यदि समझ बूझ के खावे तो तीन दिन उपवास करे ॥ ७५ ॥ पलाण्डु (प्याज) ग्रामशूकर, छत्राक (कुकरमुत्ता), ग्रामकुक्कुट, लशुन और गाजर इन्हें जान बूझ कर खावे तो चान्द्रायण व्रत करे ॥ ७६ ॥

भक्ष्याः पञ्चनखाः सेधा गोधाकच्छपशल्लकाः ।
शशश्च मत्स्येष्वपि हि सिंहतुण्डकरोहिताः ॥ ७७ ॥
तथा पाठीनराजीवसशल्काश्च द्विजातिभिः ।
अतः शृणुध्वं मांसस्य विधिं भक्षणवर्जने ॥ ७८ ॥

पञ्चनख (पंजेदार) जीवों में सेधा (सेंधुआर) गोह, कछुआ, साही और खरहा इनका मांस खाने के योग्य है । और मछलियों में सिंही (सिंहतुण्डका) रोहू (रोहित) ॥ ७७ ॥ पढ़िना (पाठीना) राजीव (कमल के रंग का-सा) इन सबको और सशल्क (सेहरेवाली) मछली हों उन्हें भी द्विजाति भोजन न करे । अब सामान्य से सब वर्णों के लिये मांस के खाने और वराने की विधि सुनो ॥ ७८ ॥

प्राणात्यये तथा श्राद्धे प्रोक्षितं द्विजकाम्यया ।
देवान् पितॄन् समभ्यर्च्य खादन्मांसं न दोपभाक् ७६
वसेत्स नरके घोरे दिनानि पशुरोमभिः ।
सम्मितानि दुराचारो यो हन्त्यविधिना पशून् ॥ ८०

जब आपत्काल में मारा जाते हों, श्राद्ध में, यज्ञ में, ब्राह्मणों की कामना से, देव और पितरों की पूजा करके, यदि मांस खाया जाय तो थोड़ा दोष लगता है। नहीं तो बड़ा दोष लगता है ॥ ७९ ॥ जो दुराचारी विधि (देवपितर पूजन) से बिना पशु को मारता है वह जितने रोम उस पशु की देह में हों उतने दिन घोर नरक में वास करता है ॥ ८० ॥

सर्वान्कामानवाप्नोति हयमेधफलं तथा ।
गृहेऽपि निवसन्विप्रो मुनिर्मांसविवर्जनात् ॥ ८१ ॥

मांस खाना छोड़ दे तो सारे मनोरथ और अपने अश्वमेध यज्ञ का फल पाता है। और मांस खाना छोड़ घर में भी रहे तो वह ब्राह्मण मुनि तुल्य माना जाता है ॥ ८१ ॥

इति भक्ष्याभक्ष्यप्रकरण समाप्त ।

अथ द्रव्यशुद्धिप्रकरण ।

सौवर्णराजताब्जानामूर्ध्वपात्रगृहाश्मनाम् ।
शाकरज्जुमूलफलवासोविदलचर्मणाम् ॥ ८२ ॥

सोने चांदी और अब्ज (शङ्ख, शुक्ति और मुक्ता आदि) के पात्र, यज्ञ की ऊखली सह (यज्ञियपात्र विशेष) पत्थर, शाक, रस्सी, मूल, फल, वस्त्र, बाँस और चाम से जो बने ॥ ८२ ॥

पात्राणां चमसानां च वारिणा शुद्धिरिष्यते ।
चरुस्रुक्स्रुवसस्नेहपात्राण्युष्णेन वारिणा ॥ ८३ ॥
स्फ्यशूर्पाजिनधान्यानां मुसलोलूखलानसाम् ।
प्रोक्षणं संहतानां च बहूनां धान्यवाससाम् ॥ ८४ ॥

पात्र (प्रोक्षणी आदि) और चमस (होतृ चमस आदि) ये सब जल से धोने ही से शुद्ध होते हैं । चरुस्थाली, स्रुक् और स्रुव (तीनों यज्ञ के पात्र हैं) और जिस पात्र में घी के सदृश चिकनाई होवे वे सब गरम जल से शुद्ध होते हैं ॥ ८३ ॥ स्फ्य (यज्ञ वस्त्र) सूप, चर्म, धान्य, मुसल, उखली और शकट (गाड़े) ये भी उष्णजल से शुद्ध होते और बहुत सा अन्न और वस्त्र इकट्ठे हों तो जल के छींटे ही से शुद्ध होते हैं ॥ ८४ ॥

तक्षणं दारुशृङ्गास्थ्नां गोवालैः फलसंभुवाम् ।
मार्जनं यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि ॥ ८५

सोखैरुदक्गोमूत्रैः शुद्धत्याविककौशिकम् ।
सश्रीफलैरंशुपट्टं सारिष्टैः कुतपं तथा ॥ ८६ ॥

काष्ठ सींग और हड्डियों के पात्र छीलने से, फल के पात्र गोबाल से और यज्ञ में यज्ञपात्र हाथ से पोछने से ही शुद्ध होते हैं ॥ ८५ ॥ कम्बल, टसरी आदि वस्त्र, रेह, गोमूत्र और पानी से शुद्ध होते हैं । वृक्ष के छिलके से जो वस्त्र बनता है सो बिल्व-फल, रेह, गोमूत्र और जल से और कुतप (दुशाला आदि) रीठी और रेह आदि तीनों चीज़ों से शुद्ध होते हैं ॥ ८६ ॥

सगौरसर्षपैः क्षौमं पुनः पाकान्महीमयम् ।
कारुहस्तः शुचिःपण्यं भैक्ष्यं योषिन्मुखंतथा ॥ ८७ ॥

भूशुद्धिर्मार्जनाद्दाहात्कालाद्गोक्रमणात्तथा ।
सेकादुल्लेखनोल्लेपाद् गृहं मार्जनलेपनात् ॥ ८८ ॥

अतसी के सूत से बना वस्त्र पीले सरसों और गोमूत्र आदि से शुद्ध होता है । मिट्टी का बर्तन फिर पकाने से शुद्ध होता है ।

कारु (शिल्पी, धोबी, रंगरेज आदि) का हाथ, बिक्री की चीज़, भिक्षा और भोगकाल में स्त्री का मुख ये सदा पवित्र हैं ॥ ८७ ॥ भूमि को शुद्ध मार्जन (झाड़ू देना) जलाना, काल (कुछ दिन बीतने से) गौ के बैठने से, पानी छिड़कने से, खनने से और लेपने से होती है और घर मार्जन और लेपन ही से शुद्ध होता है ॥ ८८ ॥

गोघ्रातेऽन्ने तथा केशमक्षिकाकीटदूषते ।
सलिलं भस्म मृद्वापि प्रक्षेप्तव्यं विशुद्धये ॥ ८९ ॥
त्रपुसीसकताम्राणां क्षाराम्लोदकवारिभिः ।
भस्माद्भिः कांस्यलोहानां शुद्धिः प्लावोद्रवस्य तु ॥ ९० ॥

जिस खाने की चीज़ को गौ सूँघ ले और जिसमें मक्खी, बाल वा कोई कृमि पड़ गया हो तो उसकी शुद्धि जल भस्म वा मिट्टी डालने से होती है ॥ ८९ ॥ पीतल, सीसा और ताँबा ये धातु खारीजल, अम्लजल और शुद्ध जल से पवित्र होते हैं। काँसा और लोहा राख और जल से और जो द्रववस्तु (तेल वा घी के सदृश) हो वह तब शुद्ध होता है कि जब पात्र में डालते डालते उसके मुँह से निकल चले ॥ ९० ॥

अमेध्याक्तस्य मृत्तोयैः शुद्धिर्गन्धादिकर्षणात् ।
वाक्शस्तमम्बुनिर्णिक्तमज्ञातं च सदा शुचि ॥ ९१ ॥
शुचिगोतृप्तिकृत्तोयं प्रकृतिस्थं महीगतम् ।
तथा मांसश्च चाण्डालक्रव्यादादिनिपातितम् ॥ ९२ ॥

जो वस्तु मलमूत्र आदि अपवित्र से लिप्त हो उसे मृत्तिका और जल से इतना मले कि लेप और गन्ध दोनों चले जावें,

तब वह शुद्ध होता है । किसी वस्तु की शुद्धता में संदेह हो तो ब्राह्मण के वचन और जलप्रक्षेप से शुद्ध करना । जिसकी अशुद्धता मालूम नहीं वह सदा शुद्ध है ॥ ६१ ॥ पवित्र भूमि पर एक गौ के पीने पर भी स्वच्छ जल पड़ा हो तो वह शुद्ध है । और कुत्ता, चाण्डाल आदि से मारे हुए जन्तु का मांस भी शुद्ध है ॥ ६२ ॥

रश्मिरग्नीरजश्छाया गौरश्वो वसुधानिलः ।
विप्रुषो मक्षिकास्पर्शे वत्सः प्रस्नवणे शुचिः ॥ ६३
अजाश्वयोर्मुखं मेध्यं न गोर्न नरजामलाः ।
पन्थानश्च विशुध्यन्ति सोमसूर्यांशुमारुतैः ॥ ६४

किरण, आग, धूल, परछाहीं, गौ, घोड़ा, पृथ्वी, वायु, वाफ की बूंद और मक्खी का छू जाना ये सदा पवित्र हैं और दूध दोहन में बछरा पवित्र है ॥ ६३ ॥ बकरे और घोड़े का मुँह शुद्ध है । गौ का मुँह और मनुष्य का मल अशुद्ध है । राह की शुद्धि चन्द्र-सूर्य की किरण और वायु से होती है ॥ ६४ ॥

मुखजा विप्रुषो मेध्यास्तथाचमनबिन्दवः ।
श्मश्रु चास्यगतं दन्तसक्तं त्यक्त्वा ततः शुचिः ॥ ६५ ॥
स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्त्वा रथ्योपसर्पणे ।
आचान्तः पुनराचामेद्वासो विपरिधाय च ॥ ६६ ॥

मुख से निकले थूक के बिन्दु और आचमन के भी बिन्दु शुद्ध होते हैं । दाढ़ी और मोछ के बाल मुँह में पड़ जावें तो अशुद्ध नहीं होते दाँत में लगे हुए जूठ को, गिरने पर फेंक देने से मुँह शुद्ध होता है ॥ ६५ ॥ स्नान, जलपान, छींकना, सोकर उठना,

भोजन करना, मार्ग से चलना, वस्त्र धारण करना वा वदलना इन कार्मों को करके आचमन करे ॥ ६६ ॥

रथ्याकर्दमतोयानि स्पृष्टान्यन्त्यश्ववायसैः ।
मारुतेनैव शुध्यन्ति पक्वेष्टकचितानि च ॥ ६७ ॥

राह का कीचड़, जल, चाण्डाल, कुत्ता और कौवे से स्पर्श होजाने पर वायु से ही शुद्धि होती है। पक्की ईंट से वना हुआ घर भी वायु से शुद्ध होता है ॥ ६७ ॥

इति द्रव्यशुद्धिप्रकरण ।

दानधर्मप्रकरण ।

तपस्तप्त्वासृजद्ब्रह्मा ब्राह्मणान्वेदगुप्तये ।
तृप्त्यर्थं पितृदेवानां धर्मसंरक्षणाय च ॥ ६८ ॥

विधाता ने धर्म और वेद की रक्षा के लिये और देवता पितरों की तृप्ति के निमित्त अपने तपोवल से ब्राह्मणों को उत्पन्न किया ॥६८॥

सर्वस्य प्रभवो विप्राः श्रुताध्ययनशीलिनः ।
तेभ्यः क्रियापराः श्रेष्ठास्तेभ्योऽप्यध्यात्मवित्तमाः ६६

न विद्यया केवलया तपसा वापि पात्रता ।
यत्र वृत्तमिमे चोभे तद्धि पात्रं प्रकीर्तितम् ॥ २०० ॥

सबसे ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। उनमें भी वेद पढ़नेवाले उत्कृष्ट हैं। उनसे वेद विहित कर्म करनेवाले और उनसे भी आत्म-तत्त्वज्ञानी उत्तम हैं ॥ ६६ ॥ केवल विद्या और तप से सुपात्र नहीं होता, जिसमें विहित कर्मों का अनुष्ठान और ये भी दोनों (विद्या और तप) पाये जायँ वही उत्तम पात्र कहाता है ॥२००॥

गोभूतिलहिरण्यादि पात्रे दातव्यमर्चितम् ।
नापात्रे विदुषा किञ्चिदात्मनः श्रेयइच्छता ॥ १ ॥
विद्यातपोभ्यां हीनेन नतु ग्राह्यः प्रतिग्रहः ।
गृह्णत्प्रदातारमधो नयत्यात्मानमेव च ॥ २ ॥

गौ, भूमि, तिल और सोना आदि जो वस्तु देनी हो सो विधिपूर्वक सुपात्र को देवे और अपनी भलाई चाहे तो जान-बूझ कुपात्र को न देवे ॥ १ ॥ जो ब्राह्मण विद्या और तप से हीन हो वह दान न लेवे, क्योंकि दान लेकर वह देनेवाले और अपने को भी नरक में ले जाता है ॥ २ ॥

दातव्यं प्रत्यहं पात्रे निमित्ते तु विशेषतः ।
याचितेनापि दातव्यं श्रद्धापूतं तु शक्तितः ॥ ३ ॥
हैमशृङ्गी खुरै रौप्यैः सुशीला वस्त्रसंयुता ।
सकांस्यपात्रा दातव्या क्षीरिणी गौः सदक्षिणा ॥ ४ ॥

सामर्थ्य हो तो प्रतिदिन सुपात्र को दान दे यदि कोई ग्रहण आदि निमित्त आ पड़े तो विशेष करके देना और माँगने पर श्रद्धापूर्वक शक्ति के अनुसार देना चाहिए ॥ ३ ॥ सोने से सींग और रूपे से खुर मढ़ा के वस्त्र ओढ़ाकर काँसे की दोहनी समेत सूधी और बहुत दूध देनेवाली गौ का दान करे ॥ ४ ॥

दातास्याः स्वर्गमाप्नोति वत्सरान् रोमसम्मितान् ।
कपिला चेत्तारयति भूयश्चासप्तमं कुलम् ॥ ५ ॥
सवत्सारोमतुल्यानि युगान्युभयतोमुखीम् ।
दातास्याः स्वर्गमाप्नोति पूर्वेण विधिना ददत् ॥ ६ ॥

जितने रोम गौ के शरीर में हों उतने वर्ष उसका देनेवाला स्वर्ग भोगता है । और गौ कपिला हो तो दाता सात पुरुषों समेत तर जाता है ॥ ५ ॥ यदि उभयतोमुखी गौ को पूर्वोक्त विधि से कोई दान करे तो, बछड़े और गौ दोनों के जितने रोम हों उतने युग पर्यन्त उसका दाता स्वर्ग भोग करता है ॥ ६ ॥

यावद्वत्सस्य पादौ द्वौ मुखं योन्यां च दृश्यते ।
तावद्गौः पृथिवी ज्ञेया यावद्गर्भं न मुञ्चति ॥ ७ ॥
यथाकथञ्चिद्दत्त्वा गां धेनुं वा धेनुमेव वा ।
अरोगामपरिक्लिष्टां दाता स्वर्गे महीयते ॥ ८ ॥

ब्याते समय जब से बछरे के दोनों पाँव और मुँह योनि में देख पड़ें और गर्भ से मुक्त न हो तब तक वह गौ उभयतोमुखी कहलाती है और पृथ्वी के समान होती है ॥ ७ ॥ जिस किसी प्रकार से दूध दे वा ठाँठ भी गौ को दे परन्तु रोगी और दुबली न हो तो उसका देनेवाला स्वर्ग में पूजित होता है ॥ ८ ॥

श्रान्तसंवाहनं रोगिपरिचर्या सुरार्चनम् ।
पादशौचं द्विजोच्छिष्टमार्जनं गोप्रदानवत् ॥ ९ ॥
भूदीपांश्चान्नवस्त्राम्भास्तिलसर्पिःप्रतिश्रयान् ।
नैवेशिकं स्वर्णधुर्यं दत्त्वा स्वर्गे महीयते ॥ १० ॥

थके को सुस्त करना, रोगी की सेवा, देवता का पूजन, द्विजों का पाँव धोना और उनके जूँठे का धोना ये सब गोदान के तुल्य हैं ॥ ९ ॥ भूमि, दीपक, अन्न, वस्त्र, जल, तिल, घी, विदेशी का आश्रय, गृहस्थाश्रम के लिये कन्यादान, सुवर्ण और बलीवर्द इन सबोंके देने से स्वर्ग में सुख पाता है ॥ १० ॥

गृहधान्याभयोपानच्छत्रमाल्यानुलेपनम् ।
यानं वृक्षं प्रियं शय्यां दत्त्वात्यन्तं सुखी भवेत् ॥११॥
सर्वधर्ममयं ब्रह्मप्रदानेभ्योऽधिकं यतः ।
तद्ददत्समवाप्नोति ब्रह्मलोकमविच्युतम् ॥ १२ ॥

गृहदान, धान्यदान, अभयदान, जूता, छाता, माला, चन्दन आदि अनुलेपन, यान (रथ आदि), वृक्ष, किसी के प्रियवस्तु का और शय्या का दान देने से अत्यन्त सुख पाता है ॥ ११ ॥ वेद (सब धर्मों को बताने से) सर्वधर्मरूप है, इसलिये वेददान करे (दूसरे को पढ़ावे वा पढ़वावे) तो ब्रह्मलोक में अचल वास पाता है ॥ १२ ॥

प्रतिग्रहसमर्थोऽपि नादत्ते यः प्रतिग्रहम् ।
ये लोकादानशीलानां स तानाप्नोति पुष्कलान् १३॥
कुशाः शाकं पयो मत्स्या गन्धाः पुष्पं दधि क्षितिः ।
मांसं शय्यासनं धानाः प्रत्याख्येयं न वारि च ॥१४॥

जो दान लेने के योग्य हो तो भी दान न ले तो जितने लोक दान देनेवाले को मिलते हैं उतने उसे भी मिलते हैं ॥ १३ ॥ कुशा, शाक, दूध, मछली, सुगन्ध, फूल, दही, भूमि, मांस, शय्या, आसन, भुने चावल और जल इन सबमें से किसी चीज़ को कोई देने लगे तो त्याग न करना ॥ १४ ॥

अयाचिताहृतं ग्राह्यमपि दुष्कृतकर्मणः ।
अन्यत्र कुलटाषण्ढपतितेभ्यस्तथा द्विषः ॥ १५ ॥
देवातिथ्यर्चनकृते गुरुभृत्यार्थमेव च ।
सर्वतः प्रतिगृह्णीयादात्मवृत्त्यर्थमेव च ॥ १६ ॥

विना माँगे कोई दुराचारी भी कुछ चीज़ देवे तो ले लेना परन्तु व्यभिचारिणी, पतित, नपुंसक और शत्रु की लाई चीज़ न लेना ॥ १५ ॥ देवता और अतिथि की पूजा के लिये और माता, पिता, गुरु, पुत्र और स्त्री आदि के भरण, पोषण के निमित्त और अपने प्राणरक्षा के लिये सबसे प्रतिग्रह लेना कुछ दोष नहीं ॥ १६ ॥

इति दानधर्मप्रकरण समाप्त ।

श्राद्धप्रकरण ।

अमावास्याष्टकावृद्धिः कृष्णपक्षोयनद्वयम् ।
द्रव्यं ब्राह्मणसम्पत्तिर्विषुवत्सूर्यसंक्रमः ॥ १७ ॥
व्यतीपातो गजच्छाया ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः ।
श्राद्धं प्रतिरुचिश्चैव श्राद्धकालाः प्रकीर्तिताः ॥१८॥

अमावास्या, अष्टका (हेमंत और शिशिर ऋतु के चारों कृष्ण-पक्ष की अष्टमी), वृद्धि (पुत्रजन्म आदि), पितृपक्ष, दोनों अयन (उत्तरायण दक्षिणायन), द्रव्य और ब्राह्मण की सम्पत्ति, मेष और तुला आदि सब सूर्यसंक्रांति ॥ १७ ॥ व्यतीपात (योग), गजच्छाया (योगविशेष), सूर्य और चन्द्रग्रहण और जब श्राद्ध करने की अपने को रुचि हो ये सब श्राद्धकाल हैं ॥ १८ ॥

अग्र्याः सर्वेषु वेदेषु श्रोत्रियो ब्रह्मविद्युवा ।
वेदार्थविज्ज्येष्ठसामा त्रिमधुस्त्रिसुपर्णिकः ॥ १९ ॥
स्वस्त्रीयऋत्विक्जामातृयाज्यश्वशुरमातुलाः ।
त्रिणाचिकेतदौहित्रशिष्यसम्बन्धिबान्धवाः ॥ २० ॥

सब वेदपाठियों में अग्रगण्य, श्रुताध्ययनसम्पन्न, ब्रह्मज्ञानी, जवान, वेद का अर्थ जाननेवाला, ज्येष्ठसामा नाम एक साम वेद को पढ़नेवाला, त्रिमधु नामक ऋग्वेद एक खण्डपाठी ऋग्वेद और यजुर्वेद का त्रिसुपर्ण नाम प्रकरण पढ़नेवाला ॥ १९ ॥ भागिनेय, ऋत्विज्, कन्यापति, यज्ञ कराने योग्य, श्वशुर, मातुल, यजुर्वेद का त्रिणाचिकेत नाम प्रकरण पढ़नेवाला, कन्या-पुत्र, शिष्य, सम्बन्धी और बान्धव ॥ २० ॥

कर्मनिष्ठास्तपोनिष्ठाः पञ्चाग्निर्ब्रह्मचारिणः ।
पितृमातृपराश्चैव ब्राह्मणाः श्राद्धसम्पदः ॥ २१ ॥
रोगी हीनातिरिक्ताङ्गः काणः पौनर्भवस्तथा ।
अवकीर्णी कुण्डगोलौ कुनखी श्यावदन्तकः ॥ २२ ॥

अपने कर्म में निष्ठा रखनेवाले, तपस्वी, पञ्चाग्नि (जिसको सभ्य आवसथ्य और त्रेताग्नि हों) ब्रह्मचारी और माता, पिता के भक्त इतने प्रकार के ब्राह्मण श्राद्ध को सफल करनेवाले होते हैं ॥ २१ ॥ रोगी जिसका कोई अंग अधिक हो वा कम हो, काणा, पुनर्भू स्त्री का पुत्र, अवकीर्णी (जिस ब्रह्मचारी का व्रत छूट गया हो) कुण्ड (पति के होते ही दूसरे से उत्पन्न पुत्र) गोलक (पति मरने पर दूसरे से उत्पन्न पुत्र) कुनखी, और काले दाँतवाला ॥ २२ ॥

भृतकाध्यापकः क्लीबः कन्यादूष्यभिशस्तकः ।
मित्रध्रुक् पिशुनः सोमविक्रयी परिविन्दकः ॥ २३ ॥
मातापितृगुरुत्यागी कुण्डाशी वृषलात्मजः ।
परपूर्वापतिस्तेनः कर्मदुष्टाश्च निन्दिताः ॥ २४ ॥

वेतन देकर वा लेके जो पढ़े पढ़ावे, नपुंसक, कन्या को

दूषण लगानेवाला महापातकी, मित्रद्रोही, चुगुल, सोमलता का बेचनेवाला और परिवित्ति (जेठे भाई के रहते ही छोटा ब्याहा गया) ॥ २३ ॥ निर्दोष माता, पिता और गुरु आदि को त्याग करनेवाला, पूर्वोक्त कुण्ड का अन्न खानेवाला, अधर्मी का पुत्र, पुनर्भू का पति, चोर और शास्त्रविरुद्ध कर्म करनेवाला ये सब ब्राह्मण श्राद्ध में निन्दित हैं ॥ २४ ॥

निमन्त्रयेत पूर्वेद्युर्ब्राह्मणानात्मवाञ्छुचिः ।
तैश्चापि संयतैर्भाव्यं मनोवाक्कायकर्मभिः ॥ २५ ॥
अपराह्णे समभ्यर्च्य स्वागतेनागतांस्तु तान् ।
पवित्रपाणिराचान्तानासनेषूपवेशयेत ॥ २६ ॥

श्राद्ध के पहिले दिन ब्राह्मणों को निमन्त्रण देना, इन्द्रियों का संयम और देह की पवित्रता रखना, निमन्त्रित ब्राह्मणों को भी मनवाणी और देहव्यापार का संयम करना अवश्यही चाहिए ॥२५॥ उन निमन्त्रित ब्राह्मणों को अपराह्णकाल में बुलाकर कोमलवाणी से पूजा करनी, अपना हाथ शुद्ध करके उन्हें (पाँव धुलवाकर) आचमन करावे और आसनों पर बैठाले ॥ २६ ॥

युग्मान्दैवे यथाशक्ति पित्र्ये युग्मांस्तथैव च ।
परिस्तृते शुचौ देशे दक्षिणाप्रवणे तथा ॥ २७ ॥
द्वौ दैवे प्राक् त्रयः पित्र्ये उदगेकैकमेव वा ।
मातामहानामप्येवं तंत्रं वा वैश्वदेविकम् ॥ २८ ॥

दैव (अभ्युदयिक) श्राद्ध में अपनी शक्ति के अनुसार युग्म (इत्यादि समसंख्यायुक्त) ब्राह्मणों को और पितृ (पार्वण आदि) श्राद्धों में अयुग्म १,३,५,७ आदि ब्राह्मणों को पवित्र जिसने

आसन बिछा हो और दक्षिण की ओर झुकती हो ऐसी भूमिपर बिठलावे ॥ २७ ॥ विश्वेदेवों की ओर दो ब्राह्मण पूर्वमुख बैठाले और पितरों की ओर उत्तरमुख तीन ब्राह्मण बैठाले अथवा दोनों ओर एक-एक बिठलावे इसीप्रकार मातामही के श्राद्ध में भी करे और वैश्वदेव के ब्राह्मणों का चाहे तन्त्र (दोनों को एक ही ब्राह्मण से) करलेवे ॥ २८ ॥

पाणिप्रक्षालनं दत्त्वा विष्टरार्थं कुशानपि ।
आवाहयेदनुज्ञातो विश्वेदेवास इत्यृचा ॥ २९ ॥
यवैरन्ववकीर्याथ भाजने सपवित्रके ।
शन्नोदेव्या पयः क्षिप्त्वा यवोसीति यवांस्तथा ॥ ३० ॥

ब्राह्मणों को हाथ धुला कर बैठने के लिये कुश देवे तब उनकी आज्ञा लेकर विश्वेदेवास इस मन्त्र से आवाहन करना ॥ २९ ॥ यव फेंकने के बाद पवित्र सहित पात्र में शन्नोदेवी इससे जल और यवोसि इस मन्त्र से यव डाले ॥ ३० ॥

या दिव्या इति मन्त्रेण हस्तेष्वर्घ्यं विनिक्षिपेत् ।
दत्त्वोदकं गन्धमाल्यं धूपदानं सदीपकम् ॥ ३१ ॥
तथाच्छादनदानं च करशौचार्थमम्बु च ।
अपसव्यं ततः कृत्वा पितॄणामप्रदक्षिणम् ॥ ३२ ॥

(या दिव्या) इस मन्त्र से ब्राह्मणों के हाथ में अर्घ डालना तब शुद्धजल, चन्दन, माला, धूप और दीप देना ॥ ३१ ॥ आच्छादन के अर्थ वस्त्र और हाथ धोने को जल भी देवे अनन्तर अपसव्य करके पितरों को वामावर्त्त से ॥ ३२ ॥

द्विगुणांस्तु कुशान्दत्वा ह्युशंतस्त्वेत्यृचा पितॄन् ।
आवाह्य तदनुज्ञातो जपेदायान्तुनस्ततः ॥ ३३ ॥
अपहता इति तिलान्विकीर्य च समन्ततः ।
यवार्थास्तु तिलैः कार्याः कुर्यादर्घ्यादि पूर्ववत् ॥ ३४ ॥

दोहरे कुशों का आसन आदि देके (उशन्तस्त्वा) इस मन्त्र से पितरों का आवाहन ब्राह्मणों की आज्ञा लेकर करे इसके अनन्तर (आयन्तुनः) इस मन्त्र को जपे ॥ ३३ ॥ (अपहता) इस मन्त्र से चारों ओर तिल छिड़कना, यव के बदले तिल काम में लाना और अर्घ्य आदि पहिले के सदृश करना ॥ ३४ ॥

दत्त्वार्घ्यं संस्रवां तेषां पात्रे कृत्वा विधानतः ।
पितृभ्यः स्थानमसीतिन्युब्जं पात्रं करोत्यधः ॥ ३५ ॥
अग्नौ करिष्यन्नादाय पृच्छत्यन्नं घृतप्लुतम् ।
कुरुष्वेत्यभ्यनुज्ञातो हुत्वाग्नौ पितृयज्ञवत् ॥ ३६ ॥

ब्राह्मणों के हाथ में अर्घ देना और उनके हाथ से जो जल चुवे उसे पात्र में रोप के विधिपूर्वक उस पात्र को पितृभ्यः स्थानमसि ऐसा कहके औंधा करदेना ॥ ३५ ॥ अग्नौकरण के लिये घी से भीगा अन्न लेके पितृ ब्राह्मणों से पूछे जब वे आज्ञा दें, तो अग्नि में पितृयज्ञ के विधान से हवन करना ॥ ३६ ॥

हुतशेषं प्रदद्यात्तु भाजनेषु समाहितम् ।
यथालाभोपपन्नेषु रौप्येषु च विशेषतः ॥ ३७ ॥
दत्त्वान्नं पृथिवीपात्रमिति पात्राभिमन्त्रणम् ।
कृत्वेदं विष्णुरित्यन्ने द्विजाङ्गुष्ठं निवेशयेत् ॥ ३८ ॥

हवन से जो बचे वह अन्न एकाग्रचित्त होकर भोजनपात्र में देना और भोजनपात्र विशेष करके चाँदी का बनाना, नहीं तो अपनी सामर्थ्य के अनुसार बनाना ॥ ३७ ॥ भोजनपात्र पर अन्न रख के (पृथिवीपात्र) इस मंत्र से पात्र का अभिमन्त्रण करना और (इदं विष्णुः) इस मंत्र से उस अन्नपर ब्राह्मण का अँगूठा रखादेना ॥ ३८ ॥

सव्याहृतिकां गायत्रीं मधुवाता इतित्र्यृचम् ।
जप्त्वा यथासुखं वाच्यं भुञ्जीरंस्तेपि वाग्यताः ॥ ३९ ॥
अन्नमिष्टं हविष्यं च दद्यादक्रोधनोत्वरः ।
आतृप्तेस्तु पवित्राणि जप्त्वा पूर्वजपं तथा ॥ ४० ॥

व्याहृती सहित गायत्री और (मधुवाता) इन तीनों मन्त्रों का जप करके ब्राह्मणों को सुखपूर्वक भोजन करने को कहना तब वे भी मौन होकर भोजन करें ॥ ३९ ॥ जो अन्न प्रिय लगे और हविष्य (श्राद्धयोग्य) हो उसे ब्राह्मणों को तृप्तिपर्यन्त क्रोध दूर करके धीरे-धीरे देते रहना और पुण्यस्तोत्रों का पाठ करते रहना जब भोजन होचुके तो पूर्वोक्त (व्याहृति सहित गायत्री आदि का) जप करना ॥ ४० ॥

अन्नमादाय तृप्ताःस्थ शेषं चैवानुमान्य च ।
तदन्नं विकिरेद्भूमौ दद्याच्चापः सकृत्सकृत् ॥ ४१ ॥
सर्वमन्नमुपादाय सतिलं दक्षिणामुखः ।
उच्छिष्टसन्निधौ पिण्डान् दद्याद्वै पितृयज्ञवत् ॥ ४२ ॥

तब कुछ-कुछ सब प्रकार का अन्न लेके, आप लोग तृप्त भये ऐसा पूँछे और बचा हुआ अन्न उनकी अनुमति से भूमि में त्रिकर

पिण्ड देवे । अनन्तर ब्राह्मणों को मुखशुद्धि के निमित्त थोड़ा-थोड़ा जल देना ॥ ४१ ॥ तब तिल सहित सब अन्न लेकर अपसव्य होकर दक्षिण मुख होकर उच्छिष्ट के समीप ही में पितरों को पिण्ड देना ॥ ४२ ॥

मातामहानामप्येवं दद्यादाचमनं ततः ।
स्वस्तिवाच्यं ततः कुर्यादक्षय्योदकमेव च ॥ ४३ ॥
दत्त्वा तु दक्षिणां शक्त्या स्वधाकारमुदाहरेत् ।
वाच्यतामित्यनुज्ञातः प्रकृतेभ्यः स्वधोच्यताम् ॥४४॥

इसी प्रकार मातामह आदि को भी पिण्ड देना तब आचमन देना इसके उपरान्त स्वस्तिवाचन और अक्षय्य उदक भी देना ॥ ४३ ॥ अपनी शक्ति के अनुसार दक्षिणा देकर स्वधा वाचन की आज्ञा ब्राह्मणों से लेकर पितरों और मातामहादिकों से स्वधा उच्चारण कराना ॥ ४४ ॥

ब्रूयुरस्तु स्वधेत्युक्ते भूमौ सिञ्चेत्ततो जलम् ।
विश्वेदेवाश्च प्रीयन्तां विप्रैश्चोक्तमिदं जपेत्॥४५॥
दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च ।
श्रद्धा च नो माव्यगमद्बहुदेयं च नोऽस्त्विति ॥४६॥

जब वे स्वधा कह चुकें तो भूमिपर जल छिड़कना । और विश्वेदेवा प्रसन्न हों ऐसा कथन करना । फिर ब्राह्मणों की आज्ञा पाकर ॥ ४५ ॥ हमारे कुल में दातालोगों की वेद और सन्तति की बढ़ती हो, हम लोगों के मन से श्रद्धा दूर न हो और हम लोगों को दान योग्य पदार्थ बहुत होवें ऐसा आशीर्वाद माँगे ॥ ४६ ॥

इत्युक्त्वोक्त्वा प्रियावाचः प्रणिपत्य विसर्जयेत् ।
वाजेवाज इति प्रीतः पितृपूर्वं विसर्जनम् ॥ ४७ ॥
यस्मिंस्ते संस्रवाः पूर्वमर्घ्यपात्रे निवेशिताः ।
पितृपात्रं तदुत्तानं कृत्वा विप्रान् विसर्जयेत् ॥ ४८ ॥

अनन्तर, मधुर वाणी कहकर नमस्कार करके प्रसन्न मन से (वाजे वाजे) इस मंत्र को पढ़कर पहिले पितरों का तब विश्वेदेवों का विसर्जन करे ॥ ४७ ॥ जिन पितृपात्रों को ब्राह्मणों के हाथ से गिरे हुए जल सहित लेके औंधा किया था उनको उतान करके ब्राह्मणों का विसर्जन करे ॥ ४८ ॥

प्रदक्षिणमनुव्रज्य भुञ्जीत पितृसेवितम् ।
ब्रह्मचारी भवेत्तां तु रजनीं ब्राह्मणैः सह ॥ ४९ ॥
एवं प्रदक्षिणावृत्को वृद्धौ नान्दीमुखान् पितॄन् ।
यजेतदधिकर्कन्धुमिश्रान् पिण्डान् यवैः क्रियाः ॥ ५० ॥

उसके बाद अपनी सीमातक उन्हें पहुँचाकर जब उनकी आज्ञा हो, तो उनकी प्रदक्षिणा कर फिर श्राद्धशेष अन्न का भोजन कर और उस रात श्राद्धकर्ता और श्राद्धब्राह्मण ब्रह्मचारी होके रहे ॥ ४९ ॥ इसी प्रकार वृद्धि (पुत्रजन्म आदि) होने पर नान्दीमुख पितरों की पूजा, दक्षिणावर्त से करनी । दही और कदलीफल सहित पिण्ड देना और तिल के काम यव से करना ॥ ५० ॥

एकोद्दिष्टं दैवहीनमेकार्घ्यैकपवित्रकम् ।
आवाहनाग्नौकरणरहितं ह्यपसव्यवत् ॥ ५१ ॥

उपतिष्ठतामक्षय्यस्थाने विप्रविसर्जने ।
अभिरम्यतामिति वदेद्ब्रूयुस्तेऽभिरताः स्म ह ॥५२॥

एकोद्दिष्टश्राद्ध में विश्वेदेव नहीं होते एक ही अर्घपात्र और एक ही पवित्र होता है । आवाहन और अग्नौकरण नहीं होता जितनी क्रिया की जाती हैं अपसव्य होकर ॥ ५१ ॥ अक्षय्य के बदले उपतिष्ठताम् और ब्राह्मणों के विसर्जन के बदले अभिरम्यताम् (आप आनन्द करें) ऐसा कहना । और वे भी कहें कि अभिरताः (आनन्द भये) ॥ ५२ ॥

गन्धोदकतिलैर्युक्तं कुर्यात्पात्रचतुष्टयम् ।
अर्घ्यार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसिञ्चयेत् ॥ ५३ ॥
ये समाना इति द्वाभ्यां शेषं पूर्ववदाचरेत् ।
एतत्सपिण्डीकरणमेकोद्दिष्टं स्त्रिया अपि ॥ ५४ ॥

चन्दन, जल, और तिलसहित चार पात्र अर्घ के लिये बनाना और प्रेतपात्र से पितरों के पात्र में ॥ ५३ ॥ "ये समानाः" इन दोनों ऋचाओं से जलसेक करना । शेष क्रिया सब पूर्ववत् करनी यह सपिण्डीकरण कहलाता है । एकोद्दिष्टश्राद्ध स्त्री का भी होता है ॥ ५४ ॥

अर्वाक्सपिण्डीकरणं यस्य संवत्सराद्भवेत् ।
तस्याप्यन्नं सोदकुम्भं दद्यात्संवत्सरं द्विजे ॥५५॥
मृतेऽहनि तु कर्त्तव्यं प्रतिमासं तु वत्सरम् ।
प्रतिसंवत्सरञ्चैवमाद्यमेकादशेऽहनि ॥ ५६ ॥

यदि किसी द्विज का सपिण्डीकरण वर्ष से पहिले ही हुआ हो तो उसको एक वर्ष तक जलपूर्ण घट और अन्न देते रहना ॥ ५५ ॥

मासिकश्राद्ध हर महीने जिस तिथि में देहत्याग हुआ हो उसी में करना और वार्षिकश्राद्ध भी मरणतिथि में हरवर्ष करना और आद्यश्राद्ध ग्यारहें दिन करना चाहिए ॥ ५६ ॥

पिण्डास्तु गोऽजविप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेऽपि वा ।
प्रक्षिपेत्सत्सु विप्रेषु द्विजोच्छिष्टं न मार्जयेत् ॥५७॥
हविष्यान्नेन वै मासं पायसेन तु वत्सरम् ।
मात्स्यहारिणकौरभ्रशाकुनच्छागपार्षतैः ॥ ५८ ॥

गौ, बकरा वा ब्राह्मण को पिण्ड देना अथवा अग्नि वा जल में फेंक देना । और ब्राह्मणों के रहते ही उनका जूठा न उठाने लगना ॥ ५७ ॥ हविष्य अन्न से महीने भर और पायस से एक वर्ष और मछली, हिरण, उरभ्र (भेड़ा) पक्षी, बकरा, पृषत् (चित्रमृग) ॥ ५८ ॥

एणरौरववाराहशाशैर्मांसैर्यथाक्रमम् ।
मासवृद्ध्याभितृप्यन्ति दत्तैरिह पितामहाः ॥५६॥
खड्गामिषं महाशल्कं मधु मुन्यन्नमेव च ।
लोहामिषं महाशाकं मांसं वार्ध्रीणसस्य च ॥६०॥

एण (काला मृग) रुरु (साबर, शूकर और खरहे) इनके मांस से श्राद्ध करने में पितर लोग क्रम से एक एक महीना अधिक तृप्त होते हैं ॥ ५६ ॥ गैंड़ा और महाशल्क (मत्स्यविशेष) का मांस, मधु, मुन्यन्न (तिनी का चावल), लोह (लाल बकरे) का मांस, महाशाक (कालाशाक), वार्ध्रीणस (बूढ़ा सफ़ेद) बकरे का मांस ॥ ६० ॥

यद्ददाति गयास्थश्च सर्वमानन्त्यमश्नुते।
तथा वर्षात्रयोदश्यां मघासु च विशेषतः॥ ६१॥
कन्यां कन्यावेदिनश्च पशून्वै सत्सुतानपि।
द्यूतं कृषिं च वाणिज्यं द्विशफैकशफांस्तथा॥ ६२॥

और गया तीर्थ, वर्षाकाल की त्रयोदशी (भाद्रपद कृष्ण त्रयोदशी) और विशेष करके मघा में जो पिण्ड देते हैं इन सबोंसे निस्सन्देह अनन्त काल तक पितरों की तृप्ति रहती है॥ ६१॥ श्राद्ध करनेवाला मनुष्य कन्या, कन्या का वर, अच्छे पशु और पुत्र, द्यूत में विजय, कृषि-कर्म का फल, वनिज में लाभ, दोखुरे और एक खुरे पशु॥ ६२॥

ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रान् स्वर्णरूप्ये सकुप्यके।
जातिश्रैष्ठ्यं सर्वकामानाप्नोति श्राद्धदः सदा॥६३॥
प्रतिपत्प्रभृतिष्वेकां वर्जयित्वा चतुर्दशीम्।
शस्त्रेण तु हता ये वै तेभ्यस्तत्र प्रदीयते॥ ६४॥

वेदपाठी पुत्र, सोना, चाँदी आदि रत्न, जाति में बड़ाई और अपने सब मनोरथों को सदा पाता है॥ ६३॥ प्रतिपत् आदि सब तिथियों में इनको पिण्ड दे, एक चतुर्दशी को छोड़ दे। क्योंकि उसमें जो शस्त्र से मारे गये हैं उनको दिया जाता है॥६४॥

स्वर्गं ह्यपत्यमोजश्च शौर्यं क्षेत्रं बलं तथा।
पुत्रं श्रैष्ठ्यं च सौभाग्यं सामृद्धिं मुख्यतां शुभम्॥६५॥
प्रवृत्तचक्रतां चैव वाणिज्यप्रभृतीनपि।
अरोगित्वं यशोवीतशोकतां परमां गतिम्॥ ६६॥

स्वर्ग, अपत्य, प्रताप, शूरता, भूमि, बल, पुत्र, बड़ाई, सौभाग्य, समृद्धि, मुख्यता, शुभ ॥ ६५ ॥ राज्य, वाणिज, प्रभुताई, आरोग्य, यश, शोकनाश, परम गति ॥ ६६ ॥

धनं वेदान् भिषक् सिद्धिं कुप्यं गा अप्यजाविकम् ।
अश्वानायुश्च विधिवद्यः श्राद्धं संप्रयच्छति ॥६७॥
कृत्तिकादिभरण्यन्तं स कामानाप्नुयादिमान् ।
आस्तिकः श्रद्दधानश्च व्यपेतमदमत्सरः ॥ ६८ ॥

धन, विद्या, वैदई की सिद्धि, कुप्य (सोने चाँदी से अन्य धन) गो, बकरी, भेड़, घोड़े, आयुष्य इन सब पदार्थों को जो विधिपूर्वक ॥ ६७ ॥ कृत्तिका से ले भरणी पर्यंत श्रद्धा और आस्तिक्य बुद्धि से मद और मत्सर छोड़ के श्राद्ध करते हैं वे पाते हैं ॥ ६८ ॥

वसुरुद्रादितिसुताः पितरः श्राद्धदेवताः ।
प्रीणयन्ति मनुष्याणां पितॄन् श्राद्धेन तर्पिताः॥ ३६॥
आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च ।
प्रयच्छन्ति तथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहाः॥७०॥

वसु, रुद्र, अदिति, सुत और पितर ये श्राद्ध के देवता हैं । ये श्राद्ध से तृप्त होकर मनुष्यों के पितरों को तृप्त करते हैं ॥६९॥ और जब पितर तृप्त होते हैं, तो मनुष्यों को आयु, पुत्र, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष, सुख और राज्य देते हैं ॥ ७० ॥

इति श्राद्धप्रकरण समाप्त ।

गणपति प्रकरण ।

विनायकः कर्मविघ्नसिध्यर्थं विनियोजितः ।
गणानामाधिपत्ये च रुद्रेण ब्रह्मणा तथा ॥ ७१ ॥
तेनोपसृष्टो यस्तस्य लक्षणानि निबोधत ।
स्वप्नेऽवगाहतेऽत्यर्थं जलं मुण्डांश्च पश्यति ॥७२॥

विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र ने विनायक को कर्म के विघ्न और शान्ति और (पुष्पदन्त आदि) गणों के आधिपत्य में नियुक्त किया है ॥ ७१ ॥ उस विनायक से जो उपसृष्ट (गृहीत) हैं उनके लक्षण सुनो जल में अत्यन्त स्नान करने का स्वप्न और मुण्डित मनुष्यों का स्वप्न देखते हैं ॥ ७२ ॥

काषायवाससश्चैव क्रव्यादांश्चाधिरोहति ।
अन्त्यजैर्गर्दभैरुष्ट्रैः सहैकत्रावतिष्ठते ॥ ७३ ॥
व्रजन्नपि तदात्मानं मन्यते नु मतं परैः ।
विमना विफलारम्भः संसीदत्यनिमित्ततः ॥ ७४ ॥

गेरुआ वस्त्र पहिननेवाले और कच्चा मांस खानेवालों की सवारी स्वप्न में करता है, अन्त्यज, गर्दभ और ऊँट इनके साथ एक जगह बैठने का स्वप्न देखता है ॥ ७३ ॥ और यह भी स्वप्न में देखता है कि मुझको मेरे शत्रु दौड़ा रहे हैं उसका चित्त विक्षिप्त रहता है । जो काम करने लगता है वह सिद्ध नहीं होता । विना कारण दीन मन रहता है ॥ ७४ ॥

तेनोपसृष्टो लभते न राज्यं राजनन्दनः ।
कुमारी च न भर्त्तारमपत्यं गर्भमङ्गना ॥ ७५ ॥

आचार्यत्वं श्रोत्रियश्च न शिष्योऽध्ययनं तथा ।
वणिग्लाभं न चाप्नोति कृषिं चापि कृषीवलः ॥७६॥

राजपुत्र हो, तो वह राज्य नहीं पाता, कन्या हो, तो वह अच्छा पति नहीं पाती, स्त्री हो, तो उसे गर्भ और अपत्य नहीं प्राप्त होते ॥ ७५ ॥ श्रोत्रिय हो, तो वह आचार्य नहीं होता, शिष्य को पढ़ना नहीं मिलता, वणिक् हो, तो उसे लाभ नहीं होता और किसान खेतिहर हो, तो उसकी खेती अच्छी नहीं लगती ॥ ७६ ॥

स्नपनं तस्य कर्तव्यं पुण्येऽह्नि विधिपूर्वकम् ।
गौरसर्षपकल्केन साज्येनोत्सादितस्य च ॥ ७७ ॥
सर्वौषधैः सर्वगन्धैर्विलिप्तशिरसस्तथा ।
भद्रासनोपविष्टस्य स्वस्तिवाच्या द्विजाः शुभाः॥७८॥

इसलिये शुभ दिन में विधिपूर्वक, उस मनुष्य को पीले सरसों का उवटना घी मिलाकर लगावे ॥ ७७ ॥ और सर्वौषधी और सर्वगन्ध से उसको शिर में लेप करे अनन्तर, भद्रासनपर बैठा कर विद्वान् ब्राह्मणों से, स्वस्तिवाचन कराना ॥ ७८ ॥

अश्वस्थानाद्गजस्थानाद्वल्मीकात्सङ्गमाद्ध्रदात् ।
मृत्तिकां रोचनां गन्धान्गुग्गुलुं चाप्सु निक्षिपेत् ७९॥
या आहृता ह्येकवर्णैश्चतुर्भिः कलशैर्ह्रदात् ।
चर्मण्यानडुहे रक्ते स्थाप्यं भद्रासनं ततः॥ ८० ॥

तब घोड़शाल, गजशाल, बमी, नदी का मुहाना और डेले इनकी मिट्टी, गोरोचन, चन्दन आदि गन्ध और गुग्गुल उस जल में डालना कि जो जल एकवर्ण के चार घड़ों से अगाध ह्रद से ले आये हैं और उन घड़ों को चारों दिशा में रख के ॥ ७९॥

अनन्तर, वृषभ के रक्तवर्ण चमड़े पर (बीच में श्रीपर्णी से बना हुआ) भद्रासन स्थापन करना ॥ ८० ॥

सहस्राक्षं शतधारमृषिभिः पावनं कृतम्।
तेन त्वामभिषिञ्चामि पावमान्याः पुनन्तु ते ॥८१॥
भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः।
भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः ॥ ८२ ॥

पूर्वादिक्रम से एक २ कलश लेकर गुरु अभिषेक करे तीन कलशों के तीन मंत्र हैं (चौथे में ये तीनों पढ़े जाते हैं) जिस अनेक शक्ति और अनेक प्रवाहजल को ऋषियों ने पवित्र बनाया है उससे तुम्हारा अभिषेक करते हैं पवित्र करनेवाले ये जल तुझे पवित्र करें ॥ ८१ ॥ तुमको राजा वरुण, सूर्य, बृहस्पति, इन्द्र, वायु और सप्तर्षियों ने कल्याण दिया ॥ ८२ ॥

यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्द्धनि।
ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तद्घ्नन्तु सर्वदा ॥ ८३ ॥
स्नातस्य सार्षपं तैलं स्रुवेणौदुम्बरेण तु।
जुहुयान्मूर्द्धनि कुशान्सव्येन परिगृह्य तु ॥ ८४ ॥

तुम्हारे केश, सीमन्त, मूर्द्धा, ललाट, कान और आँखों में जो दौर्भाग्य हैं सो सर्वदा ये जल नाश करें ॥ ८३ ॥ इस प्रकार स्नान कर चुके, तो वामहस्त से कुशा शिर पर रख के उदुम्बर के स्रुव से सरसों का तेल दहिने हाथ से हुने ॥ ८४ ॥

मितश्च सम्मितश्चैव तथा शालकटंकटौ।
कूष्माण्डो राजपुत्रश्चेत्यन्ते स्वाहासमन्वितैः॥८५॥

नामभिर्बलिमन्त्रैश्च नमस्कारसमन्वितैः ।
दद्याच्चतुष्पथे शूर्पे कुशानास्तीर्य सर्वतः ॥ ८६ ॥

हवन का मन्त्र यह है—मित, सम्मित, शाल, कटंकट, कूष्माण्ड और राजपुत्र इन नामों के अन्त में स्वाहा लगा के हुनना ॥ ८५ ॥ उसके बाद बलिदान के मन्त्र और नमस्कार सहित (अग्नि में चरु पका कर उसी अग्नि में इन्हीं पूर्वोक्त छः मन्त्रों से हवन करने से जो बचे उसे) बलि देवे तब चौराहे में सूप पर चारों ओर कुशा फैलाकर ॥ ८६ ॥

कृताकृतांस्तन्दुलांश्च पललौदनमेव च ।
मत्स्यान्पक्वांस्तथैवामान्मांसमेतावदेव तु ॥ ८७ ॥
पुष्पं चित्रं सुगन्धं च सुरां च त्रिविधामपि ।
मूलकं पूरिकापूपं तथैवोण्डेरकः स्रजः ॥ ८८ ॥

कृताकृत तन्दुल, पललौदन (तिलपिष्टसहित ओदन) पकी, कच्ची मछली और ऐसा ही और मांस ॥ ८७ ॥ चित्रविचित्र पुष्प (चन्दन आदि) सुगन्ध, तीनों प्रकार की मदिरा, मूली, पूरी, पुआ, उण्डेरक (छोटे २ रोट) की माला ॥ ८८ ॥

दध्यन्नं पायसं चैव गुडपिष्टं समोदकम् ।
एतान्सर्वान् समाहृत्य भूमौ कृत्वा ततः शिरः ॥८९॥
विनायकस्य जननीमुपतिष्ठेत्ततोऽम्बिकाम् ।
दूर्वासर्षपपुष्पाणां दत्त्वार्घ्यं पूर्णमञ्जलिम् ॥ ९० ॥

दध्यन्न, पायस, गुड़पिष्ट और लड्डू इन सबोंको ले भूमि में शिर लगा के ॥८९॥ विनायक की माता अम्बिका को नमस्कार करे और दूब, सरसों और पुष्पसे पहिले अर्घ देके फिर पूर्णाञ्जलि देना ॥९०॥

रूपं देहि यशो देहि भगं भवति देहि मे।
पुत्रान्देहि धनं देहि सर्वकामांश्च देहि मे ॥ ६१ ॥
ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः।
ब्राह्मणान् भोजयेद्दद्याद्वस्त्रयुग्मं गुरोरपि ॥ ६२ ॥

उपस्थान का मन्त्र यह है—देवि मुझको रूप, यश, कल्याण, पुत्र, धन और सर्व मनोरथ मनोकामना सिद्ध करदे ॥ ६१ ॥ तब श्वेत वस्त्र और माला पहिन कर और चन्दन लगा के ब्राह्मणों को भोजन करावे तथा गुरु को दो वस्त्र दक्षिणा देनी ॥ ६२ ॥

एवं विनायकं पूज्य ग्रहांश्चैव विधानतः।
कर्मणां फलमाप्नोति श्रियं चाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥६३॥
आदित्यस्य सदा पूजां तिलकं स्वामिनस्तथा।
महागणपतेश्चैव कुर्वन्सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ६४ ॥

इस विधान से विनायक की पूजा करके अपने शुभकर्म का फल पाता है और धन की इच्छा से पूजा करे, तो अत्यन्त धन पाता है यही फल ग्रहपूजा से भी होता है (और उनके पूजा का प्रकार आगे लिखा जाता है) ॥ ६३ ॥ सूर्य, स्वामिकार्तिक और महागणपति की रोज पूजा करने और इनको (सोने वा चाँदी का) तिलक काढने से सिद्धि (आत्मज्ञान से मोक्ष) पाता है ॥ ६४ ॥

इति गणपतिप्रकरण समाप्त।

ग्रहशान्तिप्रकरण।

श्रीकामः शान्तिकामो वा ग्रहयज्ञं समाचरेत्।
वृष्ट्यायुः पुष्टिकामो वा तथैवाभिचरन्नपि ॥ ६५ ॥

सूर्यः सोमो महीपुत्रः सोमपुत्रो बृहस्पतिः ।
शुक्रः शनैश्चरो राहुः केतुश्चेति ग्रहाः स्मृताः॥९६॥

धन, शान्ति, वृष्टि, आयु और पुष्टि तथा शत्रु के ऊपर घात करने की इच्छा हो, तो ग्रहों की पूजा करे॥ ९५ ॥ सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु ये नवग्रह हैं ॥९६॥

ताम्रकात्स्फाटिकाद्रक्तचन्दनात्स्वर्णकादुभौ ।
राजतादयसःसीसात्कांस्यात्कार्याग्रहाः क्रमात् ९७॥
स्ववर्णैर्वा पटे लेख्या गन्धैर्मण्डलकेषु वा ।
यथावर्णं प्रदेयानि वासांसि कुसुमानि च ॥९८ ॥

इनकी मूर्ति क्रम से ताँबे, स्फटिक, रक्तचन्दन, सुवर्ण, चाँदी, लोहा, सीसा और काँसा से बनानी परन्तु सोने की दो मूर्ति बनानी चाहिए तब नव होते हैं ॥ ९७ ॥ अथवा अपने-अपने वर्ण के अनुसार वस्त्रपर वा मण्डलक में चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्य से लिखना और जिसका जैसा वर्ण उसको उसी प्रकार के वस्त्र, पुष्प ॥ ९८ ॥

गन्धाश्च बलयश्चैव धूपो देयश्च गुग्गुलुः ।
कर्तव्या मन्त्रवन्तश्च चरवः प्रतिदैवतम् ॥ ९९ ॥
आकृष्णेन इमं देवा अग्निर्मूर्द्धादिवः ककुत् ।
उद्बुध्यस्वेति च ऋचो यथासंख्यं प्रकीर्तिताः ३००।

चन्दन और बलि देना धूप गुग्गुल की सबोंको देना हर एक प्रतिग्रहों के लिये मन्त्रपूर्वक चरु बनाना ॥ ९९ ॥ समिध होम करने के मन्त्र क्रम से आकृष्णेन, इमंदेवा, अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत् उद्बुध्यस्व ॥ ३०० ॥

बृहस्पते अतियदर्यस्तथैवान्नात्परिश्रुतः ।
शन्नोदेवीस्तथा काण्डात्केतुं कृण्वन्निमांस्तथा ॥१॥
अर्कः पलाशः खदिरो ह्यपामार्गोऽथ पिप्पलः ।
औदुम्बरः शमी दूर्वा कुशाश्च समिधः क्रमात् ॥ २ ॥

बृहस्पते अतियदर्यः, अन्नात्परिश्रुतः, शन्नोदेवीः काण्डात् और केतुंकृण्वन् ये नव हैं ॥ १ ॥ अर्क, पलाश, खदिर, अपामार्ग, पिप्पल, उदुम्बर, शमी, दूर्वा और कुश ये सूर्यादि ग्रहों की क्रम से समिधा हैं ॥ २ ॥

एकैकस्य त्वष्टशतमष्टाविंशतिरेव च ।
होतव्या मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना क्षीरेण वा युताः ॥३॥
गुडौदनं पायसं च हविष्यं क्षीरषाष्टिकम् ।
दध्योदनं हविश्चूर्णं मांसं चित्रान्नमेव च ॥ ४ ॥

प्रत्येक ग्रहों की आठ-आठ सौ वा अट्ठाईस-अट्ठाईस समिधा मधु, घी, दही और दूध से भिगोकर हवन करना ॥ ३ ॥ मीठा भात, खीर, हविष्य (तीनों का भात), साँठी का भात और दूध दही, भात घी, भातखंड, भात, मांसभात और विचित्र वर्ण के भात ॥ ४ ॥

दद्याद्ग्रहक्रमादेव द्विजेभ्यो भोजनं द्विजः ।
शक्तितो वा यथालाभं सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ॥ ५ ॥
धेनुः शङ्खस्तथानड्वान् हेमवासो हयः क्रमात् ।
कृष्णा गौरायसंछाग एता वै दक्षिणाः स्मृताः ॥६॥

ये भोजन सूर्य आदि ग्रहों के लिये क्रम से ब्राह्मण को देना वा

अपनी शक्ति के अनुसार जो मिलजाय वही ब्राह्मणों को विधिपूर्वक सत्कार करके देना ॥ ५ ॥ धेनु, शंख, बैल, सुवर्ण (पीत) वस्त्र, पांडुर, घोड़ा, काली गौ, लूगी आदि लोहे की (चाकू) और बकरा ये सूर्य आदि ग्रहों के क्रम से दक्षिणा हैं ॥ ६ ॥

यश्च यस्य यदा दुष्टः स तं यत्नेन पूजयेत् ।
ब्रह्मणैषां वरो दत्तः पूजिताः पूजयिष्यथ ॥ ७ ॥
ग्रहाधीना नरेन्द्राणामुच्छ्रायः पतनानि च ।
भावाभावौ च जगतस्तस्मात्पूज्यतमा ग्रहाः ॥ ८ ॥

जिसको जो ग्रह जब प्रतिकूल हो, तो वह उस ग्रह की पूजा करे, ब्रह्मा ने इन्हें वर दिया है कि जो इनको पूजेगा उन्हें ये भी तुष्ट करेंगे ॥ ७ ॥ राजाओं की बढ़ती और घटनी ग्रहों के आधीन है और जगत् की उत्पत्ति और विनाश भी इन्हीं के आधीन है इसलिये इनकी पूजा भली भाँति करनी चाहिये ॥ ८ ॥

इति शान्तिप्रकरण समाप्त ।

राजधर्मप्रकरण ।

महोत्साहः स्थूललक्ष्यः कृतज्ञो वृद्धसेवकः ।
विनीतः सत्यसम्पन्नः कुलीनः सत्यवाक् शुचिः ॥ ९ ॥
अदीर्घसूत्रः स्मृतिमानक्षुद्रो परुषस्तथा ।
धार्मिकोऽव्यसनश्चैव प्राज्ञः शूरो रहस्यवित् ॥ १० ॥

महाउत्साही, स्थूललक्ष्य (अत्यन्तदाता) कृतज्ञ (उपकार माननेवाला) वृद्धसेवी, विनययुक्त, सदा एकरस कुलीन, सत्यवादी, पवित्र ॥ ९ ॥ अदीर्घसूत्री (झटपट काम

करनेवाला) स्मृतिमान् (जिसे बात न भूले) अक्षुद्र कड़ी बात न कहे, धार्मिक, अव्यसनी, पण्डित, शूर, रहस्य जानने-वाला ॥ १० ॥

स्वरन्ध्रगोप्तान्वीक्षिक्यां दण्डनीत्यां तथैव च ।
विनीतस्त्वथ वार्त्तायां त्रय्यां चैव नराधिपः ॥ ११ ॥
समन्त्रिणः प्रकुर्वीत प्राज्ञान्मौलान् स्थिराञ्छुचीन् ।
तैः सार्द्धं चिन्तयेद्राज्यं विप्रेणाथ ततस्त्वयम् ॥ १२॥

राज्यप्रबन्ध की शिथिलता का रक्षण करनेवाला, आत्मविद्या और राजनीति में निपुण, लाभ के उपाय और तीनों वेद में प्रवीण राजा को होना चाहिये ॥ ११ ॥ वह राजा अपने मंत्री ऐसे करे जो पण्डित, कुलीन, धीर और पवित्र हों उनके साथ अथवा ब्राह्मण के साथ राजकाज देखे और फिर एकान्त में बैठ कर अपने आप विचारे ॥ १२ ॥

पुरोहितं प्रकुर्वीत दैवज्ञमुदितोदितम् ।
दण्डनीत्यां च कुशलमथर्वाङ्गिरसे तथा ॥ १३ ॥
श्रौतस्मार्त्तक्रियाहेतं वृणुयादेव चर्त्विजः ।
यज्ञांश्चैव प्रकुर्वीत विधिवद्भूरिदक्षिणान् ॥ १४ ॥

ज्योतिष शास्त्र जाननेवाला, सब शास्त्रों से समृद्ध अर्थशास्त्रों में कुशल और शान्ति आदि कर्म अथर्वाङ्गिरस में जो निपुण हो उसको राजा अपना पुरोहित बनावे ॥ १३ ॥ श्रौत (अग्निहोत्र आदि) और स्मार्त (उपासना आदि) क्रिया करने के निमित्त ऋत्विजों का वर्ण करे और विधिपूर्वक राजसूय आदि यज्ञ बहुत बहुत दक्षिणा देकर करे ॥ १४ ॥

भोगांश्च दत्त्वा विप्रेभ्यो वसूनि विविधानि च ।
अक्षयोयं निधीराज्ञां यद्विप्रेषूपपादितम् ॥ १५ ॥
अस्कन्नमव्यथं चैव प्रायश्चित्तैरदूषितम् ।
अग्नेः सकाशाद्विप्राग्नौ हुतं श्रेष्ठमिहोच्यते ॥१६॥

ब्राह्मणों को सुख भोग और धन देवे क्योंकि जो ब्राह्मण को जा देता है वह उसका अक्षयनिधि (धन की खानि है) ॥१५॥ अग्नि में हवन कुछ करने (यज्ञ करने) की अपेक्षा ब्राह्मणरूपी अग्नि में हवन (दान) करना श्रेष्ठ है। क्योंकि ब्राह्मण को दान देने में किसी विधि की भूल जाने की शंका नहीं रहती, पशुघात नहीं होता और प्रायश्चित्त का आयास नहीं करना पड़ता है ॥ १६ ॥

अलब्धमीहेद्धर्मेण लब्धं यत्नेन पालयेत् ।
पालितं वर्द्धयन्नीत्या वृद्धं पात्रेषु निःक्षिपेत् ॥१७॥
दत्त्वा भूमिं निबन्धं वा कृत्वा लेख्यं तु कारयेत् ।
आगामिभद्रनृपतिपरिज्ञानाय पार्थिवः ॥ १८ ॥

जो धन नहीं मिलता है उसको धर्म से पाने का उपाय करे जो मिलचुका है उसे यत्न से सुरक्षित करे। रक्षित धन को नीति से बढ़ाना और जब बढ़े, तो सत्पात्रों को दान करे ॥ १७॥ राजा भूमिदान वा निबन्ध (रोजीना) करे, तो लिख देवे जिससे पीछे होनेवाले धर्मी राजा मालूम करे कि (इतनी भूमि वा वस्तु अमुक को दी गई) ॥ १८ ॥

पटे वा ताम्रपट्टे वा स्वमुद्रोपरिचिह्नितम् ।
अभिलेख्यात्मनो वंश्यानात्मानं च महीपतिः ॥ १९ ॥

प्रतिग्रहपरीमाणं दानच्छेदोपवर्णनम् ।
स्वहस्तकालसम्पन्नं शासनं कारयेत् स्थिरम् ॥२०॥

(लिखने की विधि यह है) कि दृढवस्त्र अथवा ताम्रपत्र पर राजा, ऊपर अपनी मुद्रा (मोहर) करके नीचे अपने पुरुषों का नाम अपना नाम ॥ १९ ॥ दान की चीज़ का परिमाण और स्थावर हो, तो उसकी सीमा भी, लिखवाकर अपना दस्तखत करे और मिती भी डाल दे कि जिसमें वह पत्र दूसरों को दृढ निश्चयकारक होजावे ॥ २० ॥

रम्यं पशव्यमाजीव्यं जाङ्गलं देशमावसेत् ।
तत्र दुर्गाणि कुर्वीत जनकोशात्मगुप्तये ॥ २१ ॥
तत्र तत्र च निष्णातानध्यक्षान् कुशलाञ्छुचीन् ।
प्रकुर्यादायकर्मान्तव्ययकर्मसु चोद्यतान् ॥ २२ ॥

अपने जन, कोश (ख़ज़ाना) और शरीर की रक्षा के लिये राजा ऐसे स्थल से दुर्ग (क़िला) बनावे कि जो रमणीय हो, पशुओं को बढ़ानेवाला (स्कन्ध मूल आदि से मनुष्यों के जीवन में सहायता देने) और जंगल (वन) प्राय हो ॥ २१ ॥ धर्म और अर्थ आदि कामों में उन-उन कामों के योग्य, जो दूसरा काम न करे, अपने कामों में चतुर हों शुचि रहनेवाले, आय, (सोने की खानि आदि) और व्यय (दान देना) कर्म में उद्यत (मुस्तैद) ऐसे अधिकारी बनाने चाहियें ॥ २२ ॥

नातः परतरो धर्मो नृपाणां यद्रणार्जितम् ।
विप्रेभ्यो दीयते द्रव्यं प्रजाभ्यश्चाभयं सदा ॥२३॥

ये आहवेषु बध्यन्ते भूम्यर्थमपराङ्मुखाः ।
अकूटैरायुधैर्यान्ति ते स्वर्गं योगिनो यथा ॥ २४ ॥

इससे बढ़कर कोई धर्म राजा का नहीं कि युद्ध से अर्जित धन ब्राह्मण और अपनी प्रजा को सदा अभय रक्खे ॥ २३ ॥ भूमि के अर्थ जो युद्ध में सम्मुख लड़ते और अकूट (विष आदि जिसमें न लगा हो ऐसे) शस्त्रों से मारे जाते हैं वे योगियों के सदृश स्वर्ग को प्राप्त होते हैं ॥ २४ ॥

पदानि क्रतुतुल्यानि भग्नेष्वविनिवर्त्तिनाम् ।
राजा सुकृतमादत्ते हतानां विपलायिनाम् ॥ २५ ॥
तवाहं वादिनं क्लीबं निर्हेतिं परसङ्गतम् ।
न हन्याद्विनिवृत्तं च युद्धप्रेक्षणकादिकम् ॥ २६ ॥

अपना दल सब नष्ट हो गया हो उस समय जो शत्रु के सामने युद्ध करने को जितने पाँव चले, उतने ही अश्वमेध यज्ञ का फल वह पाता है और जो भागते हैं उनका सब सुकृत राजा को प्राप्त होता है ॥ २५ ॥ जो ऐसा कहे कि हम तुम्हारे हैं, नपुंसक हो, निरायुध हो, दूसरे के साथ लड़ता हो, युद्ध से निवृत्त आता हो और जो युद्ध देखने आया हो इन्हें मारना न चाहिये ॥ २६ ॥

कृतरक्षः समुत्थाय पश्येदायव्ययौ स्वयम् ।
व्यवहारांस्ततो दृष्ट्वा स्नात्वा भुञ्जीत कामतः ॥ २७ ॥
हिरण्यं व्यापृतानीतं भाण्डागारेषु निःक्षिपेत् ।
पश्येच्चारांस्ततो दूतान्प्रेषयेन्मन्त्रिसङ्गतः ॥ २८ ॥

देश और अपनी रक्षा करके प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर आय-व्यय (आमदनी, खर्च) अपने आप देखे अनन्तर व्यवहार

देखे फिर स्नान करके यथारुचि भोजन करे ॥ २७ ॥ तब हिरण्य आदि वस्तु के ले आने में जो नियुक्त हैं वे जो ले आवें उसको राजा आप देख के भण्डार में रखवादे । फिर गुप्त दूतों की बात आप ही सुन उनको देख और प्रकट दूतों को मन्त्र के साथ देख उनकी बातें सुन उन्हें फिर भेजे ॥ २८ ॥

ततः स्वैरविहारी स्यान्मन्त्रिभिर्वा समागतः ।
बलानां दर्शनं कृत्वा सेनान्या सह चिन्तयेत् ॥२९॥
सन्ध्यामुपास्य शृणुयाच्चाराणां गूढभाषितम् ।
गीतनृत्यैश्च भुञ्जीत पठेत्स्वाध्यायमेव च ॥ ३० ॥

तब तीसरे पहर एकान्त में वा मन्त्रियों के साथ यथेष्ट विहार करके अपनी सेना (घोड़े हाथी आदि) देखे और सेनापति के साथ सेना के सुख की चिन्ता करे ॥ २९ ॥ संध्योपासन करके दूतों का गुप्त भाषण सुने और नृत्य गीत सुनकर भोजन करे फिर अपना पाठ पढ़े ॥ ३० ॥

संविशेत्तूर्यघोषेण प्रतिबुद्ध्येत्तथैव च ।
शास्त्राणि चिन्तयेद्बुद्ध्या सर्वकर्त्तव्यतास्तथा ॥३१॥
प्रेषयेच्च ततश्चारान्स्वेष्वन्येषु च सादरान् ।
ऋत्विक्पुरोहिताचार्यैराशीभिरभिनन्दितः ॥ ३२ ॥

तब बाजे गाजे से सोवे और उसी प्रकार जागे और अपनी बुद्धि से शास्त्र और कुछ कार्य कर्तव्य हों उनका चिंतवन करे ॥ ३१ ॥ तब अपने और दूसरे राज्य में गुप्त दूतों को आदरपूर्वक भेजे । ऋत्विज्, पुरोहित और आचार्य के आशीर्वाद से आनन्द पाकर ॥ ३२ ॥

दृष्ट्वा ज्योतिर्विदो वैद्यान् दद्याद्गां काञ्चनं महीम् ।
नैवेशिकानि च ततः श्रोत्रियेभ्यो गृहाणि च ॥३३॥
ब्राह्मणेषु क्षमी स्निग्धेष्वजिह्मः क्रोधनो रिपुः ।
स्याद्राजा भृत्यवर्गेषु प्रजासु च यथा पिता ॥३४॥

ज्योतिषी और वैद्य से शुभाशुभ और अपने देह का हाल मालूम करे । फिर गौ, सोना, भूमि, विवाह के उपयोगी धन और गृह इनका दान वेदपाठी ब्राह्मण को दे ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणों के विषय में राजा क्षमाशील हो मित्रों से सीधा, शत्रुओं में क्रुद्ध और अपने भृत्यों, प्रजाओं के विषय में पिता के समान हो ॥ ३४ ॥

पुण्यात्षड्भागमादत्ते न्यायेन परिपालयन् ।
सर्वदा नाधिकं यस्मात्प्रजानां परिपालनम् ॥ ३५ ॥
चाटतस्करदुर्वृत्तमहासाहसिकादिभिः ।
पीड्यमानाः प्रजा रक्षेत्कायस्थैश्च विशेषतः ॥३६॥

प्रजा का परिपालन सब प्रकार के दानों से अधिक है । इस लिये धर्मशास्त्र की विधि से प्रजापालन करे, तो उसकी पुण्य का छठा भाग राजा पाता है ॥ ३५ ॥ छली, चोर, जालिया, डाकू इनसे और विशेष करके कायस्थ आदि राजकाज करने-वालों से पीड़ित प्रजा की रक्षा करे ॥ ३६ ॥

अरक्ष्यमाणाः कुर्वन्ति यत्किञ्चित्किल्बिषं प्रजाः ।
तस्मात्तु नृपतेरर्धं यस्माद्गृह्णात्यसौ करान् ॥३७॥
ये राष्ट्राधिकृतास्तेषां चारैर्ज्ञात्वा विचेष्टितम् ।
साधून्सम्मानयेद्राजा विपरीतांश्च घातयेत् ॥ ३८ ॥

रक्षा न करने से जो कुछ पाप प्रजा करती है उसमें का आधा राजा को जाता है । क्योंकि वह रक्षा ही के लिये प्रजा से कर लेता है ॥ ३७ ॥ राजकाज में जो नियुक्त हैं, उनका आचरण गुप्त दूतों से मालूम करके भलों का राजा सम्मान करे और दुष्टों को दण्ड दे ॥ ३८ ॥

उत्कोचजीविनो द्रव्यहीनान्कृत्वा विवासयेत् ।
सम्मानदानसत्कारैः श्रोत्रियान्वासयेत्सदा ॥ ३९ ॥
अन्यायेन नृपो राष्ट्रात्स्वकोशं योऽभिवर्द्धयेत् ।
सोऽचिराद्विगतश्रीको नाशमेति सबान्धवः ॥ ४० ॥

जो उत्कोच (घूस) लेते हैं उनका सब धन छीनकर राज्य से निकाल दें और मान, दान, सत्कार करके श्रोत्रियों (वेदपाठियों) को अपनी राज्य में बसावे ॥ ३९ ॥ जो राजा अपने राज्य से अन्याय करके धन संग्रह करता है वह थोड़े ही काल में अपने बन्धुओं समेत निर्धन होके नष्ट होजाता है ॥ ४० ॥

प्रजापीडनसन्तापात्समुद्भूतो हुताशनः ।
राज्ञः कुलं श्रियं प्राणांश्चादग्ध्वा न निवर्त्तते ॥ ४१ ॥
य एव नृपतेर्धर्मः स्वराष्ट्रपरिपालने ।
तमेव कृत्स्नमाप्नोति परराष्ट्रं वशं नयन् ॥ ४२ ॥

प्रजा की पीड़ा के संताप से उत्पन्न हुई आग राजा का धन, शोभा, कुल और प्राण जलाये बिना ठंढी नहीं होती ॥ ४१ ॥ जो धर्म अपनी राज्य के प्रतिपालन में है वही धर्म दूसरे का राज न्याय से अपने वश करने में राजा पाता है ॥ ४२ ॥

यस्मिन्देशे य आचारो व्यवहारः कुलस्थितिः ।
तथैव परिपाल्योऽसौ यदा वशमुपागतः ॥ ४३ ॥
मन्त्रमूलं यतो राज्यं तस्मान्मन्त्रं सुरक्षितम् ।
कुर्याद्यथास्य न विदुः कर्मणामाफलोदयात् ॥४४॥

और जो देश अपने वश में आजावे, तो उस देश में जैसा आचार, व्यवहार और कुल की मर्यादा हो उसको उसी रीति से पालन करे ॥ ४३ ॥ राजा का मूलमन्त्र (सलाह) है इसलिये मन्त्र को ऐसा गुप्त रक्खे कि जबतक उसका फल न देख पड़े तब तक कोई उसके काम को न जाने ॥ ४४ ॥

अरिर्मित्रमुदासीनोऽनन्तरस्तत्परः परः ।
क्रमशो मण्डलं चिन्त्यं सामादिभिरुपक्रमैः ॥४५॥
उपायाः साम दानं च भेदो दण्डस्तथैव च ।
सम्यक्प्रयुक्ताः सिद्ध्येयुर्दण्डस्त्वगतिका गतिः ॥४६॥

जिसका राज्य अपने राज्य की सीमा से मिला हो, वह और उससे पर तथा उससे परे जो हैं वे क्रम से शत्रु, मित्र और उदासीन होते हैं यह स्वभाव है। इनका अर्थात् समझ के साम आदि उपाय करता रहे ॥ ४५ ॥ साम (प्रियभाषण) दान (धन देना) भेद (बिगाड़ करना) और दण्ड ये चार उपाय हैं । विचार-पूर्वक इन्हें करे तो सिद्ध होते हैं । परन्तु दण्ड तब करना जब दूसरा कोई उपाय न लगसके ॥ ४६ ॥

सन्धिं च विग्रहं चैव यानमासनसंश्रयौ ।
द्वैधीभावं गुणानेतान् यथावत्परिकल्पयेत् ॥ ४७ ॥

यदा सस्यगुणोपेतं परराष्ट्रं तदा व्रजेत्।
परश्चैव हीन आत्मा च हृष्टवाहनपूरुषः ॥ ४८ ॥

सन्धि (मेल) विग्रह (विगाड़) यान (चढ़ाई करनी) आसन (उपेक्षा) संश्रय (बलिष्ठ का आश्रय लेना) और द्वैधीभाव (सेनाविभाग) ये छः राजा के गुण हैं। जब जैसा देखना तब तैसा करना ॥ ४७ ॥ जब दूसरे का राज्य, धान्य और जल, ईंधन आदि वस्तु से सम्पन्न हो और शत्रु अपने से हीन हो और अपनी सेना के लोग और वाहन हर्षयुत देख पड़ें, तो उस पर चढ़ाई करनी ॥ ४८ ॥

दैवे पुरुषकारे च कर्मसिद्धिर्व्यवस्थिता।
तत्र दैवमभिव्यक्तं पौरुषं पौर्वदैहिकम् ॥ ४९ ॥
केचिद्दैवात्स्वभावाद्वा कालात्पुरुषकारतः।
संयोगे केचिदिच्छन्ति फलं कुशलबुद्धयः ॥ ५० ॥

भाग्य और पुरुषार्थ दोनों से कार्य की सिद्धि होती है। केवल भाग्य ही से नहीं होती, क्योंकि यह सबको विदित है कि पूर्वजन्म में जो पुरुषार्थ किया हो वही भाग्य कहलाता है ॥ ४९ ॥ कोई कहते हैं कि दैव से, कोई स्वभाव से और कोई पुरुषार्थ से फल की सिद्धि कहते हैं। परन्तु बुद्धिमान् लोगों का यह मत है कि जब ये सब अनुकूल हों तो कार्य सिद्ध होता है ॥ ५० ॥

यथा ह्येकेन चक्रेण रथस्य न गतिर्भवेत्।
एवं पुरुषकारेण विना दैवं न सिध्यति ॥ ५१ ॥
हिरण्यभूमिलाभेभ्यो मित्रलब्धिर्वरा यतः।
अतो यतेत तत्प्राप्त्यै रक्षेत्सत्यं समाहितः ॥ ५२ ॥

जैसे एक चक्र से रथ नहीं चल सकता, इसी प्रकार पुरुषार्थ विना दैव सिद्ध नहीं होता ॥ ५१ ॥ हिरण्य और भूमि के लाभ से मित्र का लाभ उत्तम है इसलिये मित्र मिलने का यत्न करना और सावधानी से अपनी सचाई बचाये रहना ॥ ५२ ॥

स्वाम्यमात्यो जनो दुर्गं केशो दण्डस्तथैव च ।
मित्राण्येताः प्रकृतयो राज्यं सप्ताङ्गमुच्यते ॥ ५३ ॥
तदवाप्य नृपो दण्डं दुर्वृत्तेषु निपातयेत् ।
धर्मो हि दण्डरूपेण ब्रह्मणा निर्मितः पुरा ॥ ५४ ॥

स्वामी (उत्साह आदि गुणयुक्त राजा) अमात्य (मन्त्री) जन (प्रजा) दुर्ग (किला) कोश (खजाना) दण्ड (चतुरंग सेना) और मित्र ये सात राज्य के मूलकारण हैं । इसलिये राज्यसप्ताङ्ग कहलाता है ॥ ५३ ॥ ऐसे राज्य पाकर राजा दुष्टों को दण्ड दे क्योंकि पूर्वकाल में ब्रह्मा ने दण्डरूप से धर्म को बनाया है ॥ ५४ ॥

स नेतुं न्यायतो शक्यो लुब्धेनाकृतबुद्धिना ।
सत्यसन्धेन शुचिना सुसहायेन धीमता ॥ ५५ ॥
यथाशास्त्रं प्रयुक्तः सन्सदेवासुरमानवम् ।
जगदानन्दयेत्सर्वमन्यथा तत्प्रकोपयेत् ॥ ५६ ॥

जो लोभी और चञ्चल बुद्धि होता है, वह न्याय से दण्ड नहीं चला सकता किन्तु जो सच्चा, पवित्र (जितेन्द्रिय) अच्छे सहायकों से युक्त और बुद्धिमान् होता है, वह न्याय से चलता है ॥ ५५ ॥ शास्त्र की विधि से जो दण्ड का प्रयोग करे, तो देवता, असुर और

मनुष्य सहित सब जगत् को आनन्द होता है । इससे अन्यथा करे तो सब कोप करते हैं ॥ ५६ ॥

अधर्मदण्डनं स्वर्गं कीर्तिं लोकांश्च नाशयेत् ।
सम्यक्तु दण्डनं राज्ञः स्वर्गकीर्तिजयावहम् ॥५७॥
अपि भ्राता सुतोऽर्घ्यो वा श्वशुरो मातुलोपि वा ।
नादण्ड्यो नाम राज्ञोस्ति धर्माद्विचलतः स्वकात् ५८

अधर्मदण्ड देने से राजा का स्वर्ग, कीर्ति और लोक नष्ट होता है: परन्तु विधि से दण्ड दे, तो उसको स्वर्ग, कीर्ति और जय की प्राप्ति होती है ॥ ५७ ॥ भाई, बेटा, अर्घ्य, आचार्य आदि श्वशुर और मामा ये भी अपने धर्म से च्युत हों, तो राजा को दण्ड देना उचित है और दूसरों की क्या चर्चा ? क्योंकि धर्महीन ऐसा कोई नहीं जिसे राजा दण्ड न देसके ॥ ५८ ॥

यो दण्ड्यान् दण्डयेद्राजा सम्यग्वध्यांश्च घातयेत् ।
इष्टं स्यात्क्रतुभिस्तेन समाप्तवरदक्षिणैः ॥ ५९ ॥
इति संचिन्त्य नृपतिः क्रतुतुल्यफलं पृथक् ।
व्यवहारान् स्वयं पश्येत्सभ्यैः परिवृतोन्वहम् ॥ ६० ॥

जो राजा दण्डयोग्य मनुष्यों को दण्ड देता है और वध के योग्यों को मारता है वह बड़ी दक्षिणावाले यज्ञों का फल पाता है ॥ ५९ ॥ इस प्रकार क्रतु के तुल्य फल समझ के राजा पृथक् पृथक् (वर्णादि के क्रम से) प्रतिदिन सभासदों के साथ व्यवहार देखे ॥ ६० ॥

कुलानि जातीः श्रेणीश्च गणान् जानपदानपि ।
स्वधर्माच्चलितान् राजा विनीय स्थापयेत्पथि ॥६१॥

जालसूर्यं मरीचिस्थं त्रसरेणू रजः स्मृतम् ।
तेऽष्टौ लिक्षा तु तास्तिस्रो राजसर्षप उच्यते ॥ ६२ ॥

कुल (ब्राह्मण आदि के) जाति (मूर्धावसिक्त आदि) श्रेणी (तंबोली आदि) गण (हैतुक आदि) और जानपद (कारुक बढ़ई आदि) जो अपने धर्म से चलित हों, तो राजा इन्हें यथोचित दण्ड देकर फिर निज धर्म से स्थापन करे ॥ ६१ ॥ जालियों से सूर्य के प्रकाश पड़ने में जो उड़ते धूलिकण देख पड़ते हैं उनका नाम त्रसरेणु है, आठ त्रसरेणु की एक लिक्षा, तीन लिक्षा का एक राजसर्षप ॥ ६२ ॥

गौरस्तु ते त्रयः षट् ते यवो मध्यस्तु ते त्रयः ।
कृष्णलः पञ्च ते माषस्ते सुवर्णस्तु षोडश ॥ ६३ ॥
पलं सुवर्णाश्चत्वारः पञ्च वापि प्रकीर्तितम् ।
द्वे कृष्णले रूप्यमाषो धरणं षोडशैव ते ॥ ६४ ॥

सर्षप तीन मिल के एक गौरसर्षप, ये छः मिल के एक मध्यम यव, तीन यव का एक कृष्णल, पाँच कृष्णल का एक माष, सोलह माष का एक सुवर्ण ॥ ६३ ॥ और चार या पाँच सुवर्ण का एक पल होता है (रुपये की तोल) पूर्वोक्त दो कृष्णल का एक रूप्यमाष, तीनसौ इकसठ रूप्यमाष का एक धरण ॥ ६४ ॥

शतमानं तु दशभिर्धरणैः पलमेव तु ।
निष्कं सुवर्णाश्चत्वारः कार्षिकस्ताम्रिकः पणः ॥ ६५ ॥
साशीतिः पणसाहस्रो दण्ड उत्तमसाहसः ।
तदर्धं मध्यमः प्रोक्तस्तदर्धमधमः स्मृतः ॥ ६६ ॥

दश धरण का एक शतमाप अथवा पल होता है । और पूर्वोक्त चार सुवर्ण का एक एक राजत निष्क होता है । (तांबे की तोल) एक कर्ष (पल का चौथा भाग) भर तांबे को पण कहते हैं ॥ ६५ ॥ एक हज़ार अस्सी पण उत्तम साहस में दण्ड दिया जाता है । उसका आधा मध्यम और उसका भी आधा अधम कहलाता है ॥ ६६ ॥

धिग्दण्डस्त्वथ वाग्दण्डो धनदण्डो वधस्तथा ।
योज्या व्यस्ताः समस्ता वा ह्यपराधवशादिमे॥६७॥
ज्ञात्वापराधं देशं च कालं बलमथापि वा ।
वयः कर्म च वित्तं च दण्डं दण्ड्येषु पातयेत्॥३६८॥

इति याज्ञवल्कीये धर्मशास्त्रे आचारो नाम
प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

धिग्दण्ड, वाग्दण्ड, धनदण्ड और वधदण्ड ये चार प्रकार के दण्ड हैं । अपराध जिसका जैसा हो उसे विचार कर इन दण्डों में से जितने दण्ड के योग्य हों उतना दण्ड देना चाहिये ॥ ६७ ॥ अपराध, देश, काल, बल, अवस्था, कर्म और वित्त (धन) देख के अपराधियों को दण्ड देना चाहिये ॥ ६८ ॥

आचाराध्याय समाप्त हुआ ।

व्यवहाराध्यायः ।

मातृकाप्रकरण ।

व्यवहारान्नृपः पश्येद्विद्वद्भिर्ब्राह्मणैस्सह ।
धर्मशास्त्रानुसारेण क्रोधलोभविवर्जितः ॥ १ ॥

श्रुताध्ययनसम्पन्ना धर्मज्ञाः सत्यवादिनः ।
राज्ञा सभासदः कार्या रिपौ मित्रे च ये समाः ॥२॥

विद्वान् ब्राह्मणों के साथ क्रोध और लोभ छोड़कर धर्मशास्त्र के अनुसार व्यवहारों को राजा देखे ॥ १ ॥ वेद और मीमांसा आदि शास्त्र पढ़े हों, धर्म जानें, सच बोलें और जो शत्रु और मित्र को बराबर मानें, ऐसे सभासद राजा को करने चाहिये ॥ २ ॥

अपश्यता कार्यवशाद्व्यवहारान्नृपेण तु ।
सभ्यैःसह नियोक्तव्यो ब्राह्मणः सर्वधर्मवित् ॥ ३ ॥
रागाल्लोभाद्भयाद्वापि स्मृत्युपेतादिकारिणः ।
सभ्याः पृथक् पृथक् दण्ड्या विवादाद्द्विगुणं दमम्४

किसी कार्यवश होकर राजा आप व्यवहार न देख सके तो सभासदों के सहित सब धर्म जाननेवाले ब्राह्मण को नियत करदे ॥ ३ ॥ किसी की प्रीति से वा लोभ से भय से यदि सभ्य-लोग धर्मशास्त्र से विरुद्ध काम करें तो जितने का वह व्यवहार हो उससे दूना दण्ड हर एक सभासदों से राजा लेवे ॥ ४ ॥

स्मृत्याचारव्यपेतेन मार्गेणाधर्षितः परैः ।
आवेदयति चेद्राज्ञे व्यवहारपदं हि तत् ॥ ५ ॥
प्रत्यर्थिनोऽग्रतो लेख्यं यथावेदितमर्थिना ।
समामासतदर्धाहर्नामजात्यादिचिह्नितम् ॥ ६ ॥

धर्मशास्त्र और सदाचार के विरुद्ध रीति से दूसरे में पीड़ित होकर यदि राजा को निवेदन करे, तो वही व्यवहार पद कहलाता है ॥ ५ ॥ जो अर्थी (मुद्दई) ने निवेदन किया हो सो

प्रत्यर्थी (मुद्दाअलेह) के समस्त वर्ष, महीना, पाख, दिन, नाम और जाति आदि से चिह्नित करके लिखना ॥ ६ ॥

श्रुतार्थस्योत्तरं लेख्यं पूर्वावेदकसन्निधौ ।
ततोऽर्थी लेखयेत्सद्यः प्रतिज्ञातार्थसाधनम् ॥ ७ ॥
तत्सिद्धौ सिद्धिमाप्नोति विपरीतमतोऽन्यथा ।
चतुष्पाद्व्यवहारोऽयं विवादेषु प्रदर्शितः ॥ ८ ॥

प्रत्यर्थी ने जो बात सुनी हो उसका उत्तर वह अर्थी के सामने लिखावे तब अपने निवेदन के सिद्धि करनेवाली जो बातें हों, उन्हें अर्थी झटपट लिखावे ॥ ७ ॥ निवेदन की प्रमाण सिद्धि हो, तो जीतता है अन्यथा हार जाता है । विवाद में ऐसा (भाषा, उत्तर, क्रिया और साध्य सिद्धि यह) चतुष्पाद व्यवहार होता है । वह तुम्हें दिखला दिया ॥ ८ ॥

अभियोगमनिस्तीर्य नैनं प्रत्यभियोजयेत् ।
अभियुक्तं च नान्येन नोक्तं विप्रकृतिं नयेत् ॥९॥
कुर्यात्प्रत्यभियोगं च कलहे साहसेषु च ।
उभयोः प्रतिभूर्ग्राह्यः समर्थः कार्यनिर्णये ॥ १० ॥

अपने ऊपर जो किसी ने अभियोग किया (सवाल दिया अर्थात् दावा किया) हो, तो उसका उत्तर (जवाब) दिये विना उस सवाल देनेवाले पर अभियोग न करे । और जिस पर किसी दूसरे ने अभियोग किया हो, उस पर भी न करे । जो बातें एकवार कहचुका हो उन्हें बदले भी नहीं ॥ ९ ॥ कलह और साहस में, अभियोग करनेवाले पर भी प्रत्यभियोग करे ।

निर्णय कार्य में जो समर्थ हो, ऐसा प्रतिभू (ज़ामिन) दोनों (अर्थी और प्रत्यर्थी) का लेना चाहिये ॥ १० ॥

निह्नवे भावितो दद्याद्धनं राज्ञे च तत्समम् ।
मिथ्याभियोगी द्विगुणमभियोगाद्धनं वहेत् ॥११॥
साहसस्तेयपारुष्यगोभिशापात्यये स्त्रियाम् ।
विवादयेत्सद्य एव कालोऽन्यत्रेच्छया स्मृतः ॥१२॥

किसी बात का निह्नव (नाक़बूल) किये हो और वह उसपर भावित (साबित) होजाय, तो राजा उससे वह चीज़ वादी को दिलादे और उसी के तुल्य दण्ड (जुर्माना) आप लेवे और किसी ने झूठा अभियोग किया हो, तो जितने का अभियोग हो उससे दूना दण्ड राजा उससे लेवे ॥ ११ ॥ साहस, (मनुष्य मारण आदि) चोरी पारुष्य (गाली देना वा मारना) गौका अभिशाप (महापातक दोष) अत्यय (प्राण और धननाश आदि) और स्त्रीहरण में तुरन्त विवाद का निर्णय करे । इनके सिवा जब अर्थी प्रत्यर्थी आदि चाहें तभी निर्णय करना ॥ १२ ॥

देशाद्देशान्तरं याति सृक्किणी परिलेढि च ।
ललाटं स्विद्यते चास्य मुखं वैवर्ण्यमेव च ॥ १३ ॥
परिशुष्यत्स्खलद्वाक्यो विरुद्धं बहु भाषते ।
वाक् चक्षुः पूजयति नो तथौष्ठौ निर्भुजत्यपि ॥१४॥

जो इधर ही उधर घूमे (एक जगह न बैठसके) गलफड़ों को चाटा करे, जिसके ललाट (माथे) में पसीना होता हो, मुँह का रंग बदल गया हो ॥ १३ ॥ बात कहने में मुँह सूखता जावे

और हिचकता हो, बहुत बातें अपनी ही बातों से विरुद्ध कहे, सामने न देखे, बराबर बात न कहे, ओठ काटा करे ॥ १४ ॥

स्वभावाद्विकृतिं गच्छेन्मनोवाक्कायकर्मभिः ।
अभियोगे च साक्ष्ये वा दुष्टः स परिकीर्त्तितः ॥ १५ ॥
सन्दिग्धार्थं स्वतन्त्रो यः साधयेद्यश्च निष्पतेत् ।
न चाहूतो वदेत्किंचिद्धीनो दण्ड्यश्च स स्मृतः॥१६॥

मन, वाणी और कर्म से अपने आप जो और का और हो गया हो, ये सब अभियोग और साक्ष्य (गवाही) में दुष्ट गिने जाते हैं ॥ १५ ॥ जो अर्थी, प्रत्यर्थी के अंगीकार करने के विना ही, अपनी इच्छा ही से, धन माँगने लगे, जो अपनी अंगीकृत (क़बूल किये हुये) या साधित (साबूत) भये वस्तु के मांगने पर भाग जाय और जो सभा के सामने बुलाये जाने पर कुछ न कहे, ये सब हार जाते हैं। और दण्ड के भी योग्य होते हैं ॥ १६ ॥

साक्षिषूभयतः सत्सु साक्षिणः पूर्ववादिनः ।
पूर्वपक्षेऽधरीभूते भवन्त्युत्तरवादिनः ॥ १७ ॥
सपणश्चेद्विवादः स्यात्तत्र हीनं तु दापयेत् ।
दण्डं च स्वपणं चैव धनिने धनमेव च ॥ १८ ॥

दोनों ओर के साक्षी (गवाह) आये हों, तो जो अपना स्वत्व पहले का कहे उसके साक्षी लेने पर जब उसका पक्ष नीचा हो, तो दूसरे वादी की साक्षी लेना चाहिये ॥१७॥ यदि पण (शर्त) लगा के विवाद करते हों, तो जो हारजावे उससे दण्ड अपना किया हुआ पण और धनी का धन राजा दिला देवे ॥ १८ ॥

छलं निरस्य भूतेन व्यवहारान्नयेन्नृपः।
भूतमप्यनुपन्यस्तं हीयते व्यवहारतः॥ १९॥
निह्नुते लिखितं नैकमेकदेशे विभावितः।
दाप्यः सर्वं नृपेणार्थं न ग्राह्यस्त्वनिवेदितः॥ २०॥

छल (प्रमाद से कही बात) को छोड़कर मुख्य बातों से व्यवहार का निर्णय राजा करें; क्योंकि सच भी बात कही न जावे तो हार होजाती है॥ १९॥ यदि प्रत्यर्थी के लिखाई हुई सच चीज़ों का भिहव-नाक़बूल किया हो और कुछ भी उसपर अर्थी भावित (सबूत) करे, तो राजा उससे सब दिलावे और जो पहले निवेदन के समय में अर्थी ने नहीं लिखाया वह बात न माननी चाहिये॥ २०॥

स्मृत्योर्विरोधे न्यायस्तु बलवान्व्यवहारतः।
अर्थशास्त्रात्तु बलवद्धर्मशास्त्रमिति स्थितिः॥ २१॥
प्रमाणं लिखितं भुक्तिः साक्षिणश्चेति कीर्तितम्।
एषामन्यतमाभावे दिव्यान्यतममुच्यते॥ २२॥

जब दो स्मृतियों (धर्मशास्त्र के वचन) का आपस में विरोध देख पड़े तो बड़ों के व्यवहार के अनुसार, उन दोनों का विषय अलग कर देने का न्याय बली होता है। नीतिशास्त्र से धर्मशास्त्र बली है, ऐसी शास्त्र मर्यादा है॥ २१॥ लिखित भुक्ति और साक्षी ये तीन मनुष्य प्रमाण होते हैं। जब इनमें से कोई न होसके तो किसी दिव्य (शपथ) का आश्रयण करना चाहिये॥ २२॥

सर्वेष्वर्थविवादेषु बलवत्युत्तरा क्रिया ।
आधौ प्रतिग्रहे क्रीते पूर्वा तु बलवत्तरा ॥ २३ ॥
पश्यतो ब्रुवतो भूमेर्हानिर्विंशतिवार्षिकी ।
परेण भुज्यमानाया धनस्य दशवार्षिकी ॥ २४ ॥

धनके सब विवादों में उत्तरा क्रिया (पिछली बात) बलवान् होती, परन्तु आधि (बन्धक) प्रतिग्रह (दान लेना) और क्रीत (मोल लेने) में पूर्वा क्रिया बलवती होती है ॥ २३ । यदि कोई दूसरा मनुष्य स्वामी के सामने उसके धन और भूमि का उपभोग करे पर स्वामी कुछ न बोले तो धनसे उसका स्वत्व दश वर्ष और भूमि से बीस वर्ष में नष्ट होजाता है ॥ २४ ॥

आधिसीमोपनिक्षेपजडबालधनैर्विना ।
तथोपनिधिराजस्त्री श्रोत्रियाणां धनैरपि ॥ २५ ॥
आध्यादीनां विहर्तारं धनिने दापयेद्धनम् ।
दण्डं च तत्समं राज्ञे शक्त्यपेक्षं यथापि वा ॥ २६ ॥

आधि (बंधक) सीमा, उपनिक्षेप (रखने को जो वस्तु गिन के दीगई) जड़ का धन, बालधन, उपनिधि (धरोहर) राजधन, स्त्री धन और श्रोत्रियधन ये दश व बीसवर्ष दूसरे के भोग में भी अपने स्वामी के स्वत्व से दूर नहीं होते ॥ २५ ॥ जो कोई आधि सीमा आदि का हरण करे तो उससे राजा धनी को धन दिलावे और आप उतना ही दण्ड लेवे व जैसी शक्ति देखे वैसा दण्ड लेवे ॥ २६ ॥

आगमोऽभ्यधिको भोगाद्विना पूर्वक्रमागतात् ।
आगमेऽपि बलं नैव भुक्तिस्तोकापि यत्र नो ॥ २७ ॥

आगमस्तु कृतो येन सोऽभियुक्तस्तमुद्धरेत् ।
न तत्सुतस्तत्सुतो वा भुक्तिस्तत्र गरीयसी ॥ २८ ॥

तीन पुरुष तक बराबर भोग न करते आये हों तो उस भोग से आगम (लेख) बली होता है । परन्तु आगम हो और भोग थोड़ा भी न हो तो उस आगम में कुछ बल नहीं होता ॥ २७ ॥ जिसने आगम करवाया (कोई चीज़ लिखवाली) है उसपर अभियोग (दावा) हो तो, वह आगम दिखलावे, परन्तु उसके पुत्र पौत्र आदि न दिखलावें । उनका भोग ही बलवान् गिना जाता है ॥ २८ ॥

योऽभियुक्तः परेतः स्यात्तस्य रिक्थी तमुद्धरेत् ।
न तत्र कारणं भुक्तिरागमेन विना कृता ॥ २९ ॥
आगमेन विशुद्धेन भोगो याति प्रमाणताम् ।
अविशुद्धागमो भोगः प्रामाण्यं नैव गच्छति ॥ ३० ॥

आगम करनेवाले पर अभियोग हुआ हो और वह मर जावे तो उसके दायाद आगम सिद्ध करें । स्थल में ऐसे आगम के विना उनका भोग नहीं देखा जाता ॥ २९ ॥ आगम विशुद्ध हो तो भोग प्रामाणिक होता है आगम शुद्ध न हो तो भोग प्रमाण नहीं समझा जाता ॥ ३० ॥

नृपेणाधिकृताः पूगाः श्रेणयोऽथ कुलानि च ।
पूर्वं पूर्वं गुरु ज्ञेयं व्यवहारविधौ नृणाम् ॥ ३१ ॥
बलोपाधिविनिर्वृत्तान् व्यवहारान्निवर्तयेत् ।
स्त्रीनक्तमन्तरागारबहिः शत्रुकृतांस्तथा ॥ ३२ ॥

राजा ने जिसको नियुक्त किया हो, पूग (जनसमूह) श्रेणी (एक ही व्यापार से जीतनेवालों का समूह) और कुल (जाति, सम्बन्धि आदि का समूह) इनमें जो पहले पहले लिखे हैं, वे व्यवहार निर्णय करने में पिछलों से श्रेष्ठ हैं। अर्थात् पिछलों ने व्यवहार निर्णय किया भी हो और वादी प्रतिवादी का सन्तोष न भया हो, तो पहलेवालों से फिर निर्णय करा लेवें ॥ ३१ ॥ बलात्कार और भय से जो व्यवहार सिद्ध भये हैं और जो स्त्री से, रात को, घर के भीतर, ग्राम आदि से बाहर और शत्रु से किये गये हों, उन व्यवहारों को भी निवृत्त करे (फिर से देखे) ॥ ३२ ॥

मत्तोन्मत्तार्तव्यसनिबालभीतादियोजितः ।
असम्बद्धकृतश्चैव व्यवहारो न सिध्यति ॥ ३३ ॥
प्रणष्टाधिगतं देयं नृपेण धनिने धनम् ।
विभावयेन्न चेल्लिङ्गैस्तत्समं दण्डमर्हति ॥ ३४ ॥

मत्त (मदिरा आदि से) उन्मत्त (बौड़हा) आर्त (व्याधि आदि से पीड़ित) व्यसनी (अनिष्ट होने से दुःखी) बालक और भयाक्रान्त आदि से व्यवहार किया हो और जो सम्बन्धी न हो उसने जो व्यवहार किया हो वह सिद्ध नहीं होता ॥ ३३ ॥ किसी की चीज़ प्रणष्ट (खोगई) हो और राजा के पास (ग्रामपाल आदि) लेआवें तो राजा उसे उसके स्वामी को दे, जो ठीक-ठीक पहचान न बतावे, तो राजा उतना ही उससे दण्ड लेवे ॥ ३४ ॥

राजा लब्ध्वा निधिं दद्याद् द्विजेभ्योऽर्धं द्विजः पुनः ।
विद्वानशेषमादद्यात्स सर्वस्य प्रभुर्यतः ॥ ३५ ॥

इतरेण निधौ लब्धे राजा षष्ठांशमाहरेत् ।
अनिवेदितविज्ञातो दाप्यस्तं दण्डमेव च ॥ ३६ ॥

राजा निधि (भूमिगत धन) पावे तो आधा ब्राह्मणों को दे, यदि ब्राह्मण पावे और वह विद्वान् हो, तो सबका-सब खुद ले लेवे क्योंकि वह सबका प्रभु है ॥ ३५ ॥ दूसरा कोई निधि पावे, तो राजा उसे छठाँ अंश देकर शेष आप ले लेवे निधि पाकर राजा को न जनावे और राजा किसी प्रकार जान लेवे, तो उससे निधि और दण्ड भी लेवे ॥ ३६ ॥

मातृकाप्रकरण समाप्त ।

ऋणादानप्रकरण ।

देयं चौरहृतं द्रव्यं राजा जानपदाय तु ।
आददद्धि समाप्नोति किल्बिषं यस्य तस्य तत् ॥ ३७ ॥
अशीतिभागो वृद्धिः स्यान्मासि मासि सबन्धके ।
वर्णक्रमाच्छतं द्वित्रिचतुः पञ्चकमन्यथा ॥ ३८ ॥

जिसकी चीज़ चोरी गई हो उसको राजा (चाहे जिस प्रकार से) वह चीज़ दे देवे, जो न दे तो उसका सब पाप राजा को लगता है ॥ ३७ ॥ बंधक रख के अस्सी रुपये पर एक रुपया व्याज लिये बिना बंधक रुपया दे, तो वर्ण (ब्राह्मण आदि से) क्रम से २, ३, ४ और ५ रुपये सैकड़े व्याज लेवे ॥ ३८ ॥

कान्तारगास्तु दशकं सामुद्रा विंशकं शतम् ।
दद्युर्वा स्वकृतां वृद्धिं सर्वे सर्वासु जातिषु ॥ ३९ ॥

सन्ततिस्तु पशुस्त्रीणां रसस्याष्टगुणापरा ।
वस्त्रधान्यहिरण्यानां चतुस्त्रिद्विगुणापरा ॥ ४० ॥

जो ऋण लेकर वन में होकर व्यापार करने जावे उससे दश रुपये सैकड़े और समुद्र में जानेवाले से बीस रुपये सैकड़े व्याज लेवे अथवा सब लोग जितना व्याज देना स्वीकार किये हों उतना देवें । यह सामान्य हर एक जाति का धर्म है ॥३९॥ पशु और स्त्री का व्याज उनकी सन्तति है । रस (तेल आदि) किसी को दे और बहुत काल विना व्याज वह उसके निकट पड़ा रहे, तो अठगुने से अधिक न ले । वस्त्र, धान्य और हिरण्य इनका क्रम से चौगुना, तिगुना और दूना व्याज लेवे ॥ ४० ॥

प्रपन्नं साधयन्नर्थं न वाच्यो नृपतेर्भवेत् ।
साध्यमानो नृपं गच्छन् दण्ड्योदाप्यश्च तद्धनम् ४१
गृहीतानुक्रमाद्दाप्यो धनिनामधमर्णिकः ।
दत्त्वा तु ब्राह्मणायैव नृपतेस्तदनन्तरम् ॥ ४२ ॥

जिस ऋण को प्रपन्न (क़बूल) किया है जो धनी उसे किसी धर्मोपाय से लेना चाहे, तो राजा मना न करे । और ऋणी राजा के पास निवेदन करे, तो उससे धनी का धन दिला दे और दण्ड भी लेवे ॥ ४१ ॥ एक जाति के धनी हों, तो जिस क्रम से जिसका धन लिया हो उसी क्रम से उसको ऋणी से दिलावे । और भिन्न-भिन्न जाति के धनी हों, तो ब्राह्मण का धन पहले, तब क्षत्री आदि का क्रम से दिलावे ॥ ४२ ॥

राज्ञाधमर्णिको दाप्यः साधिताद्दशकं शतम् ।
पञ्चकं च शतं दाप्यं प्राप्तार्थो ह्युत्तमर्णिकः ॥४३॥

हीनजातिं परिक्षीणमृणार्थं कर्म कारयेत् ।
ब्राह्मणस्तु परिक्षीणः शनैर्दाप्यो यथोदयम् ॥४४॥

धनी का धन क़र्ज़दार से जो राजा को दिलाना पड़े, तो अधमर्ण (क़र्ज़दार) से राजा दश रुपये सैकड़े दण्ड ले । और धनी से पाँच रुपये सैकड़े मज़दूरी ले ॥ ४३ ॥ यदि ऋणी को ऋण देने की सामर्थ्य न हो और धनी की जाति से उसकी जाति छोटी हो व तुल्य हो, तो उससे अपना काम करवा के ऋण भर ले । और यदि ऋणी ब्राह्मण ऋण देने में असमर्थ हो, तो उससे काम न कराना किन्तु धीरे-धीरे उससे अपना धन लिया करे ॥ ४४ ॥

दीयमानं न गृह्णाति प्रयुक्तं यः स्वकं धनम् ।
मध्यस्थस्थापितं चेत्स्याद्वर्द्धते न ततः परम् ॥४५॥
अविभक्तैः कुटुम्बार्थे यदृणं तत्कृतं भवेत् ।
दद्युस्तद्रिक्थिनः प्रेते प्रोषिते वा कुटुम्बिनि ॥४६॥

ऋणी देता हो और धनी न ले, तो वह धन किसी मध्यस्थ के पास रख देना, फिर ऋणी को ब्याज न देनी पड़ेगी ॥४५॥ जो लोग अविभक्त (इकट्ठा रहते) हों उनमें से किसी ने कुटुम्ब के पोषण के लिये ऋण किया हो, तो वह ऋण कुटुम्बी (मालिक) देवे और यदि कुटुम्बी मरजाय या परदेश चला जाय, तो उसके दायाद (धन लेनेवाले) देवें ॥ ४६ ॥

न योषित्पतिपुत्राभ्यां न पुत्रेण कृतं पिता ।
दद्यादृते कुटुम्बार्थान्न पतिः स्त्रीकृतं तथा ॥ ४७ ॥

सुराकामद्यूतकृतं दण्डशुल्कावशिष्टकम् ।
वृथा दानं तथैवेह पुत्रो दद्यान्न पैतृकम् ॥ ४८ ॥

कुटुम्ब पोषण के सिवाय पति और पुत्र का किया हुआ ऋण स्त्री न देवे । इसी प्रकार पुत्रकृत पिता न देवे और स्त्रीकृत पति भी न देवे ॥ ४७ ॥ इसी प्रकार मदिरापान, व्यभिचार, जुआ खेलने को, राजदण्ड का और शुल्क का शेष (बाकी) धन और वृथादान के लिये जो ऋण पिता ने किया हो, उसे पुत्र न देवे ॥ ४८ ॥

गोपशौण्डिकशैलूषरजकव्याधयोषिताम् ।
ऋणं दद्यात्पतिस्तासां यस्माद्वृत्तिस्तदाश्रया ॥ ४९ ॥
प्रतिपन्नं स्त्रिया देयं पत्या वा सह यत्कृतम् ।
स्वयं कृतं वा यदृणं नान्यत्स्त्री दातुमर्हति ॥ ५० ॥

अहीर, कलवार, नट, धोबी और व्याध इनकी स्त्रियों ने जो ऋण किया हो, सो उनके पति देवें, क्योंकि उनकी वृत्ति स्त्री के आधीन है ॥ ४९ ॥ जो ऋण प्रतिपन्न (कबूल) किया हो व जो पति के साथ लिया हो और अपने आप जो ऋण लिया हो वही स्त्री देवे । इसके सिवाय दूसरे प्रकार का ऋण स्त्री कभी न देवे ॥ ५० ॥

पितरि प्रोषिते प्रेते व्यसनाभिप्लुतेपि वा ।
पुत्रपौत्रैर्ऋणं देयन्निह्नवे साक्षिभावितम् ॥ ५१ ॥
रिक्थग्राह ऋणं दाप्यो योषिद्ग्राहस्तथैव च ।
पुत्रोऽनन्याश्रितद्रव्यः पुत्रहीनस्य रिक्थिनः ॥ ५२ ॥

जब पिता मरजाय या परदेश गया हो अथवा किसी व्यसन

(लत) में पड़गया हो, तो पुत्र और पौत्र ऋण दें । क़बूल न करें, तो साखियों से जो भावित सावित हो सो देवें ॥ ५१ ॥ जो जिसका धन ले वह उसका ऋण दे । वह न हो तो जो उसकी स्त्री ले वह ऋण दे । और जिसका धन पुत्रों के सिवाय दूसरे ने नहीं लिया उसका ऋण उसके पुत्र दें, पुत्र न हो तो रिक्थि (दायाद) देवें ॥ ५२ ॥

भ्रातॄणामथ दम्पत्योः पितुः पुत्रस्य चैव हि ।
प्रातिभाव्यमृणं साक्ष्यमविभक्तेन तु स्मृतम् ॥ ५३ ॥
दर्शने प्रत्यये दाने प्रातिभाव्यं विधीयते ।
आद्यो तु वितथे दाप्यावितरस्य सुता अपि ॥ ५४ ॥

भाई, स्त्री, पुरुष, पिता और पुत्र यदि विभक्त न हों, तो इनकी प्रातिभाव्य (ज़ामिनी) ऋण औपसाक्ष्य (गवाही) करने की योग्यता नहीं ॥ ५३ ॥ दर्शन (देखने की) प्रत्यय (विश्वास कराने में) और दान (स्वयं माल देने का) यों तीन प्रातिभाव्य (ज़ामिनी) होती हैं । इनमें पहले दो प्रकार के प्रातिभाव्य जिसने किया हो वह भूठा पड़े, तो केवल वही उतना धन दे परन्तु तीसरे के लड़के भी देवें ॥ ५४ ॥

दर्शने प्रतिभूर्यत्र मृतः प्रात्ययिकोऽपि वा ।
न तत्पुत्रा ऋणं दद्युर्दद्युर्दानाय यः स्थितः ॥ ५५ ॥
बहवः स्युर्यदि स्वांशैर्दद्युः प्रतिभुवो धनम् ।
एकच्छायाश्रितेष्वेषु धनिकस्य यथारुचि ॥ ५६ ॥

जब दर्शन और प्रत्यय के प्रतिभू मरगये हों, तो उनके पुत्रों से ऋण न दिलाना किन्तु जो दान प्रतिभू हो उसी के पुत्र से

दिलाना ॥ ५५ ॥ प्रतिभू कई एक हों, तो ऋण बाँट लेवें, फिर अपने-अपने अंश के अनुसार धनी को धन देवें । और जो हरएक सम्पूर्ण धन देने को उद्यत हो, तो धनिक की रुचि है, चाहे जिससे ले ॥ ५६ ॥

प्रतिभूर्दापितो यत्तु प्रकाशं धनिनां धनम् ।
द्विगुणं प्रतिदातव्यमृणिकैस्तस्य तद्भवेत् ॥ ५७ ॥
सन्ततिः स्त्रीपशुष्वेव धान्यं त्रिगुणमेव च ।
वस्त्रं चतुर्गुणं प्रोक्तं रसश्चाष्टगुणः स्मृतः ॥ ५८ ॥

जिस प्रतिभू से सबके सामने जितना धनी का धन दिलाया गया हो, उसको ऋणी दूना करके उस प्रतिभू को भर देवे ॥ ५७ ॥ स्त्री और पशु प्रतिभू से दिलाया गया हो, तो ऋणी दूने के बदले में सन्तति सहित स्त्री और पशु दे । और अन्न तिगुना, वस्त्र चौगुना और रस (पीतल आदि) अठगुना देवे ॥ ५८ ॥

आधिः प्रणश्येद् द्विगुणे धने यदि न मोक्ष्यते ।
काले कालकृतो नश्येत्फलभोग्यो न नश्यति ॥५९॥
गोप्याधिभोगे नो वृद्धिः सोपकारेऽथ हापिते ।
नष्टो देयो विनष्टश्च दैवराजकृतादृते ॥ ६० ॥

जो चीज़ बन्धक रक्खी हो उसपर मूल धन के तुल्य ब्याज भी चढ़जाय और ऋणी न छुड़ावे, तो वह बन्धक बूड़ा हो जाता है । जिस बन्धक में समय की अवधि करदी हो, तो वह अपने समय हो जाने पर बूड़ा होता है । परंतु फल-भोग्य-बन्धक (जिससे धनी को ब्याज मिलती जाय) वह कभी नष्ट

नहीं होता ॥ ५९ ॥ दृष्टिबन्धक को जो अपने काम में लावे, तो उसको ब्याज ऋणी न दे और भोगबन्धक में भी जो कुछ हानि हो जाय, तो भी ब्याज न दे। दैव और राजोपद्रव के बिना कोई बन्धक की चीज़ बिगड़ जाय या नष्ट हो जाय, तो धनी अपने पास से देवे ॥ ६० ॥

आधेः स्वीकरणात्सिद्धी रक्ष्यमाणोऽप्यसारताम्।
यातश्चेदन्य आधेयो धनभाग्वा धनी भवेत् ॥ ६१ ॥
चरित्रबन्धककृतं सवृद्धया दापयेद्धनम्।
सत्यङ्कारकृतं द्रव्यं द्विगुणं प्रतिदापयेत् ॥ ६२ ॥

आधि (बन्धक) स्वीकार करने से (उपभोग करने से) सिद्ध (अपने स्वत्वशिष्ट) होता है। और जो यत्न से रखने पर भी बन्धक की चीज़ बिगड़ जावे, तो दूसरी चीज़ उसके बदले में रखदेना अथवा धनी का धन देदेना ॥ ६१ ॥ यदि चरित्र-बन्धक (आपस के विश्वास से थोड़ी चीज़ पर बहुत धन दे देवे व बड़ी पर थोड़ा ही ले लेवे अथवा अपना पुण्य, तीर्थ-स्नान फल आदि बन्धक) किया हो, तो ब्याज समेत धन धनी दिला पावे और जिस आधि में सत्यप्रतिज्ञा हुई हो (कि धन दूना होने पर भी धन ही देंगे आधि नष्ट न होगी) तो दूना धन ही दिला देना ॥ ६२ ॥

उपस्थितस्य मोक्तव्य आधिः स्तेनोऽन्यथा भवेत्।
प्रयोजके सति धनं कुलेऽन्यस्याधिमाप्नुयात् ॥ ६३ ॥
तत्कालकृतमूल्यो वा तत्र तिष्ठेदवृद्धिकैः।
विना धारणिकाद्वापि विक्रीणीत ससाक्षिकम् ॥ ६४ ॥

ऋणी बन्धक छुड़ाने आवे, तो उसकी चीज़ दे देना यदि ब्याज के लोभ से कुछ दिन और रक्खे, तो चोर का सा दण्ड पाता है । ऋणी बन्धक छुड़ाने आवे और धनी कहीं गया हो, तो उसके कुल में से किसी प्रामाणिक के पास धन ब्याज समेत रखकर अपनी चीज़ ले लेवे ॥ ६३ ॥ धनी न हो और बन्धक बेच के ऋण दिया चाहे, तो उस समय में जो मोल बन्धक का हो वह कहकर बन्धक वहीं रहने दे और उस समय से ब्याज न देवे (जो दूना धन होने पर भी बन्धक बूड़ा होने का करार न हो और धन मूल ब्याज मिल के दूना होजाय अथवा ऋणी पास न हो कहीं गया हो) तो साखी रखकर उस बन्धक को ऋणी के बिना भी बेच डाले ॥ ६४ ॥

यदा तु द्विगुणीभूतमृणमाधौ तदा खलु ।
मोच्य आधिस्तदुत्पन्ने प्रविष्टे द्विगुणे धने ॥ ६५ ॥

जो भोगबन्धक से अपने मूलधन से दूना धन धनी पा लेवे तो वह बन्धक की चीज़ छोड़ देवे ॥ ६५ ॥

इति ऋणादानप्रकरण समाप्त ।

उपनिधिप्रकरण ।

वासनस्थमनाख्याय हस्तेऽन्यस्य यदर्प्यते ।
द्रव्यन्तदौपनिधिकं प्रतिदेयं तथैव तु ॥ ६६ ॥

किसी बर्तन में ढांप के, बिना गिने कोई चीज़ रखने के लिये किसी को दे तो वह "उपनिधि" कहलाती है । और उसी तौर उसे फेर देना भी चाहिये ॥ ६६ ॥

न दाप्योपहृतं तन्तु राजदैविकतस्करैः ।
भ्रेषश्चेन्मार्गितेऽदत्ते दाप्यो दण्डं च तत्समम् ॥६७॥
आजीवन् स्वेच्छया दण्ड्यो दाप्यस्तं चापि सोदयम् ।
याचितान्वाहितन्यासनिक्षेपादिष्वयं विधिः ॥ ६८ ॥

यदि उपनिधि राजोपद्रव, दैवोपद्रव अथवा चोरी होने से नष्ट होगई हो तो उसे न दिलावे । जो उपनिधि के स्वामी ने मांगा हो और न दिया हो फिर वह द्रव्य दैवराजादि उपद्रव से नष्ट होजाय तो उतनी चीज़ और उसीके तुल्य दण्ड भी राजा उससे ले ॥ ६७ ॥ जो उपनिधि का भोग अपनी इच्छा से करे तो ब्याज समेत दिलाना और यही रीति याचित (मंगनी) अन्वाहित (किसी दूसरे के हाथ जो चीज़ धनी को देने के लिये भेजी हो) न्यास (किसी के घर में उसके परोक्ष जो चीज़ रखने को धर दी हो) और निःक्षेप (चीज़ गिनकर रखने को दी हो) में भी जानना ॥ ६८ ॥

इति उपनिधिप्रकरण समाप्त ।

साक्षीप्रकरण ।

तपस्विनो दानशीलाः कुलीनाः सत्यवादिनः ।
धर्मप्रधाना ऋजवः पुत्रवन्तो धनान्विताः ॥ ६९ ॥
त्र्यवराः साक्षिणो ज्ञेयाः श्रौतस्मार्तक्रियापराः ।
यथाजाति यथावर्णं सर्वे सर्वेषु वा स्मृताः ॥ ७० ॥

तपस्वी, दानशील, कुलीन, सत्यवादी, धर्मिष्ठ, ऋजु (सीधे) पुत्रवाले और धनी ॥ ६९ ॥ वेद और धर्मशास्त्र के अनुसार चलने

वाले ऐसे तीन से अधिक साखी बनाना चाहिये । वे अपनी जाति और वर्ण के हों या दूसरी जाति-वर्ण के हों ॥ ७० ॥

श्रोत्रियास्तापसा वृद्धा ये च प्रव्रजितादयः ।
असाक्षिणस्ते वचनान्नात्र हेतुरुदाहृतः ॥ ७१ ॥
स्त्रीवृद्धबालकितवमत्तोन्मत्ताभिशस्तकाः ।
रङ्गावतारिपाखण्डिकूटकृद्विकलेन्द्रियाः ॥ ७२ ॥

श्रोत्रिय (वेदपठनपाठनतत्पर), तपस्वी, वृद्ध और प्रव्राजित (संन्यासी) आदि को शास्त्र की आज्ञा से ही साखी न बनाना । इसमें कुछ कारण नहीं है ॥ ७१ ॥ स्त्री, बालक, वृद्ध (अस्सी वर्ष से ऊपर), कितव (जुआरी), मत्त (मदिरा से), उन्मत्त (ग्रहदोष से), अभिशस्त (जिसको दोष लगा हो), रङ्गावतारी (चारण नट की जाति), पाखंडी (नंगे होकर फिरनेवाला), कूटकारी (कपट लेखकारी), विकलेन्द्रिय (बहरा गूंगा आदि) ॥७२॥

पतिताप्तार्थसम्बन्धिसहायरिपुतस्कराः ।
साहसी दृष्टदोषश्च निर्धूताद्यास्त्वसाक्षिणः ॥७३॥
उभयानुमतः साक्षी भवत्येकोऽपि धर्मवित् ।
सर्वः साक्षी संग्रहणे चौर्य्यपारुष्यसाहसे ॥ ७४ ॥

पतित, आप्त (सुहृद्), अर्थसम्बन्धी (मामिले में सामिल), सहाय, शत्रु, चोर, साहसी (बलात्कार करनेवाला), जिसका कोई दोष देखा गया हो और निर्धून (बन्धुओं से त्यक्त) आदि साखी नहीं बनाये जाते ॥ ७३ ॥ वादी, प्रतिवादी दोनों मानें तो, एक मनुष्य भी साखी होता है । चोरी, पारुष्य (मा-

रना व गाली देना) और साहस (मनुष्य मारण आदि) में सभी साखी होसक्ते हैं ॥ ७४ ॥

साक्षिणः श्रावयेद्वापि प्रतिवादिसमीपगान् ।
ये च पातकृतां लोका महापातकिनां तथा ॥७५॥
अग्निदानां च ये लोका ये च स्त्रीबालघातिनाम् ।
स तान्सर्वानवाप्नोति यः साक्ष्यमनृतं वदेत् ॥७६॥

वादी और प्रतिवादी के पास लेजाकर, सभासद लोग साखियों को सुनावें कि जो लोग महापातकी पातकी ॥ ७५ ॥ आग लगानेवाले, स्त्री और बालक के वध करनेवालों को जो पाप लगता है वह झूठ साखी (गवाही) देनेवालों को लगता है ॥ ७६ ॥

सुकृतं यत्त्वया किञ्चिज्जन्मान्तरशतैःकृतम् ।
तत्सर्वं तस्य जानीहि यं पराजयसे मृषा ॥ ७७ ॥
अब्रुवन् हि नरः साक्ष्यमृणं सदशबन्धकम् ।
राज्ञा सर्वं प्रदाप्यः स्यात् षट्चत्वारिंशकेहनि ॥७८॥

जो पुण्य तुमने पिछले जन्म में किया है सो वह सब उसका है जिसको झूठा कहकर पराजित करते हो ॥ ७७ ॥ जो साखी होकर सभा में कुछ न बोले, तो राजा उसी से दशबन्धक (दशमांश जो दण्डरूप से राजा लेता है उसको) सहित छियालिस दिन में सम्पूर्ण ऋण दिला देवे ॥ ७८ ॥

न ददाति हि यः साक्ष्यं जानन्नपि नराधमः ।
स कूटसाक्षिणां पापैस्तुल्यो दण्डेन चैव हि ॥७९॥

द्वैधे बहूनां वचनं समेषु गुणिनां तथा।
गुणिद्वैधे तु वचनं ग्राह्यं ये गुणवत्तमाः ॥ ८० ॥

जो नीच जानकर भी साखी नहीं देता वह कूटसाक्षी (आगे लिखेंगे) के पाप और दण्ड का भागी होता है ॥ ७६ ॥ जब साखी दोनों प्रकार की बातें कहें, तो बहुतों की बात माननी चाहिए। दोनों ओर बराबर साखी हों, तो उनमें जो गुणी हो उसकी बात माननी। गुणियों में भी दुविधा हो, तो जो बड़े गुणी हों उनके वचन मानने चाहिए ॥ ८० ॥

यस्योचुः साक्षिणः सत्यां प्रतिज्ञां स जयी भवेत्।
अन्यथा वादिनो यस्य ध्रुवस्तस्य पराजयः ॥ ८१ ॥
उक्तेऽपि साक्षिभिः साक्ष्ये यदन्ये गुणवत्तमाः।
द्विगुणा वान्यथा ब्रूयुः कूटाः स्युः पूर्वसाक्षिणः ॥ ८२ ॥

जिसकी बात साखी बतावें कि सच है वह जीतता है। और जिसकी अन्यथा कहें उसका अवश्य पराजय होता है ॥ ८१ ॥ साखी कहचुके हों और उनसे अधिक गुणवाले या दुगुने मनुष्य उनके कहे से विपरीत कहें, तो पहले साखी कूट कहे जाते हैं ॥ ८२ ॥

पृथक्पृथग्दण्डनीयाः कूटकृत्साक्षिणस्तथा।
विवादाद् द्विगुणं दण्डं विवास्यो ब्राह्मणः स्मृतः ८३ ॥
यः साक्ष्यं श्रावितोऽन्येभ्यो निह्नुते तत्तमोवृतः।
सदाप्योऽष्टगुणं दण्डं ब्राह्मणं तु विवासयेत् ॥ ८४ ॥

जो साखियों को कूट बनावे (फोड़ ले) और साखी भी जो कूट हो जाय (फूट जाय) उन प्रत्येक को जितने का विवाद

हो उससे दूना दण्ड देना चाहिए । और ब्राह्मण हो, तो उसको अपने नगर से निकाल देना यही उसको दण्ड है ॥ ८३ ॥ जो पहले साखी बनना स्वीकार करके समय पर किसी कारण या मोह से इनकार करे, तो उसको जो दण्ड हारजानेवाले को होगा उससे अठगुना दण्ड देना और ब्राह्मण हो, तो उसको देश से निकाल देना चाहिए ॥ ८४ ॥

वर्णिनां हि वधो यत्र तत्र साक्ष्यनृतं वदेत् ।
तत्पावनाय निर्वाप्यश्चरुः सारस्वतो द्विजैः ॥ ८५ ॥

जब देखे कि सच बोलने में किसी का वध होगा, तो साखी झूठ बोले और उस दोष के छुड़ाने के लिये सरस्वती देवता का हविष्य बनाकर हवन करे यही प्रायश्चित्त है ॥ ८५ ॥

इति साक्षीप्रकरण समाप्त ।

लेख्यप्रकरण

यः कश्चिदर्थो निष्णातः स्वरुच्या तु परस्परम् ।
लेख्यं तु साक्षिमत्कार्यं तस्मिन्धनिकपूर्वकम् ॥८६॥

जो बात ऋण देने लेने की आपस में ठहरी हो, उसे साखी देकर धनी का नाम पहले फिर ऋणी का, इस रीति से लेख करवाना ॥ ८६ ॥

समामास तदर्द्धाहर्नाम जातिस्वगोत्रकैः ।
सब्रह्मचारिकात्मीयपितृनामादिचिह्नितम् ॥ ८७ ॥
समाप्ते तु ऋणीनाम स्वहस्तेन निवेशयेत् ।
मतं मेऽमुकपुत्रस्य यदत्रोपरिलेखितम् ॥ ८८ ॥

वर्ष, महीना, पाख, दिन (तिथि), दोनों का नाम और जाति, गोत्र, उपनाम और अपने-अपने पिता का नाम आदि भी उस लेख में लिखाना ॥ ८७ ॥ जब (कागज़) लिखचुकें, तो ऋणी अपने हाथ से नीचे अपना नाम लिखकर यह लिख दे कि जो ऊपर लिखा है सो अमुक के पुत्र हमको स्वीकार है ॥८८॥

साक्षिणश्च स्वहस्तेन पितृनामकपूर्वकम् ।
अत्राहममुकः साक्षी लिखेयुरिति ते समाः ॥ ८९ ॥
उभयाभ्यर्थितेनैतन्मया ह्यमुकसूनुना ।
लिखितं ह्यमुकेनेति लेखकोन्ते ततो लिखेत् ॥ ९० ॥

साखी लोग भी अपने-अपने हाथ से अपने-अपने पिता का नाम लिखकर अपना नाम लिखें कि इस व्यवहार में हम साखी हैं परन्तु दो, चार, या छः आदि सम संख्या के साखी बनाना चाहिए ॥ ८९ ॥ सबके अन्त में लेखक लिखे कि अमुक के पुत्र मुझको दोनों ने प्रार्थनापूर्वक कहा, तो अमुक नाम हमने यह लिख दिया ॥ ९० ॥

विनापि साक्षिभिर्लेख्यं स्वहस्तलिखितं तु यत् ।
तत्प्रमाणं स्मृतं लेख्यं बलोपाधिकृताहृते ॥ ९१ ॥
ऋणं लेख्यकृतं देयं पुरुषैस्त्रिभिरेव तु ।
आधिस्तु भुज्यते तावद्यावत्तन्न प्रदीयते ॥ ९२ ॥

जो लेख अपने हाथ लिखा जाय वह बिना साखी भी लिखा हो, तो प्रमाण होता है। परन्तु बलात्कार और छल लोभ आदि से जो किया हो वह प्रमाण नहीं होता ॥ ९१ ॥ लेख का ऋण तीन ही पुरुष (पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र) को देना चाहिए

परन्तु आधि (बन्धक) तब तक भोगी जाती है जब तक चुका न देवे ॥ ९२ ॥

देशान्तरस्थे दुर्लेख्ये नष्टोन्मृष्टे हृते तथा ।
भिन्ने दग्धेऽथवा छिन्ने लेख्यमन्यत्तु कारयेत॥ ९३॥
संदिग्धे लेख्यशुद्धिः स्यात्स्वहस्तलिखितादिभिः ।
युक्तिप्राप्तिक्रियाचिह्नसम्बन्धागमहेतुभिः ॥ ९४ ॥

जब लिखित कहीं दूरदेश में रहजाय, उसके अक्षर इतने मलिन होजायँ कि पढ़ न सकें, नष्ट हो जायँ, घिस जायँ, चोरी होजायँ, कट जायँ, जल जायँ अथवा फट जायँ तो दूसरा लिखना चाहिए ॥ ९३ ॥ लेख में संदेह हो तो अपने लिखे हुये दूसरे पत्र से मिलाकर, युक्ति प्राप्ति (इस देश में इस काल में इसको इतने द्रव्य की योग्यता थी), क्रिया (साखी), चिह्न (श्री कारादि), सम्बन्ध (पहला व्यवहार) और आगम (आमदनी) से निश्चय करना ॥ ९४ ॥

लेख्यस्य पृष्ठेऽभिलिखेद्दत्त्वा दत्त्वर्णिको धनम् ।
धनी वोपगतं दद्यात्स्वहस्तपरिचिह्नितम् ॥ ९५ ॥
दत्त्वर्णं पाटयेल्लेख्यं शुद्ध्यै वान्यत्तु कारयेत् ।
साक्षिमच्च भवेद्यद्वा तद्दातव्यं ससाक्षिकम् ॥ ९६ ॥

जितना जितना ऋणी देता जाय वह अपने हाथ से लिखित पत्र के पीठ पर लिख दे और धनी जितना पावे उसका उपगत (रसीद) अपने हाथ से लिखकर ऋणी को देवे ॥ ९५ ॥ सम्पूर्ण ऋण दे देवे तो लेख फाड़ डाले अथवा शुद्धिपत्र (भर

पाई) लिखा ले और जिसमें साखी हों वह ऋण साखियों के सामने देना चाहिए ॥ ९६ ॥

इति लेख्य प्रकरण समाप्त ।

दिव्यप्रकरण ।

तुलाग्न्यापो विषं कोशो दिव्यानीह विशुद्धये ।
महाभियोगेष्वेतानि शीर्षकस्थेऽभियोक्तरि ॥९७॥
रुच्या वान्यतरः कुर्यादितरो वर्त्तयेच्छिरः ।
विनापि शीर्षकान् कुर्यान्नृपद्रोहेऽथ पातके ॥९८॥

तुला, अग्नि, जल, विष और कोश ये पाँच दिव्य (शपथ) जब दूसरा उपाय न हो, तो जय पराजय करने के लिये महाभियोग में अभियोक्ता (वादी) को देने चाहिए ॥ ९७ ॥ आपस में सम्मति करके चाहे दूसरा (अभियुक्त) ही दिव्य करे और वादी धनदण्ड अथवा शरीरदण्ड स्वीकार करे राजद्रोह और महापातक में जय पराजय के विना भी शपथ करे ॥ ९८ ॥

सचैलं स्नानमाहूय सूर्योदय उपोषितम् ।
कारयेत्सर्वदिव्यानि नृपब्राह्मणसन्निधौ ॥ ९९ ॥
तुलास्त्रीबालवृद्धान्धपङ्गुब्राह्मणरोगिणाम् ।
अग्निर्जलं वा शूद्रस्य यवाः सप्तविषस्य वा ॥१००॥

पहले दिन उपवास कराके प्रातःकाल शपथ देनेवाले को सचैल (सवस्त्र) स्नान करवा कर बुलाना और सभासद्, राजा और ब्राह्मणों के सामने सब दिव्य कराना चाहिए ॥ ९९ ॥

स्त्री, बालक (सोलह वर्ष तक का), वृद्ध (अस्सी वर्ष का), अन्धा, लूला, ब्राह्मण, और रोगी इन्हें शुद्धि के लिये तुला देनी, अग्नि क्षत्रिय को, जल वैश्य को, और शूद्र को सात यव भर विष देना ॥ १०० ॥

नासहस्राद्धरेत्फालं न विषं न तुलां तथा ।
नृपार्थेष्वभिशापे च वहेयुः शुचये सदा ॥ १ ॥

सहस्र (हज़ार) पण से न्यून का विवाद हो, तो अग्नि, विष, तुला और जल का शपथ न दिलाना । परन्तु नृपद्रोह और महापातक का अभियोग हो, तो चाहे जितने का हो सदा इन शपथों को शुद्ध होकर करना चाहिए ॥ १ ॥

इति दिव्यमातृका समाप्त ।

तुलाधारणविद्वद्भिरभियुक्तस्तुलाश्रितः ।
प्रतिमानसमीभूतो रेखां कृत्वाऽवतारितः ॥ २ ॥

तोलने में जो निपुण हों (सोनार आदि) वे शपथ देने-वाले को तुला पर चढ़ाकर, यव बराबर तोल ले उसमें रेखा कर रक्खे उसे उतारे ॥ २ ॥

त्वं तुले सत्यधामासि पुरा देवैर्विनिर्मिता ।
तत्सत्यं वद कल्याणि संशयान्मां विमोचय ॥ ३ ॥
यद्यस्मिन्पापकृन्मातस्ततो मां त्वमधोनय ।
शुद्धश्चेद्गमयोर्ध्वं मां तुलामित्यभिमन्त्रयेत् ॥ ४ ॥

फिर प्रार्थना करे हे तुले ! तू सत्य का स्थान है, देवताओं ने सृष्टि की आदि में तुझे बनाया है इसलिये हे कल्याणि ! तू सच बतला दे, इस संशय से मुझे छुड़ा दे ॥ ३ ॥ हे मातः ! जो मैं पापी

होऊँ, तो मुझे नीचे लेजा और सच्चा होऊँ, तो ऊपर उठा, ऐसी प्रार्थना तुला से करे ॥ ४ ॥

इति घटविधि समाप्त।

करौ विमृदितव्रीहेर्लक्षयित्वा ततो न्यसेत्।
सप्ताश्वत्थस्य पत्राणि तावत्सूत्राणि वेष्टयेत् ॥ ५ ॥
त्वमग्ने सर्वभूतानामन्तश्चरसि पावक!।
साक्षिवत्पुण्यपापेभ्यो ब्रूहि सत्यं कवे मम ॥ ६ ॥

अग्नि के शपथ करनेवाले के हाथ में यव मलवा के फिर देखना जो जो चिह्न उसके हाथ में हों उसको अलक्तक (महावर) से रँग देना, तब पीपल के सात पत्ते उसके हाथ पर रख के कच्चे सूत से सात फेरा बाँध देना ॥ ५ ॥ फिर हे अग्ने! तुम सब जीवों के अन्तःकरण में वास करते हो, शुद्ध करनेवाले हो, इसलिये हमारा पुण्य-पाप देख के साक्षी के समान सच-सच दिखला दो ॥ ६ ॥

तस्येत्युक्तवतो लोहपञ्चाशत्पलिकं समम्।
अग्निवर्णं न्यसेत्पिण्डं हस्तयोरुभयोरपि ॥ ७ ॥
स तमादाय सप्तैव मण्डलानि शनैर्व्रजेत्।
षोडशाङ्गुलकं ज्ञेयं मण्डलं तावदन्तरम् ॥ ८ ॥

शपथ देनेवाला जब ऐसा कह चुके, तो उसके दोनों हाथ पर पचास पलभर लोहे का गोला लाल करके रख देना ॥ ७ ॥ वह उसको लेकर धीरे-धीरे सात मण्डल चले (मण्डल सोलह अंगुल का होता है) और एक से दूसरे का अन्तर भी इतना ही होता है ॥ ८ ॥

मुक्त्वाग्निं मृदितव्रीहिरदग्धः शुद्धिमाप्नुयात् ।
अन्तरापतितो पिण्डे सन्देहे वा पुनर्हरेत् ॥ ९ ॥

अग्नि को वहाँ त्याग करके फिर हाथों से यव मले कहीं जला न हो, तो शुद्ध होता है यदि गोला बीच ही में गिर पड़े अथवा दग्ध होने का संदेह पड़ा हो तो फिर उठावे ॥ ९ ॥

इति अग्निविधि समाप्त ।

सत्येन माभिरक्ष त्वं वरुणेत्यभिशाप्यकम् ।
नाभिदग्धोदकस्थस्य गृहीत्वोरुजलं विशेत् ॥१०॥
समकालमिषुं मुक्तमानीयान्यो जवी नरः ।
गते तस्मिन्निमग्नाङ्गं पश्येच्चेच्छुद्धिमाप्नुयात् ११॥

हे वरुण ! सत्य से मेरी रक्षा करो इस मन्त्र से जल की प्रार्थना करके, नाभिपर्यन्त जल में खड़े हुए मनुष्य की जाँघ पकड़ के जल में गोता मारे ॥ १० ॥ उसी समय बाण फेकना और किसी बड़े दौड़नेवाले से उस बाण को मँगावे । जबतक वह बाण ला चुके तबतक शपथ करनेवाला डूबा ही देख पड़े, तो शुद्ध कहलाता है ॥ ११ ॥

इति उदकविधि समाप्त ।

त्वं विष ब्रह्मणः पुत्रः सत्यधर्मे व्यवस्थितः ।
त्रायस्वास्मादभीशापात्सत्येन भव मेऽमृतम् ॥१२॥
एवमुक्त्वा विषं शार्ङ्गं भक्षयेद्धिमशैलजम् ।
यस्य वेगैर्विना जीर्येच्छुद्धिं तस्य विनिर्दिशेत् ॥१३॥

हे विष ! तुम ब्रह्मा के पुत्र हो, और सत्यधर्म में स्थापित भये हो, मुझको इस अभिशाप (कलंक) से बचाओ, और सब

जान के अमृत के तुल्य होजाओ ॥ १२ ॥ ऐसा कहकर शपथ देनेवाला सिंगिआ माहुर खावे। जो पच जाय तो शुद्ध जानना चाहिए ॥ १३ ॥

इति विषविधि समाप्त।

देवानुग्रान्समभ्यर्च्य तत्स्नानोदकमाहरेत्।
संश्राव्य पाययेत्तस्माज्जलं तु प्रसृतित्रयम् ॥ १४ ॥
अर्वाक् चतुर्दशादह्नो यस्य नो राजदैविकम्।
व्यसनं जायते घोरं स शुद्धः स्यान्न संशयः ॥ १५ ॥

उग्र देवता को पूज करके उनका स्नानजल ले आवे और प्राड्विवाक शपथ देनेवाले को सुनाकर तीन पसर उसमें से जल पिलावे ॥ १४ ॥ जिसको चौदह दिन के भीतर राजा से या दैव से घोर उपद्रव न आपड़े उसे शुद्ध निश्चय से जानना चाहिए ॥ १५ ॥

इति दिव्यप्रकरण समाप्त।

दायविभागप्रकरण।

विभागं चेत्पिता कुर्यादिच्छया विभजेत्सुतान्।
ज्येष्ठं वा श्रेष्ठभागेन सर्वे वा स्युः समांशिनः ॥ १६ ॥

यदि पिता अपने जीते ही लड़कों का विभाग करे, तो अपने उपार्जित धन में उसकी इच्छा है चाहे सबको बराबर दे अथवा ज्येष्ठपुत्र को श्रेष्ठभाग (ज्येष्ठांश) अधिक देवे ॥ १६ ॥

यदि कुर्यात्समानंशान् पत्न्यः कार्याः समांशिकाः।
न दत्तं स्त्रीधनं यासां भर्त्रा वा श्वशुरेण वा ॥ १७ ॥

शक्तस्यानीहमानस्य किञ्चिद्दत्त्वा पृथक्क्रियाम् ।
न्यूनाधिकविभक्तानां धर्म्यः पितृकृतः स्मृतः ॥१८॥

जो सब पुत्रों को समान अंश दे, तो अपनी उन स्त्रियों को भी जिन्हें श्वशुर या पति ने स्त्रीधन न दिया हो पुत्रों के समान अंश देवे ॥ १७ ॥ जो पुत्र द्रव्यअर्जन (कमाने) में समर्थ हो और पिता का धन न चाहता हो, तो कुछ थोड़ा बहुत देकर विभाग कर देना और न्यूनाधिक (कम ज़्यादह) जिनका विभाग पिता ने धर्म की रीति से किया हो, तो वह बदलता नहीं है ॥१८॥

विभजेरन्सुताः पित्रोरूर्ध्वं रिक्थमृणं समम् ।
मातुर्दुहितरः शेषमृणात्ताभ्य ऋतेऽन्वयः ॥ १९ ॥
पितृद्रव्याविरोधेन यदन्यत्स्वयमर्जितम् ।
मैत्रमौद्वाहिकं चैव दायादानां न तद्भवेत् ॥ २० ॥

माता और पिता के देहत्याग होने पर सब पुत्र इकट्ठे होकर धन और ऋण बराबर बाँट लेवें । परन्तु माता का धन उसका ऋण देकर जो बचे सो लड़कियाँ बाँट लेवें जो लड़कियाँ न हों तो पुत्र लेवें ॥ १९ ॥ जो धन माता पिता के धन की सहायता के विना ही अपने पुरुषार्थ से कमाया हो, मित्र से पाया हो और विवाह में मिला हो, तो वह दूसरे दायादों (भाइयों) का नहीं होता ॥ २० ॥

क्रमादभ्यागतं द्रव्यं हृतमप्युद्धरेत्तु यः ।
दायादेभ्यो न तद्दद्याद्विद्यया लब्धमेव च ॥ २१ ॥
सामान्यार्थसमुत्थाने विभागस्तु समः स्मृतः ।
अनेकपितृकाणांतु पितृतो भागकल्पना ॥ २२ ॥

अपने बाप दादे का द्रव्य जो किसी ने हर लिया हो और वे न छुड़ा सके हों उसे अपने भाइयों की सम्मति लेकर जो कोई लड़का छुड़ावे, तो वह धन और विद्या पढ़ने-पढ़ाने से जो धन मिले सो भी दूसरे भाइयों को न दे, आप ही सब लेवे ॥ २१ ॥ जिस धन का विभाग न भया हो, उसे जो कोई खेती व व्यापार करके बढ़ावे तो सबका बराबर ही भाग होता है, और दादे के धन में अपने-अपने बाप का भाग बाँट के फिर उसमें अपना भाग लगा लेवें ॥ २२ ॥

भूर्या पितामहोपात्ता निबन्धो द्रव्यमेव च ।
तत्र स्यात्सदृशं स्वाम्यं पितुः पुत्रस्य चोभयोः ॥२३॥
विभक्तेषु सुतो जातो सवर्णायां विभागभाक् ।
दृश्याद्वा तद्विभागः स्यादायव्ययविशोधितात् २४॥

जो भूमि, निबन्ध (रोज़ीना) और धन दादे ने कमाया हो उसमें पिता और पुत्र दोनों का तुल्य अधिकार है ॥ २३ ॥ पिता के जीते ही, पुत्र का विभाग होचुका हो और तब सवर्ण (अपनी जाति की) स्त्री में कोई और पुत्र उत्पन्न हो, तो वह अपनी माता पिता का भाग पावे (और पिता के अनन्तर भाई आपस में विभाग करें, तो उसके अनन्तर जिसका गर्भ उनके पिता ही से हुआ हो, पर वे न जानते हों ऐसा कोई और पुत्र उनकी माता के उपजे तो) आय व्यय (आमदनी और खर्च) शोधन कर (मुजरे देकर) जो धन बाकी हो, उसमें से उस पुत्र को भी भाग दे ॥ २४ ॥

पितृभ्यां यस्य यद्दत्तं तत्तस्यैव धनं भवेत् ।
पितुरूर्ध्वं विभजतां माताप्यंशं समं हरेत् ॥ २५ ॥

असंस्कृतास्तु संस्कार्या भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः ।
भगिन्यश्च निजादंशाद्दत्त्वांशं तु तुरीयकम् ॥ २६ ॥

माता पिता ने जो चीज़ जिसको दी हो, वह उसी का धन होगा । पिता के देहत्याग होनेपर भाई आपस में विभाग करें, तो माता भी अपने पुत्रों के बराबर एक भाग ले लेवे ॥ २५ ॥ पिता के अनन्तर विभाग करने लगें तो जिस भाई का विवाह आदि संस्कार न भया हो, तो उसका संस्कार करके तब धन बाँटे। और जो बिना ब्याही बहिन हो, तो जिस जाति की स्त्री से उत्पन्न हुई हो, उस जाति के पुत्र को जैसा अंश मिल सके वैसा एक अंश अलग करके उसमें से चौथाई देके ब्याह देना ॥ २६ ॥

चतुस्त्रिद्व्येकभागाः स्युर्वर्णशो ब्राह्मणात्मजाः ।
क्षत्रजास्त्रिद्व्येकभागा विड्जास्तुद्व्येकभागिनः॥२७॥
अन्योन्यापहृतद्रव्यं विभक्तं यत्तु दृश्यते ।
तत्पुनस्ते समैरंशैर्विभजेरन्निति स्थितिः ॥ २८ ॥

ब्राह्मण से ब्राह्मणी आदि स्त्री में उत्पन्न पुत्र वर्णक्रम के अनुसार चार २ तीन २ दो २ एक २ भाग लें । क्षत्रिय से क्षत्रिया आदि स्त्री में उत्पन्न पुत्र, क्रम से तीन २ दो २ एक २ भाग पावें । और वैश्य से वैश्या आदि स्त्रियों के पुत्र क्रम से दो २ और एक २ भाग लेवें । तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण को चारों वर्ण की स्त्री का अधिकार कहा है, और जो उन सबोंमें एक एक पुत्र जनमे हों, तो उस ब्राह्मण के धन के १० तुल्य भाग करे ४ ब्राह्मणी का पुत्र, ३ क्षत्रिया का, २ वैश्या का और १ शूद्रा का पुत्र लेवे । ऐसे ही क्षत्रिय और वैश्य में भी लगा लो ॥२७॥ जो द्रव्य विभाग के समय आपस में दबा रक्खी हो और

विभाग होने के पीछे देख पड़े, तो उसको फिर सब बराबर भाग करके बाँट लें, यह शास्त्र की मर्यादा है ॥ २८ ॥

अपुत्रेण परक्षेत्रे नियोगोत्पादितः सुतः ।
उभयोरप्यसौ रिक्थी पिण्डदाता च धर्मतः ॥ २९ ॥
यस्या म्रियेत कन्याया वाचा सत्ये कृते पतिः ।
तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः ॥ ३० ॥

जिसके पुत्र न हो, उसने जो अपने बड़ों की आज्ञा से दूसरे के क्षेत्र (स्त्री) में पुत्र उत्पन्न किया हो, तो वह पुत्र दोनों बीजी और क्षेत्री का पिण्ड देनेवाला और धन लेनेवाला भी धर्मपूर्वक होता है ॥ २९ ॥ जिस कन्या का वाग्दान होने पर वर मर जावे, तो उस कन्या को देवर (पति का भाई बड़ा वा छोटा) ब्याहे ॥ ३० ॥

यथाविध्यधिगम्यैनां शुक्लवस्त्रां शुचिव्रताम् ।
मिथो भजेताप्रसवात्सकृत्सकृदृतावृतौ ॥ ३१ ॥
औरसो धर्मपत्नीजस्तत्समः पुत्रिकासुतः ।
क्षेत्रजः क्षेत्रजातस्तु स गोत्रेणेतरेण वा ॥ ३२ ॥

और यथाविधि (अपने अंग में घी लगाकर मौन होकर) जब तक कोई सन्तति न उत्पन्न हो तब तक हर एक ऋतुकाल में उस स्त्री को श्वेत वस्त्र पहिना कर और मन, वाणी और शरीर का संयम कराकर एक ही वार गमन करे ॥ ३१ ॥ जो अपनी धर्मपत्नी में (विवाहिता स्त्री में) पुत्र उत्पन्न हो, वह औरस कहाता है । पुत्रिका सुत (बेटी का बेटा वा बेटी) भी उसी के (औरस के) बराबर है । अपनी स्त्री में जो सगोत्र से वा दूसरे

से भी उत्पन्न हो वह पुत्र क्षेत्रज कहलाता है ॥ ३२ ॥

गृहे प्रच्छन्न उत्पन्नो गूढजस्तु सुतः स्मृतः ।
कानीनः कन्यकाजातो मातामहसुतो मतः ॥३३॥
अक्षतायां क्षतायां वा जातः पौनर्भवः सुतः ।
दद्यान्माता पिता वायं सपुत्रो दत्तको भवेत् ॥३४॥

गृह में जो गुप चुप पुत्र जन्मे वह गूढज है । जो कन्या (बे ब्याही स्त्री) से उत्पन्न हो, वह कानीन कहलाता है । और नाना का पुत्र होता है ॥ ३३ ॥ जो क्षतयोनि वा अक्षतयोनि पुनर्भू में उत्पन्न होता है, वह पौनर्भव कहलाता है । जिस पुत्र को माता व पिता दे देवें वह दत्तक होता है ॥ ३४ ॥

क्रीतश्च ताभ्यां विक्रीतः कृत्रिमः स्यात्स्वयं कृतः ।
दत्तात्मा तु स्वयं दत्तो गर्भो विन्नः सहोढजः ॥३५॥
उत्सृष्टो गृह्यते यस्तु सोपविद्धो भवेत्सुतः ।
पिण्डदोऽशहरश्चैषां पूर्वाभावे परः परः ॥ ३६ ॥

माता पिता जिसको बेंच दें, वह क्रीतपुत्र कहलाता है । जो माता पिता से हीन हो उसको कोई लोभ दिखाकर पुत्र बना ले, तो वह कृत्रिमसुत कहलाता है । अपने से जो किसी का पुत्र हो जावे उसे दत्तात्मा कहते हैं । जो विवाह करते समय गर्भ में रहा हो, उसे सहोढज कहते हैं ॥ ३५ ॥ जिसको माता पिता ने त्याग दिया हो उसे कोई और पुत्र बना लेवे, तो वह अपविद्ध सुत कहलाता है । इन बारह प्रकार के पुत्रों में जो पहिले २ न हों, तो उनके अनन्तर जो-जो पड़े हैं, वे पिण्ड देने और धन लेने के अधिकारी होते हैं ॥ ३६ ॥

सजातीयेष्वयं प्रोक्तस्तनयेषु मया विधिः ।
जातोऽपि दास्यां शूद्रेण कामतोंऽशहरो भवेत् ॥३७॥
मृते पितरि कुर्युस्तं भ्रातरस्त्वर्द्धभागिकम् ।
अभ्रातृको हरेत्सर्वं दुहितॄणां सुतादृते ॥ ३८ ॥

यह विधि सजातीय पुत्रों में, मैंने कही । यदि शूद्रदासी में भी पुत्र उत्पन्न करे, तो वह पिता की अनुमति से पूरा भाग पाता है ॥ ३७ ॥ पिता मर गया हो, तो उस दासीपुत्र को भाई लोग आधा भाग दें । और भाई न हों तथा लड़की का पुत्र (नाती) भी न हो, तो वह दासीपुत्र पिता का सब धन ले लेवे ॥ ३८ ॥

पत्नी दुहितरश्चैव पितरौ भ्रातरस्तथा ।
तत्सुता गोत्रजा बन्धुशिष्यसब्रह्मचारिणः ॥३९॥
एषामभावे पूर्वस्य धनभागुत्तरोत्तरः ।
स्वर्यातस्य ह्यपुत्रस्य सर्ववर्णेष्वयं विधिः ॥ ४० ॥

जिसके किसी प्रकार का पुत्र न हो, वह मर जाय तो उसका धन पत्नी (विवाहिता स्त्री), दुहिता (लड़कियाँ), पिता, माता, भाई, उनके लड़के, गोत्रज (गोती), बन्धु (बिरादरी) शिष्य (चेला) और ब्रह्मचारी (गुरुभाई) ॥ ३९ ॥ इनमें से पहले २ के अभाव में, दूसरे २ अधिकारी होते हैं । यही विधि सब वर्णों में जो अपुत्र मर जाय उसकी है ॥ ४० ॥

वानप्रस्थयतिब्रह्मचारिणां रिक्थभागिनः ।
क्रमेणाचार्यसच्छिष्यधर्मभ्रात्रेकतीर्थिनः ॥ ४१ ॥

संसृष्टिनस्तु संसृष्टी सोदरस्य तु सोदरः ।
दद्यादपहरेच्चांशं जातस्य च मृतस्य च ॥ ४२ ॥

वानप्रस्थ, यती और ब्रह्मचारी इनका धन क्रम से (धर्मभ्रात्रेकतीर्थी) उसी एक आश्रम में रहनेवाला धर्म का भाई, सच्छिष्य (अध्यात्म शास्त्र पढ़ा चेला) और आचार्य ये लेवें ॥ ४१ ॥ जो विभक्त होकर फिर भाई वा पिता आदि के साथ धन मिला के इकट्ठा रहता हो, वह संसृष्टी का है। संसृष्टी का धन संसृष्टी लेवे, सगा भाई संसृष्टी मरे, तो उसका धन सगा भाई जो जीता संसृष्टी है, सो ले। और यदि संसृष्टी उसके मरने पर पुत्र पैदा करे, तो ये दोनों उसे उसके पिता का भाग दे देवें ॥ ४२ ॥

अन्योदर्यस्तु संसृष्टी नान्योदर्यो धनं हरेत् ।
असंसृष्टयपि वा दद्यात्संसृष्टो नान्यमातृजः ॥४३॥
क्लीबोऽथ पतितस्तज्जः पंगुरुन्मत्तको जडः ।
अन्धोऽचिकित्स्यरोगाद्या भर्त्तव्याः स्युर्निरंशकाः ४४

सापत्न भ्राता (सवतीला भाई) जो संसृष्टी हो, तो धन लेवे और असंसृष्टी हो, तो न ले। परंतु सगा भाई असंसृष्टी भी हो, तो धन पावे और सापत्न भ्राता संसृष्टी भी हो, तो सब धन न लेवे, आधा सगे को भी देवे ॥ ४३ ॥ क्लीव (नपुंसक), पतित (पतित का पुत्र, लँगड़ा), उन्मत्त (बौरहा), जड़ (अज्ञानी), अन्ध और अचिकित्स्य रोगी (जिसको ऐसी व्याधि हो कि दवा न हो सके) इनको भाग न देना, केवल भोजन वस्त्र देना चाहिए ॥ ४४ ॥

औरसक्षेत्रजास्त्वेषां निर्दोषा भागहारिणः ।
सुताश्चैषां प्रभर्त्तव्या यावद्वै भर्त्तसात्कृतः ॥ ४५ ॥
अपुत्रा योषितश्चैषां भर्त्तव्याः साधुवृत्तयः ।
निर्वास्या व्यभिचारिण्यः प्रतिकूलास्तथैव च ॥४६॥

इन सबोंके औरस पुत्र या क्षेत्रज पुत्र जो निर्दोष हों, तो भाग पावें । और इनकी लड़कियों का, जब तक व्याही जाकर भर्ता को सौंपी न जावें, तब तक पालन करना ॥ ४५ ॥ इनकी पुत्रहीन स्त्रियों का भी यदि साधुवृत्ति हों, तो पालन करना और व्यभिचारिणी अथवा प्रतिकूल (कहना न मानती) हों, तो निकाल देना चाहिए ॥ ४६ ॥

पितृमातृपतिभ्रातृदत्तमध्यग्न्युपागतम् ।
आधिवेदनिकाद्यं च स्त्रीधनं तत्प्रकीर्त्तितम् ॥४७॥
बन्धुदत्तं तथा शुल्कमन्वाधेयकमेव च ।
अतीतायामप्रजसि बान्धवास्तदवाप्नुयुः ॥ ४८ ॥

जो धन पिता, माता, भाई और पति ने दिया हो, जो मातुल आदि संबन्धियों ने व्याह के समय अग्नि के सन्निधि में दिया हो, और आधिवेदनिक (जो धन दूसरा व्याह करने के समय पहली स्त्री को उसके संतोष के लिये पति देता है) इत्यादि स्त्रीधन कहलाता है ॥ ४७ ॥ इसी प्रकार बन्धुओं ने जो दिया हो, शुल्क (जो धन लेकर कन्या दी जाती है) और अन्वाधेय (जो व्याह के अनन्तर भर्तृकुल या पितृकुल से मिले) ये भी स्त्रीधन कहलाते हैं । और जो बिना अपत्य स्त्री

मर जाय तो इन पूर्वोक्त सब प्रकार के धनों को बान्धव (भाई आदि) बाँट लें ॥ ४८ ॥

अप्रजस्त्रीधनं भर्तुर्ब्राह्मणादिचतुर्ष्वपि ।
दुहितॄणां प्रसूता चेच्छेषेषु पितृगामि तत् ॥ ४९ ॥
दत्त्वा कन्यां हरन्दण्ड्यो व्ययन्दद्याच्च सोदयम् ।
मृतायां दत्तमादद्यात्परिशोध्योभयव्ययम् ॥ ५० ॥

जो स्त्री निरपत्य मरी हो, तो ब्राह्म आदि चार विवाह (जो आचाराध्याय में कहे गये हैं उन) में प्राप्त स्त्रीधन पति लेवें । और इनसे दूसरे विवाहों में प्राप्त धन माता पिता लेवें । परन्तु जो स्त्री को संतान जन्मे हों, तो उसकी लड़की व लड़कियों की लड़की, हर एक ब्याह का मिला हुआ धन पावें ॥ ४९ ॥ कन्या को वाग्दान करके (देना कहकर) विना किसी कारण न देवे, तो राजा उसकी शक्ति के अनुसार दण्ड करे और जो धन वर का उठा हो वह ब्याज समेत दिला दे । और जो वाग्दान के बाद कन्या मर जावे, तो अपना और कन्या देनेवाले का व्यय (खर्च) शोधन (मुजरा) देकर जो अपने दिये हुए धन का शेष बचे सो वर लेवे ॥ ५० ॥

दुर्भिक्षे धर्मकार्ये च व्याधौ सम्प्रतिरोधके ।
गृहीतं स्त्रीधनं भर्त्ता न स्त्रियै दातुमर्हति ॥ ५१ ॥
अधिविन्नस्त्रियै दद्यादाधिवेदनिकं समम् ।
न दत्तं स्त्रीधनं यस्यै दत्ते त्वर्द्धं प्रकीर्तितम् ॥ ५२ ॥

दुर्भिक्ष (काल पड़ने में), धर्मकार्य, रोग और सम्प्रति रोधक (क़ैदी) में जो स्त्रीधन पति ने लिया हो, सो स्त्री को न

देवे ॥ ५१ ॥ जब दूसरा ब्याह पति करे, तो पहली स्त्री को, जो स्त्रीधन दिया न हो, तो जितना ब्याह में धन लगे उतना धन देवे और स्त्रीधन दिया हो, तो आधा देवे ॥ ५२ ॥

विभागनिह्नवे ज्ञातिबन्धुसाक्ष्याभिलेखितैः।
विभागभावना ज्ञेया गृहक्षेत्रैश्च यौतुकैः ॥ ५३ ॥

विभाग का निह्नव (नाक़बूल) करे, तो जाति के लोग, बन्धुलोग, साखी, विभागपत्र और बँटे हुए गृह (घर), क्षेत्र (खेत) और धन से उसको भावित (साबित) करे ॥ ५३ ॥

इति दायविभागप्रकरण समाप्त।

सीमाविवादप्रकरण।

सीम्नो विवादे क्षेत्रस्य सामन्ताः स्थविरादयः।
गोपाः सीमाकृषाणाश्च सर्वे च वनगोचराः ॥५४॥

दो गाँवों के भूमि की सीमा या एक ही गाँव के दो खेतों की सीमा का विवाद हो, तो सामन्त (पास के गाँवों में रहनेवाले बड़े लोग), वृद्ध लोग, गोप (चरवाहे), सीमा के पास का खेत जोतनेवाले और जो वन घूमा करते हैं ॥ ५४ ॥

नयेयुरेनं सीमानं स्थलाङ्गारतुषद्रुमैः।
सेतुवल्मीकनिम्नास्थिचैत्याद्यैरुपलक्षितम् ॥ ५५ ॥
सामन्ता वा समग्रामाश्चत्वारोऽष्टौ दशापि वा।
रक्तस्रग्वसनाः सीमां नयेयुः क्षितिधारिणः ॥५६॥

ये सब राजा को स्थल (ऊँची भूमि), अंगार (कोयला), तुष (भुस), वृक्ष, सेतु (पुल), वल्मीक (बेमउर), निम्न

(गड्हे), अस्थि (हड्डी) और चैत्य (पत्थर आदि के बाँध) आदि से सीमा की चिह्नाटी बतलावें । और राजा निर्णय करे ॥ ५५ ॥ यदि ये कोई चिह्न न मिलें, तो आस पास के गाँवों के रहनेवाले या उसी गाँव के वासी ४, ८ व १० मनुष्य लाल माला और वस्त्र पहन के शिरपर मिट्टी का टुकड़ा लेकर जहाँ सीमा ठहरा दें, वहीं निश्चित करना ॥ ५६ ॥

अनृते तु पृथग्दण्ड्या राज्ञा मध्यमसाहसम् ।
अभावे ज्ञातृचिह्नानां राजा सीम्नः प्रवर्तिता ॥५७॥
आरामायतनग्रामनिपानोद्यानवेश्मसु ।
एष एव विधिर्ज्ञेयो वर्षाम्बुप्रवहादिषु ॥ ५८ ॥

जो ये झूँठे समझ पड़ें, तो राजा इन हर एक को मध्यम साहस ५४० पण (जो आचाराध्याय में कह आये हैं) का दण्ड दे और जाति के लोग अथवा चिह्न कोई भी न हों, तो राजा आप ही ठहरा दे ॥ ५७ ॥ यही विधि बगीचा, बैठक, गाँव, पानी का स्थल (कूप तड़ाग आदि), उद्यान (क्रीड़ा-स्थल) और घर की सीमा के विवाद तथा बरसात के जल बहने के स्थल के झगड़े में भी जानना ॥ ५८ ॥

मर्यादायाः प्रभेदे च सीमातिक्रमणे तथा ।
क्षेत्रस्य हरणे दण्डा अधमोत्तममध्यमाः ॥ ५९ ॥
न निषेध्योऽल्पबाधस्तु सेतुः कल्याणकारकः ।
परभूमिं हरन् कूपः स्वल्पक्षेत्रो बहूदकः ॥ ६० ॥

मर्यादा कई खेतों के बीच जो सबकी साधारण भूमि हो, सीमा अलगाने के लिये छूटी रहती है । उसके तोड़ने में, सीमा

लाँघने और खेत हरने में क्रम से अधम, उत्तम, और मध्यम दण्ड राजा करे॥ ५९॥ यदि कोई सेतु और कूप आदि दूसरे के खेत में बनाना चाहे, तो खेत का स्वामी मना न करे, क्योंकि इनसे पानी आदि मिलने का उपकार बहुत होता है और हानि बहुत थोड़ी होती है॥ ६०॥

स्वामिनेयोऽनिवेद्यैव क्षेत्रे सेतुं प्रवर्त्तयेत्।
उत्पन्नं स्वामिनो भोगस्तदभावे महीपतेः॥ ६१॥
फालाहतमपि क्षेत्रं न कुर्याद्यो न कारयेत्।
स प्रदाप्यः कृष्टफलं क्षेत्रमन्येन कारयेत्॥ ६२॥

जो स्वामी की आज्ञा के विना ही दूसरे की भूमि में सेतु बनाता है, उसमें जो पैदा हो वह स्वामी भोग करे, स्वामी न हो तो राजा लेवे, बनानेवालों को कभी न दे॥ ६१॥ जो किसी का खेत जोतने को लेकर एकाध वार थोड़ा हल चला के फिर न आप जोते न और किसी से जुतवावे, तो वह खेत स्वामी उससे छीन के दूसरे को जोतने के लिये दे देवे और उससे उतना द्रव्य या अन्न लेवे, जितना कि उस खेत में उपजता॥ ६२॥

इति सीमाविवादप्रकरण समाप्त।

स्वामिपालविवादप्रकरण।

माषानष्टौ तु महिषी शस्यघातस्य कारिणी।
दण्डनीया तदर्द्धन्तु गौस्तदर्द्धमजाविकम्॥ ६३॥
भक्षयित्वोपविष्टानां यथोक्ताद् द्विगुणो दमः।
सममेषां विवीतेपि खरोष्ट्रं महिषीसमम्॥ ६४॥

जिसकी भैंस, गौ, अथवा भेड़-वकरी दूसरे के खेत को चर जाय, तो भैंस आदि के स्वामी को राजा क्रम से भैंस के लिये एक पैसा, गौ के लिये एक अधेला, भेड़-वकरी के लिये एक छदाम प्रतिपशु दण्ड करे ॥ ६३ ॥ खेत चर के जो भैंस वगैरह कहीं वैठें व सोवें, तो पूर्वोक्त दण्ड से दूना दण्ड करे। और विवीता घास आदि के वाड़ा में भी भैंस आदि चली जायँ, तो पहले ही के वरावर दण्ड लेना। गधा और ऊंट के स्वामी से भैंस के तुल्य दण्ड लेवे ॥ ६४ ॥

यावच्छस्यं विनश्येत्तु तावत्स्यात्क्षेत्रिणः फलम् ।
गोपस्ताड्यस्तु गोमी तु पूर्वोक्तं दण्डमर्हति ॥ ६५ ॥
पथिग्रामविवीतान्ते क्षेत्रे दोषो न विद्यते ।
अकामतः कामचारे चौरवद्दण्डमर्हति ॥ ६६ ॥

जितना अनाज अटकल से खाये हों, उतना खेत के स्वामी को दिलावे और गोप (चरवाहा) को ताड़ना (शरीर दण्ड दे) परन्तु पशुस्वामी से केवल पूर्वोक्त धन ही दण्ड लेना चाहिए ॥ ६५ ॥ राह और गाँव के पास जो खेत हों, उसमें भूल से पशु पड़जाय, तो दोष नहीं और जान बूझ के चरावे, तो चोर के तुल्य दण्ड पावे ॥ ६६ ॥

महोक्षोत्सृष्टपशवः सूतिकागन्तुकादयः ।
पालो येषां च ते मोच्या देवराजपरिप्लुताः ॥ ६७ ॥
यथार्पितान्पशून्गोपः सायं प्रत्यर्पयेत्तथा ।
प्रमादमृतनष्टाश्च प्रदाप्यः कृतवेतनः ॥ ६८ ॥

महोक्ष (जो वैल गायों के वरदाने को छोड़ा हो), उत्सृष्ट

पशु (वृषोत्सर्ग व किसी देवता के निमित्त छोड़ा गया पशु), दशदिन की बिआई गौ, अपने झुंड से बहँक कर दूर से आया और जिसका पालनेवाला न हो तथा राजा और दैव से पीड़ित हो, ऐसे पशु खेत खाय जायँ तो छोड़ देना, दण्ड न लेना ॥६७॥ गोप (चरवाहे) को जैसा पशु सौंपा हो, वह वैसा ही सन्ध्याकाल में लाकर स्वामी को सौंपे और जो उसके भूल से पशु नष्ट होजायँ, तो उसकी मज़दूरी में पशु का मोल स्वामी को देने के लिये राजा काट लेवे ॥ ६८ ॥

पालदोषविनाशे तु पालदण्डो विधीयते ।
अर्द्धत्रयोदशपणः स्वामिनो द्रव्यमेव च ॥ ६९ ॥
ग्रामेच्छया गोप्रचारो भूमिराजवशेन वा ।
द्विजस्तृणैधपुष्पाणि सर्वतः सर्वदा हरेत् ॥ ७० ॥

यदि पाल (चरवाहे) के दोष से पशु का विनाश हो, तो साढ़े तेरह पण राजा दण्ड ले और पशुस्वामी को उस पशु का मोल दिला देवे ॥ ६९ ॥ गाँव के बसनेवालों की इच्छा से अथवा उस भूमि का जो राजा हो, उसकी आज्ञा से गौओं के चरने के लिये कुछ धरती विना जुती छोड़ देना चाहिए । द्विजलोग देवपूजने के लिये सब जगह तृण, लकड़ी और फल विना पूछे अपनी चीज़ की तरह ले सकता है ॥ ७० ॥

धनुःशतं परीणाहो ग्रामे क्षेत्रान्तरं भवेत् ।
द्वे शते खर्वटस्य स्यान्नगरस्य चतुश्शतम् ॥ ७१ ॥

गाँव के चारों ओर सौ धनुष परिमिति बिन जुती धरती छोड़ के खेत बनावे कर्व्वट * (क़सबा) के चारों ओर दो सौ धनुष और नगर के चार सौ धनुष छोड़ देवे ॥ ७१ ॥

इति स्वामिपालविवादप्रकरण समाप्त ।

अस्वामिविक्रयप्रकरण ।

स्वं लभेतान्यविक्रीतं क्रेतुर्दोषो प्रकाशते ।
हीनाद्रहो हीनमूल्ये वेलाहीने च तस्करः ॥ ७२ ॥

किसी चीज़ को कोई दूसरा बेच दिया या बन्दकर रख दिया हो और उस चीज़ का स्वामी देख पावे, तो अपनी चीज़ ले लेवे क्रेता (खरीदनेवाला) गुप-चुप मोल लिया हो, तो उसको दोष होता है । हीन (जिसके पास उस चीज़ के आने का संभव न हो उससे) एकान्त में, या रात को अथवा थोड़े मोल पर, मोल ले, तो चोर का-सा दण्ड पावे ॥ ७२ ॥

नष्टापहृतमासाद्य हर्तारं ग्राहयन्नरम् ।
देशकालातिपत्तौ च गृहीत्वा स्वयमर्पयेत ॥ ७३ ॥
विक्रेतुर्दर्शनाच्छुद्धिः स्वामी द्रव्यं नृपो दमम् ।
क्रेता मूल्यमवाप्नोति तस्माद्यः तस्य विक्रयी ॥ ७४ ॥

अपनी नष्ट चीज़ जिसके पास देखे उसे स्थानपाल आदि राजमनुष्यों को कहकर पकड़ा देवे, जो देखे कि नज़दीक कोई राजपुरुष नहीं है अथवा जब तक कहेंगे तब तक वह भाग जायगा, तो आपही पकड़ के राजपुरुष को सौंप दे ॥ ७३ ॥ यदि वह मोल लेनेवाला बेचनेवाले को दिखला दे, तो आप छूट जाता है । और बेचनेवाले से राजा दण्ड ले और चीज़ के स्वामी को उसकी चीज़ दिला दे और मोल लेनेवाले का दाम भी फेरवा दे ॥ ७४ ॥

---

* खर्न्वेट भी कहते हैं ।

आगमेनोपभोगेन नष्टं भाव्यमतोऽन्यथा ।
पञ्चबन्धो दमस्तस्य राज्ञे तेनाविभाव्यते ॥ ७५ ॥
हृतं प्रनष्टं यो द्रव्यं परहस्तादवाप्नुयात् ।
अनिवेद्य नृपे दण्ड्यः स तु षण्णवतिं पणान् ॥७६॥

जिसकी चीज़ हो, वह आगम (लेख आदि) अथवा भोग से उसको भावित (साबित) करे और जो साबित न कर सके, तो जितने की चीज़ हो उसका पञ्चमांश राजा उससे दण्ड ले ॥ ७५ ॥ जो अपनी खोगई वा चोरी गई चीज़ किसी के हाथ में देखे और विना राजा को निवेदन किये ही ले लेवे, तो उससे छानवे पण राजा दण्ड ले ॥ ७६ ॥

शौल्किकैः स्थानपालैर्वा नष्टापहृतमाहृतम् ।
अर्वाक्संवत्सरात्स्वामी हरेत परतो नृपः ॥ ७७ ॥
पणानेकशफे दद्याच्चतुरः पञ्च मानुषे ।
माहिषोष्ट्रगवां द्वौ द्वौ पादं पादमजाविके ॥ ७८ ॥

शौल्किक (मासूल लेनेवाले) या स्थानपाल (थानेदार) जो किसी की खो गई वा चोरी गई चीज़ पाकर राजा के पास लावे, तो ढिंढोरा पिटा के अपने कोश (भंडार) में रख दे । जो वर्ष के भीतर उसका स्वामी आवे, तो पावे, उसके बाद वह चीज़ राजा की हो जाती है ॥ ७७ ॥ जिसके एक शफ (एक खुरवाले घोड़ा आदि) खो गये हों और फिर पावे, तो राजा को चार पण देवे । मनुष्य के लिये पाँच पण देवे । भैंस, ऊँट और गौ के लिये दो पण देवे । बकरी और भेंड़ के लिये पण का चौथाई देवे ॥ ७८ ॥

इति अस्वामिविक्रयप्रकरण समाप्त ।

दत्ताप्रादानिक-प्रकरण ।

स्वकुटुम्बाविरोधेन देयं दारसुतादृते ।
नान्वयेसति सर्वस्वं यच्चान्यस्मै प्रतिश्रुतम् ॥ ७६ ॥
प्रतिग्रहः प्रकाशः स्यात् स्थावरस्य विशेषतः ।
देयं प्रतिश्रुतं चैव दत्त्वानापहरेत्पुनः ॥ ८० ॥

किसी को दान करना हो, तो जितना देने से अपने कुटुम्ब के पालन पोषण में घाटा न पड़े, उतना देना । परन्तु स्त्री और लड़के का दान न करना । और पुत्र होवे, तो सर्वदा दान न करना । और जो चीज़ किसी और को देने कही हो, वह भी दान न करना ॥ ७६ ॥ लेनेवाला सबके सामने दान ले, उस में भी स्थावर (भूमि आदि) को अवश्य दश मनुष्यों के सामने लेवे, जो जिसे देने को कहा हो वह उसको देना ही चाहिये और जो वस्तु दे चुके, उसको कभी फेर लेना न चाहिये ॥ ८० ॥

इति दत्ताप्रादानिक-प्रकरण समाप्त ।

क्रीतानुशयप्रकरण ।

दशैकपञ्चसप्ताहमासत्र्यहार्द्धमासिकम् ।
बीजायोवाह्यरत्नस्त्रीदोह्यपुंसां परीक्षणम् ॥ ८१ ॥
अग्नौ सुवर्णमक्षीणं रजते द्विपलं शते ।
अष्टौ त्रपुणि सीसे च ताम्रे पञ्चदशायसि ॥ ८२ ॥

जो बीज जौ, गेहूँ, धान आदि के बीज (लोहा) बैल आदि जो बोझा ढो सकते हैं । रत्न (मोती आदि) दोह्य

दुग्ध (भैंस आदि जो दूध देती हैं) और दाम इनके उपरान्त तो क्रम-से १०, १, ५ और ७ दिन महीना ३ दिन और १५ दिन के भीतर ही इन्हें परख के फेर सकता है, इसके उपरान्त नहीं वापस हो सकते ॥ ८१ ॥ सोना आग में तपाने से घटता नहीं चांदी सौ पल में दोपल घटती है पीतल और शीशा सौ में आठपल तांबा पाँच और लोहा दशपल घटता है ॥ ८२ ॥

शते दशपला वृद्धिरौर्णकार्पाससौत्रिके ।
मध्ये पञ्चपला वृद्धिः सूक्ष्मे तु त्रिपला मता ॥८३॥
कार्मिके रोमबन्धे च त्रिंशद्भागः क्षयो मतः ।
न क्षयो न च वृद्धिश्च कौशेये वल्कलेषु च ॥८४॥

ऊन और कपास के मोटे सूत की जो चीज़ वनाने को दे, तो सौपल में दशपल वढ़ता है । मझोले सूत की चीज़ में पाँचपल और महीन सूत की चीज़ में तीन पल वढ़ता है ॥ ८३ ॥ बूटा काढ़ने की चीज़ और रोवाँ बाँधने में तीसवाँ भाग घटता है और कौशेय (रेशमआदि) तथा वल्कल (वृक्ष की छाल) से जो चीज़ वने उसमें न कुछ घटे न वढ़े ॥ ८४ ॥

देशं कालं च भोगं च ज्ञात्वा नष्टे बलाबलम् ।
द्रव्याणां कुशला ब्रूयुर्यत्तद्दाप्यमसंशयम् ॥ ८५ ॥

देश काल और उपभोग समझके उस द्रव्य के जानने-वाले जो कहें सो देना यही निश्चय है क्योंकि सब द्रव्यों का घाटा वाढ़ा लिखा नहीं जा सकता ॥ ८५ ॥

इति क्रीतानुशयप्रकरण समाप्त ।

संविध्यतिक्रमप्रकरण ।

बलाद्दासीकृतश्चौरैर्विक्रीतश्चापि मुच्यते ।
स्वामिप्राणप्रदो भक्तत्यागात्तन्निष्क्रयादपि ॥ ८६ ॥

जो बलात्कार (ज़बरदस्ती) से दास (गुलाम) बनाया गया हो जिसे चोरों ने बेच दिया हो जिसने अपने स्वामी का प्राण बचाया हो और जिसने खाया हुआ स्वामी को चुका दिया हो अथवा जितने पर बिका हो सो दे देवे, को वह दास, दासता (गुलामी) से छूट जाता है ॥ ८६ ॥

प्रव्रज्यावसितो राज्ञो दास आमरणान्तिकम् ।
वर्णानामानुलोम्येन दास्यं न प्रतिलोमतः ॥८७॥
कृतशिल्पोऽपि निवसेत्कृतकालं गुरोर्गृहे ।
अन्तेवासी गुरुप्राप्तभोजनस्तत्फलप्रदः ॥ ८८ ॥

जो प्रव्रज्या (संन्यास) से भ्रष्ट भया हो और प्रायश्चित्त न करे, तो मरणपर्यन्त वह राजा का दास बना रहता है और उत्तम वर्ण के दास अधम वर्णवाले होते हैं । उलटा नहीं होता ॥ ८७ ॥ शिष्य विद्या पढ़ने तक गुरु के घर रहे वह जितने काल तक गुरु के पास रहने का करार कर चुका हो चाहे उससे पहिले ही विद्या पढ़ चुके परन्तु उतने दिनतक रहे और गुरु उसको भोजन देवे और वह अपने शिल्प का फल (जो शिल्प से कमावे सो) गुरु को देवे ॥ ८८ ॥

राजा कृत्वा पुरे स्थानं ब्राह्मणान्न्यस्य तत्र तु ।
त्रैविद्यं वृत्तिमाहूयात्स्वधर्मः पाल्यतामिति ॥ ८९ ॥

निजधर्माविरोधेन यस्तु सामयिको भवेत् ।
सोऽपि यत्नेन संरक्ष्यो धर्मो राजकृतश्च यः ॥९०॥

राजा अपने पुर (दुर्ग=क़िला आदि) में स्थान बनवाके उसमें तीनों वेद पढ़े हुए ब्राह्मणों को कुछ वृत्ति (जीविका) देकर बैठावे और कहे कि अपना धर्म (वर्णाश्रमधर्म) पालन करो ॥ ८९ ॥ राजा की आज्ञा पाकर जो धर्म अपने धर्म (श्रुतिस्मृति) से विरुद्ध न हो और जो उस समय में उचित प्राप्त भया हो और इसी प्रकार का जो राजा ने धर्म कहा हो सो भी यत्न से वे लोग रक्षित करें ॥ ९० ॥

गणद्रव्यं हरेद्यस्तु संविदं लङ्घयेच्च यः ।
सर्वस्वहरणं कृत्वा तं राष्ट्राद्विप्रवासयेत् ॥ ९१ ॥
कर्त्तव्यं वचनैः सर्वैः समूहहितवादिनाम् ।
यस्तत्र विपरीतः स्यात्स दाप्यः प्रथमं दमम् ॥९२॥

जो गणद्रव्य (जिसमें गाँवभर का खेत हो) को चुरावे और जो आपस की या राजा की संवित् (सलाह) उल्लंघन करे उसका सब द्रव्य हरण करके अपने राज्य से निकाल देवे ॥ ९१ ॥ जो सबका हित कहे उसकी बात और दूसरे सब लोग मानें, जो उसके विरुद्ध हो, उसको प्रथम साहस का दण्ड देना ॥ ९२ ॥

समूहकार्ये आयातान् कृतकार्यान् विसर्जयेत् ।
सदानमानसत्कारैः पूजयित्वा महीपतिः ॥ ९३ ॥
समूहकार्यप्रहितो यल्लभेत तदर्पयेत् ।
एकादशगुणं दाप्यो यद्यस्मै नार्पयेत्स्वयम् ॥९४॥

जो सबके कार्य के लिये आये हों उनका काम हो चुकने

पर दान मान और सत्कार करके राजा विदा करे ॥ ९३ ॥ समूह कार्य (सबके काम) के लिये जो भेजा गया उसने जो पाया हो सो सब भेजनेवालों को दे देवे, यदि अपने ही से न सौंपे, तो ग्यारहगुना उससे लेना ॥ ९४ ॥

धर्मज्ञाः शुचयो लुब्धा भवेयुः कार्यचिन्तकाः ।
कर्तव्यं वचनं तेषां समूहहितवादिनाम् ॥ ९५ ॥
श्रेणिनैगमपाखण्डिगणानामप्ययं विधिः ।
भेदं चैषां नृपो रक्षेत्पूर्ववृत्तिं च पालयेत् ॥ ९६ ॥

धर्म जाननेवाले, पवित्र रहनेवाले और लोभी न हों, ऐसे कार्य विचार के बनाने चाहिये और उनकी बात दूसरे लोगों को माननी चाहिए ॥ ९५ ॥ श्रेणी (जो एक ही व्यापार के करनेवाले हैं), नैगम (वेद के माननेवाले), पाखण्डी (वेद न माननेवाले) और गण (जो शास्त्रविद्या आदि एक ही काम से जीवें) इन सबोंकी भी यही विधि है और इनके भेद (धर्म-व्यवस्था) की रक्षा राजा करे और उनकी पूर्ववृत्ति का पालन भी करे ॥ ९६ ॥

इति संविद्व्यतिक्रमप्रकरण समाप्त ।

वेतनादानप्रकरण ।

गृहीतवेतनः कर्म त्यजन्द्विगुणमावहेत् ।
अगृहीते समं दाप्यो भृत्यै रक्ष्य उपस्करः ॥ ९७ ॥
दाप्यस्तु दशमं भागं वाणिज्यपशुशस्यतः ।
अनिश्चित्य भृतिं यस्तु कारयेत्स महीक्षिता ॥९८॥

वेतन (मँजूरी) लेकर जो काम न करे, तो राजा उससे दूना दिलावे और वेतन बिना लिये ही काम करना स्वीकार करके फिर न करे, तो जितना वेतन उस काम का हो उतना उससे लेवे भृत्य-लोग उपस्कर (औजार) की भी रक्षा करें ॥ ६७ ॥ जो मँजूरी ठहराये विना ही कोई वनिज पशु या अनाज का काम करावे, तो उससे जितना लाभ उस व्यापार में हो, उसका दशांश भृत्य को राजा दिलावे ॥ ६८ ॥

देशकालं च योतीयाल्लाभं कुर्याच्च योऽन्यथा।
तत्र स्यात्स्वामिनश्छंदोऽधिकं देयं कृतेऽधिके ॥६६॥
यो यावत्कुरुते कर्म तावत्तस्य तु वेतनम्।
उभयोरप्यसाध्यं चेत्साध्यं कुर्याद्यथाश्रुतम् ॥२००॥

जो भृत्य देश और काल का उल्लंघन करे और लाभ से जो घाटा करे, तो उसके वेतन (मँजूरी) देने में स्वामी की इच्छा, परंतु जो देश काल की चतुराई से अधिक लाभ किया हो, तो उस भृत्य को वेतन अधिक देना ॥ ६६ ॥ (यदि एक ही काम को दो मनुष्य करें, तो) जो जितना काम करे उसे उतना वेतन (मँजूरी) देना दोनों से असाध्य हो (न होसका हो), तो जितनों से होसके उनको कही हुई रीति से वेतन देना ॥ २०० ॥

अराजदैविकं नष्टम्भाण्डं दाप्यस्तु वाहकः।
प्रास्थानविघ्नकृच्चैव प्रदाप्यो द्विगुणां भृतिम् ॥ १ ॥
प्रक्रान्ते सप्तमं भागं चतुर्थं पथि संत्यजन्।
भृतिमर्द्धपथे सर्वां प्रदाप्यस्त्याजकोऽपि च ॥ २ ॥

जो जो भांड (वर्तन) राजा और दैवकृत उत्पात के विना

ही नष्ट भया हो, वह वाहक (ढोनेवाले) से लेना और जो यात्रा में विघ्न (बाधा) डाले उससे दूनी भृति (मँजूरी) लेनी॥१॥ जो यात्रा के आरंभ में भृति छोड़ने लगे उससे सातवाँ भाग (हिस्सा) मँजूरी का लेना, जो थोड़ी दूर चलके छोड़े उससे चौथा भाग और जो आधी राह में छोड़े उससे सारी मँजूरी लेना और छुड़ानेवाले से भी इसी प्रकार दिलाना चाहिए॥ २॥

इति वेतनादानप्रकरण समाप्त।

द्यूतसमाह्वयप्रकरण।

ग्लहे शतिकवृद्धेस्तु सभिकः पञ्चकं शतम्।
गृह्णीयाद्धूर्त्तकितवादितराद्दशकं शतम्॥ ३॥
स सम्यक्पालितो दद्याद्राज्ञे भागं यथाकृतम्।
जितमुद्ग्राहयेज्जेत्रे दद्यात्सत्यं वचः क्षमी॥ ४॥

ग्लह (जुआ के खेल) में जो सौ रुपये जीते उससे सभिक (फड़वाला) पाँच रुपये सैकड़े लेवे और जो सौ से अधिक जीते उससे दशवाँ भाग ले॥ ३॥ और वह (फड़वाला) जो भली-भाँति राजा से रक्षित भया हो, तो जो क़रार राजा को देने का किया हो सो दे देवे। और जीतनेवाले को जीत दिला देवे और जुआ खेलनेवाले को विश्वास के लिये क्षमाशील होके सत्य वचन देवे॥ ४॥

प्राप्ते नृपतिना भागे प्रसिद्धे धूर्त्तमण्डले।
जितं ससभिके स्थाने दापयेदन्यथा न तु॥ ५॥
द्रष्टारो व्यवहाराणां साक्षिणश्च त एव हि।

राज्ञा सचिह्नं निर्वास्याः कूटाक्षोपधिदेविनः ॥ ६ ॥

जब राजा अपना भाग पा चुका हो और धूर्त्तमण्डल (जुआ खेलने की जगह) प्रसिद्ध हो, तो सभिक (फड़वाले) के सामने जिसने जो जीता हो उसको उतना दिला देवे । इससे अन्यथा हो, तो न दिलावे ॥ ५ ॥ ऐसे विवाद के देखनेवाले और साखी भी वे ही (जुआ के खेलनेवाले) होते हैं (नकि जैसा कह आये हैं वेदशास्त्र पढ़े इत्यादि) और जो कपट से खेलनेवाले हैं उन्हें राजा श्वपच आदि से माथे में दगवाकर अपने राज्य से निकलवा दे ॥ ६ ॥

द्यूतमेकमुखं कार्यं तस्करज्ञानकारणात् ।
एष एव विधिर्ज्ञेयः प्राणिद्यूते समाह्वये ॥ ७ ॥

चोरों को पहिचानने के लिये सब जुआरियों का एक प्रधान बनाना चाहिए और जुआ जो प्राणियों (मेढ़ा लड़ाना) आदि से कहाता है उसमें भी यही विधि जाननी चाहिए ॥ ७ ॥

इति द्यूताख्यप्रकरण समाप्त ।

वाक्पारुष्यप्रकरण ।

सत्यासत्यान्यथास्तोत्रैर्न्यूनांगेन्द्रियरोगिणाम् ।
क्षेपं करोति चेद्दण्ड्यः पणानर्द्धत्रयोदशान् ॥ ८ ॥

जो किसी अंग भंगवाले व रोगी को मंत्री झूठी बातों से अथवा व्यंग बोलने (ताना मारने से) चिढ़ावे, तो साढ़े तेरह पण राजा उससे दण्ड लेवे ॥ ८ ॥

अभिगन्तास्मि भगिनीं मातरं वा तवेति ह ।
शपन्तं दापयेद्राजा पञ्चविंशतिकं दमम् ॥ ९ ॥

अर्द्धो मर्मेषु द्विगुणः परस्त्रीषूत्तमेषु च ।
दण्डप्रणयनं कार्यं वर्णजात्युत्तराधरैः ॥ १० ॥

जो मा बहिन को गाली देवे, तो उससे पच्चीस पण राजा दण्ड ले अपने से छोटी जाति को जो गाली दे, तो जितना कहा है ॥ ६ ॥ उसका आधा दण्ड दे और अपने से बड़ी जाति वा पराई स्त्री को गाली दे, तो दूना दण्ड दे । इसीप्रकार वर्ण और जाति की ऊँचाई निचाई देखकर दण्ड की कल्पना करनी चाहिए ॥ १० ॥

वाक्पारुष्यप्रकरण समाप्त ।

दण्डपारुष्यप्रकरण ।

प्रातिलोम्यापवादेषु द्विगुणत्रिगुणा दमाः ।
वर्णानामानुलोम्येन तस्मादर्द्धार्द्धहानितः ॥ ११ ॥
बाहुग्रीवो नेत्रसक्थिविनाशे वाचिके दमः ।
शक्तस्तदर्द्धिकः पादनासाकर्णकरादिषु ॥ १२ ॥

ब्राह्मण आदि वर्णों में जो उलटा छोटा बड़े को गाली देवे, तो दूना तिगुना आदि दण्ड देना और आनुलोम्य से (बड़ी जातिवाला छोटी जातिवाले को) अधिक्षेप (गालिप्रदान) करे, तो आधा-आधा घटा कर दण्ड करना ॥ ११ ॥ जो मुँह से कहे कि तेरी भुजा, गला, आँख और हड्डी तोड़ डालेंगे, तो सौ पण दण्ड लेना और पाँव, नासिका, कान, हाथ आदि तोड़ने को कहे, तो उसका आधा ५० पण लेना चाहिए ॥ १२ ॥

अशक्तस्तु वदन्नेवं दण्डनीयः पणान्दश ।

तथाशक्तः प्रतिभुवं दाप्यः क्षेमायतस्य तु ॥ १३ ॥
पतनीयकृते क्षेपे दण्डो मध्यमसाहसः ।
उपपातकयुक्ते तु दाप्यः प्रथमसाहसम् ॥ १४ ॥

अशक्त (रोगी) जो पूर्वोक्त बातें कहे, तो उससे दश पण दण्ड लेना, और जो रोगी को कोई समर्थ मनुष्य उक्त प्रकार से (भुजा आदि तोड़ने को कहे) तो वह सौपण दण्ड और उसके क्षेम (कुशलता से) रहने के लिये प्रतिभूमि (जामिन भी) देवे ॥ १३ ॥ जो ऐसा आक्षेप करे (तुहमत लगावे) कि जिस से पतित (जातिबाहर) होने का सम्भव हो, तो मध्यम साहस का दण्ड (जो पहले अध्याय में कहि आये हैं) देना और उपपातक सहित आक्षेप करे, तो प्रथम साहस का दण्ड देना ॥१४॥

त्रैविद्यनृपदेवानां क्षेप उत्तमसाहसः ।
मध्यमो जातिपूगानां प्रथमो ग्रामदेशयोः ॥१५॥
असाक्षिकहते चिह्नैर्युक्तिभिश्चागमेन च ।
द्रष्टव्यो व्यवहारस्तु कूटचिह्नकृतोभयात् ॥ १६ ॥

तीनों वेद जाननेवाले को, राजा और देवता को आक्षेप करे, तो उत्तम साहस दण्ड देवे और जो जाति तथा समूह को आक्षेप लगाते हैं उनसे मध्यम साहस तथा जो गाँव और देश को आक्षेप देते हैं उनसे प्रथम साहस दण्ड लेवे ॥ १५ ॥ विना साक्षी दिये ही कोई कहे कि हमें अकेले में किसी ने मारा, तो चिह्न (स्वरूप) युक्ति (कारण प्रयोजन आदि) और आगम (जनप्रवाद) विना साक्षीहार देखे क्योंकि झूठा चिह्न (निशानी) बना लेने की शंका रहती है इसलिये परीक्षा भी करनी चाहिए ॥ १६ ॥

भस्मपंकरजःस्पर्शे दण्डो दशपणः स्मृतः ।
अमेध्यपार्ष्णिनिष्ठ्यूतस्पर्शने द्विगुणः स्मृतः ॥१७॥
समेष्वेवं परस्त्रीषु द्विगुणस्तूत्तमेषु च ।
हीनेष्वर्द्धदमो मोहमदादिभिरदण्डनम् ॥ १८ ॥

जो भस्म (खाक) पंक (कीचड़) और रज (धूलि) दूसरे पर फेंके, तो उससे दशपण और जो अमेध्य (थूक खखार आदि) पार्ष्णि (एँड़ी) और कुल्ली करके किसी को मारे, तो उससे दूना (२० पण) दण्ड लेना ॥ १७ ॥ वह दण्ड अपनी बराबरवालों में जानना और उत्तम जाति को परस्त्री के विषय में दूना दण्ड देना, छोटी जाति के विषय में आधा दण्ड देना । और जो मोह (भूल) अथवा मद से (नशा पीने से बेहोश होकर) आक्षेप किये हो, तो कुछ दण्ड न देना ॥ १८ ॥

विप्रपीडाकरं छेद्यमङ्गमब्राह्मणस्य तु ।
उद्गूर्णे प्रथमो दण्डः संस्पर्शे तु तदर्द्धिकः ॥१९॥
उद्गूर्णे हस्तपादे तु दशविंशतिकौ दमौ ।
परस्परं तु सर्वेषां शस्त्रे मध्यमसाहसः ॥ २० ॥

ब्राह्मण को किसी दूसरी जातिवाला जिस अंग से दुःख दे उसका वह अंग कटवा देना । जो मारने के लिये शस्त्र उठावे, तो प्रथम साहस का दण्ड देना और शस्त्र छूकर छोड़ दे, तो आधा दण्ड देना चाहिए ॥ १९ ॥ अपने समान जातिवाले को मारने के लिये जो हाथ पाँव उठावे, तो सब वर्णों को क्रम से दश और बीस पण दण्ड देना, यदि शस्त्र उठावे तो मध्यम साहस का दण्ड देना ॥ २० ॥

पादकेशांशुककरोल्लुञ्चनेषु पणान् दश ।
पीडाकर्षांशुकावेष्टपादाध्यासे शतं दमः ॥ २१ ॥
शोणितेन विना दुःखं कुर्वन्काष्ठादिभिर्नरः ।
द्वात्रिंशतं पणान्दण्ड्यो द्विगुणं दर्शने सृजः॥२२॥

जो पाँव, केश, वस्त्र और हाथ इनमें से कोई एक पकड़ के खींचे, तो दशपण दण्ड लेना और जो कपड़े से लपेट बहुत दबाकर पाँव से मारे व खींचे, तो सौ पण दण्ड लेना ॥ २१ ॥ जो काठ आदि से ऐसा मारे कि रुधिर न निकले, तो बत्तीस पण उससे दण्ड लेना और जो लोहू देख पड़े तो दूना लेना ॥ २२ ॥

करपाददतो भङ्गे छेदने कर्णनाशयोः ।
मध्यो दण्डो व्रणोद्भेदे मृतकल्पहते तथा ॥ २३ ॥
चेष्टाभोजनवाग्रोधे नेत्रादिप्रतिभेदने ।
कन्धराबाहुसक्थ्नां च भङ्गे मध्यमसाहसः ॥ २४ ॥

जो हाथ, पाँव और दाँत तोड़ दे, नाक व कान काट ले, फोड़ा कुचल दे और अधमरा करने के समान मारे, तो उससे मध्यम साहस का दण्ड लेना ॥ २३ ॥ चलना, खाना और बोलना किसी का रोक दे, आँख व जीभ में चोट दे तथा कंधा, बाहु और मोटी जाँघ तोड़ दे, तो उसको मध्यम साहस का दण्ड देना ॥२४॥

एकघ्नतां बहूनां च यथोक्ताद् द्विगुणो दमः ।
कलहापहृतं देयं दण्डश्च द्विगुणस्ततः ॥ २५ ॥
दुःखमुत्पादयेद्यस्तु ससमुत्थानजं व्ययम् ।
दाप्यो दण्डं च यो यस्मिन् कलहे समुदाहृतः॥२६॥

कई मनुष्य मिल के एक को मारें पीटें, तो जिस अपराध में जितना दण्ड कहा है उसका दूना उन हरएक से लेना और जो चीज़ झगड़े में चुराली हो उसका दूना दण्ड राजा लेवे और वह चीज़ भी स्वामी को दिला देनी चाहिए ॥ २५ ॥ जो मार पीट करके किसी को दुःख पैदा करे, तो उसकी औषध में जो द्रव्य लगे वह और जिस दण्ड योग्य अपराध हो उतना दण्ड भी देवे ॥ २६ ॥

अभिघाते तथा छेदे भेदे कुड्यावपातने ।
पणान्दाप्यः पञ्चदश विंशतिं तद्व्ययं तथा ॥ २७॥
दुःखोत्पादि गृहे द्रव्यं क्षिपन्प्राणहरं तथा ।
षोडशाद्यः पणान्दाप्यो द्वितीयो मध्यमं दमम्॥२८॥

जो कोई किसी की भीत (दीवार) में धक्का से छेद करदे और बीच में गिरादे, तो क्रम से पाँच, दश और बीस पण दण्ड दे । और यदि सब गिरादे, तो पैंतीस पण दण्ड और उसके बनाने में जो लगे सो देवे ॥ २७ ॥ जो किसी के घर में दुःख पैदा करनेवाली या प्राण लेनेवाली चीज़ कोई फेंके, तो उससे क्रम से, पहले में सोलह पण और दूसरे (जीव लेनेवाली) में मध्यम साहस का दण्ड देना चाहिए ॥ २८ ॥

दुःखे च शोणितोत्पादे शाखाङ्गच्छेदने तथा ।
दण्डः क्षुद्रपशूनां तु द्विपणप्रभृतिक्रमात् ॥ २९ ॥
लिङ्गस्य छेदने मृत्यौ मध्यमामूल्यमेव च ।
महापशूनमितेषु स्थानेषु द्विगुणो दमः ॥ ३० ॥

छोटे-छोटे पशुओं (बकरी हिरण आदि) को जो ताड़न

करे, ऐसा मारे कि रुधिर निकल आवे, निर्जीव अंग (सींग आदि) काटे अथवा सजीव अंग तोड़दे, तो क्रम से दो, चार, छः और आठ पण दण्ड देवे ॥ २९ ॥ और जो उनके लिङ्ग का छेदन करे व मार डाले, तो स्वामी को उनका मोल दे और राजा को मध्यम साहस का दण्ड दे परन्तु जो महापशु (घोड़ा आदि) के पूर्वोक्त अंगों का भंग करे तो दूना दण्ड देवे ॥ ३० ॥

प्ररोहिशाखिनां शाखास्कन्धसर्वविदारणे ।
उपजीव्यद्रुमाणां च विंशतेर्द्विगुणो दमः ॥ ३१ ॥
चैत्यश्मशानसीमासु पुण्यस्थाने सुरालये ।
जातद्रुमाणां द्विगुणो दमो वृक्षेषु विश्रुते ॥ ३२ ॥

जिन वृक्षों की कलम लग सक्ती है ऐसे वृक्षों को वा जिन वृक्षों के द्वारा मनुष्य की जीविका चल सके उनकी शाखा (डाली) स्कन्ध (पेड़) अथवा मूल (जड़) काटे, तो क्रम से बीस चालीस और अस्सी पण दण्ड देवे ॥ ३१ ॥ जो वृक्ष चैत्य श्मशान (मशान व मरघट) सीमा (सरहद) पुण्यस्थान (तीर्थस्थल) और देवता के स्थान में लगा हो अथवा प्रसिद्ध वृक्ष हो उसकी शाखा आदि काटे तो दूना दण्ड देवे ॥ ३२ ॥

गुल्मगुच्छक्षुपलताप्रतानौषधिवीरुधाम् ।
पूर्वस्मृतादर्द्धदण्डः स्थानेषूक्तेषु कर्त्तने ॥ ३३ ॥

गुल्म (जो लता घनी हो लम्बी न हो जैसे मालती) गुच्छ (जो सीधी न हो) जैसे (करण्ड) क्षुप (छोटी टहनीवाली) जैसे (कनेल) और लता (दाख आदि) इनकी शाखा आदि पूर्वोक्त स्थानों में काटे तो आधा दण्ड जानना ॥ ३३ ॥

इति दण्डपारुष्यप्रकरण समाप्त ।

साहसप्रकरण ।

सामान्यद्रव्यप्रसभहरणात्साहसं स्मृतम् ।
तन्मूल्याद् द्विगणो दण्डो निह्नवे तु चतुर्गुणः ॥२४॥

पराये की चीज़ वलात्कार (ज़ोरावरी) से लेना इसको साहस कहते हैं । जितने की चीज़ लिये हो उससे दूना दण्ड देवे । और यदि निह्नव (नाक़बूल) करे तो चौगुना दण्ड दे ॥ ३४ ॥

यः साहसं कारयति स दाप्यो द्विगुणं दमम् ।
यश्चैवमुक्त्वाहं दाता कारयेत्स चतुर्गुणम् ॥ ३५ ॥
अर्घ्याक्रोशातिक्रमकृद्भ्रातृभार्याप्रहारदः ।
संदिष्टस्याप्रदाता च समुद्रगृहभेदकृत् ॥ ३६ ॥

साहस जो दूसरे से कराता है उसको दूना दण्ड देना और जो यह कहे कि जितना धन लगेगा हम देंगे तुम करो, उसको चौगुना दण्ड लगाना ॥ ३५ ॥ जो पूज्य का पूजन न करे वा आज्ञा न माने, भाई की स्त्री को मारे, सन्देशा न कहे, ताला तोड़े ॥ ३६ ॥

सामन्तकुलिकादीनामपकारस्य कारकः ।
पञ्चाशत्पणिकोदण्ड एषामिति विनिश्चयः ॥३७॥
स्वच्छन्दविधवागामी विक्रुष्टेनाभिधावकः ।
अकारणे च विक्रोष्टा चण्डालश्चोत्तमान्स्पृशेत् ३८॥

पड़ोसी और कुलिक (अपने कुल में उत्पन्न आदि) का अपकार करनेवाला हो इन सबोंको पचास २ पण दण्ड देना, यह निश्चय है ॥ ३७ ॥ जो जान बूझ के विधवा स्त्री से

गमन करे कोई दुःखी होकर पुकारे और न दौड़े, विना प्रयोजन जो पुकारे और चाण्डाल होकर ऊँची जाति को छूले ॥ ३८ ॥

शूद्रप्रव्रजितानां च दैवे पित्र्ये च भोजकः ।
अयुक्तं शपथं कुर्वन्नयोग्यो योग्यकर्मकृत् ॥ ३९ ॥
वृषक्षुद्रपशूनां च पुंस्त्वस्य प्रतिघातकृत् ।
साधारणस्यापलापी दासीगर्भविनाशकृत् ॥ ४० ॥

शूद्र और प्रव्रजित (संन्यासी आदि) को जो दैव और पितृकर्म में खिलावे, अयुक्त (करने योग्य न हो) शपथ करे, जिस काम के योग्य न हो उसे भी करे ॥ ३९ ॥ बैल और छोटे पशुओं के पुंस्त्व का विनाश करनेवाला, साधारण (जिसमें बहुतेरों का स्वत्व हो) वस्तु को छिपानेवाला, दासी का गर्भ गिरानेवाला ॥ ४० ॥

पितापुत्रस्वसृभ्रातृदम्पत्याचार्यशिष्यकाः ।
एषामपतितान्योन्यत्यागी च शतदण्डभाक् ॥ ४१ ॥

इन सबोंको और पिता, पुत्र, पति, भाई, स्त्री, पुरुष, आचार्य और शिष्य इनको पतित विना हुए जो छोड़दे, उनको सौ रुपये दण्ड लगाना ॥ ४१ ॥

इति साहसप्रकरण समाप्त ।

निर्णेजकादि-दण्डप्रकरण ।

वसानस्त्रीन्पणान् दण्ड्यो नेजकस्तु परांशुकम् ।
विक्रयावक्रयाधानयाचितेषु पणान्दश ॥ ४२ ॥

धोबी पराया वस्त्र पहने, तो तीनपण दण्ड लेना । और जो बेंच ले या अवक्रय (भाड़ेपर) कर दे, मँगनी दे अथवा बन्धक रख दे, तो दश पण दण्ड देवे ॥ ४२ ॥

पितापुत्रविरोधे तु साक्षिणां त्रिपणो दमः ।
अन्तरे च तयोर्यः स्यात्तस्याप्यष्टगुणो दमः ॥ ४३ ॥
तुलाशासनमानानां कूटकृन्नाणकस्य च ।
एभिश्च व्यवहर्त्ता यः स दाप्यो दममुत्तमम् ॥ ४४ ॥

पिता और पुत्र के विवाद में जो साखी बने उससे तीन पण दण्ड लेवे और जो उनका बिचवई हो उसको चौवीस पण दण्ड देना ॥ ४३ ॥ जो तुला (तराजू) शासन (राजा की आज्ञा) मान (तोला) और नाणक (मुद्राचिह्नित द्रव्य) को घट बढ़ बनावे और जो उनको काम में लावे उनको उत्तम साहस का दण्ड देना ॥ ४४ ॥

अकूटं कूटकं ब्रूते कूटं यश्चाप्यकूटकम् ।
सनाणकपरीक्षी तु दाप्य उत्तमसाहसम् ॥ ४५ ॥
भिषङ्मिथ्याचरन्दण्ड्यास्तिर्यक्षु प्रथमे दमम् ।
मानुषे मध्यमं राजपुरुषेषूत्तमं दमम् ॥ ४६ ॥

जो नाणक की परीक्षा करनेवाला निकम्मे को अच्छा और भलों को निकम्मा कहे, तो उसे भी उत्तम साहस का दण्ड देना ॥ ४५ ॥ जो वैद्य पशु पक्षियों को झूठी औषध वा उलटी औषध देवे, तो प्रथम साहस दण्ड देना । मनुष्य को दे, तो मध्यम साहस का दण्ड देना । और राजा के मनुष्य को दे, तो उत्तम साहस का दण्ड देना ॥ ४६ ॥

अबध्यं यश्च बध्नाति बद्धं यश्च प्रमुञ्चति ।
अप्राप्तव्यवहारं च स दाप्यो दममुत्तमम् ॥ ४७ ॥
मानेन तुलया वापि योंशमष्टमकं हरेत् ।
दण्डं स दाप्यो द्विशतं वृद्धौ हानौ च कल्पितम् ॥४८॥

जो बाँधने के अयोग्य को राजा की आज्ञा विना बाँधे, बाँधने के योग्य को छोड़दे, और बालक को या पराधीन को बाँधे, तो उससे उत्तम साहस का दण्ड दिलाना ॥ ४७ ॥ नापने वा तोलने में जो आठवाँ भाग चीज़ का चुरा ले, तो उससे दो सौ पण दण्ड लेना । और इससे कम या अधिक चुरावे, तो उसी रीति से कल्पना कर घटा बढ़ा लेना ॥ ४८ ॥

भेषजस्नेहलवणगन्धधान्यगुडादिषु ।
पण्येषु प्रक्षिपन् हीनं पणान्दाप्यस्तु षोडश ॥४९॥
मृच्चर्ममणिसूत्रायः काष्ठवल्कलवाससाम् ।
अजातौ जातिकरणे विक्रेयाष्टगुणो दमः ॥५०॥

औषध, चिकनी, लवण, सुगन्ध, धान्य और गुड़ आदि में जो कुछ निकम्मी चीज़ मिला दे, तो सोलह पण दण्ड लेना चाहिये ॥ ४९ ॥ मिट्टी, चाम, मणि, सूत्र, लोहा, काठ, वृक्ष का छिलका और वस्त्र इनको छल से दूसरी वस्तु बना के बेंचे, तो जितने पर बेंचे हो, उससे अठ गुना दण्ड लेना ॥ ५० ॥

समुद्गपरिवर्त्तं च सारभाण्डं च कृत्रिमम् ।
आधानं विक्रयं वापि नयतो दण्डकल्पना ॥५१॥
भिन्ने पणे तु पञ्चाशत्पणे तु शतमुच्यते ।

द्विपणो द्विशतो दण्डो मूल्यवृद्धौ च वृद्धिमान् ॥५२॥

समुद्र (जो चीज़ ढकी हो जैसे पेटारी आदि) उसको जो अपने हस्तलाघव (हथचलाकी=हथफेर) से अदल-बदल कर दे, और कस्तूरी आदि जो कोई बनाकर रक्खे वा बेंचे, तो उसको आगे लिखा हुआ दण्ड देना चाहिए ॥ ५१ ॥ जो पण से कम तौलवाली बनावट की चीज़ को बन्धक रक्खे, या बेंचे, तो पचास पण दण्ड देवे । पण भर की चीज़ बन्धक धरे व बेंचे, तो सौ सौ पणभर में दो सौ पण दण्ड देना । इसी रीति से जितना मोल बढ़ता जाय, उतना ही दण्ड बढ़ाते जाना ॥ ५२ ॥

सम्भूय कुर्वतामर्थं सबाधं कारुशिल्पिनाम् ।
अर्घस्य ह्रासं वृद्धिं वा जानतो दम उत्तमः ॥५३॥
सम्भूय वणिजां पण्यमनर्घेणोपरुन्धताम् ।
विक्रीणतां वा विहितो दण्ड उत्तमसाहसः ॥ ५४ ॥

यदि वणिज (बनियाँ) लोग जो राजा ने भाव ठहरा दिया है, उसकी घटती बढ़ती जानते भी हों और आपस में गुट्टबाँध अपने लाभ के लिये दूसरा एक ऐसा भाव ठहरावें कि जिससे कारु (रजक आदि) और शिल्पि (चित्रकार आदि) को पीड़ा हो, तो उनको उत्तम साहस (१००० पण) का दण्ड देना चाहिए ॥ ५३ ॥ जो बनियें आपस में एका करके अच्छी चीज़ को थोड़े मोल पर विकने के लिये रोंक रक्खें अथवा छोटी चीज़ को बड़े मोल पर बेचें, तो भी उत्तम साहस का दण्ड करना चाहिए ॥ ५४ ॥

राजनिस्थाप्यते योऽर्घः प्रत्यहं तेन विक्रयः ।

क्रयो वा निस्रवस्तस्माद्वणिजां लाभकृत्स्मृतः॥५५॥
स्वदेशपण्ये तु शतं वणिग्गृह्णीत पञ्चकम् ।
दशकं पारदेश्ये तु यः सद्यः क्रयविक्रयी ॥ ५६ ॥

जो राजा भाव ठहरा दे, उसी से प्रतिदिन क्रय-विक्रय (खरीदना और बेंचना) करें । उससे जो कुछ शेष बच जाय वही बनियाँ लोग अपना लाभ समझें न कि अपने मनका भाव बनालें ॥ ५५ ॥ अपने देश की चीज़ जो बनियाँ झटपट बेंचें तो पाँच रुपये सैकड़े लाभ (फ़ायदा) लें । और दूर-देश की चीज़ बेचें तो दश रुपये सैकड़ा लेवें ॥ ५६ ॥

पण्यस्योपरि संस्थाप्य व्ययं पण्यसमुद्भवम् ।
अर्घोऽनुग्रहकृत्कार्यः केतुर्विक्रेतुरेव च ॥ ५७ ॥

जो पण्य (सौदा) का मोल और व्यय (खर्च) लगा हो दोनों गिन लें उससे कुछ अधिक लाभ बेचने और लेनेवाले को हो ऐसा बिक्री का भाव राजा ठहरावे ॥ ५७ ॥

इति निर्णेजकादि-दण्डप्रकरण समाप्त ।

विक्रीयासम्प्रदानप्रकरण ।

गृहीतमूल्यं यः पण्यं केतुर्नैव प्रयच्छति ।
सोदयं तस्य दाप्योऽसौ दिग्लाभं वा दिगागते॥५८॥

जो मोल (दाम) लेकर पण्य (सौदा) क्रेता (खरीदने-वाले) को नहीं देता, तो उससे राजा सोदय (ब्याज समेत) दिला देवे । और जो मोल-लेनेवाला दूर-देश से आया हो, तो

जितना उसको अपने देश में लेजाकर वेचने से लाभ होता, वह भी उसे राजा दिला देवे ॥ ५८ ॥

विक्रीतमपि विक्रेयं पूर्वक्रेतर्यगृह्णति ।
हानिश्चेत्क्रेतृदोषेण क्रेतुरेव हि सा भवेत् ॥ ५६ ॥
राजदैवोपघातेन पण्ये दोषमुपागते ।
हानिर्विक्रेतुरेवासौ याचितस्याप्रयच्छतः ॥ ६० ॥

यदि पूर्वक्रेता (पहले मोल लेनेवाला) पण्य (सौदा) न ले, तो दूसरे के हाथ वेच देना और जो क्रेता (खरीदनेवाले) के योग से उस पण्य (सौदा) में हानि हो, तो वह खरीदनेवाले ही की होती है ॥ ५६ ॥ मोल लेनेवाला माँगता हो और वेचनेवाला न देता हो इसी अन्तर में जो वह चीज़ कुछ विगड़ जावे तो वेचनेवाले की हानि समझना ॥ ६० ॥

अन्यहस्ते च विक्रीते दुष्टं वा दुष्टवद्यदि ।
विक्रीणीते दमस्तत्र मूल्यात्तु द्विगुणो भवेत् ॥ ६१ ॥
क्षयं वृद्धिं च वणिजा पण्यानामविजानता ।
क्रीत्वानानुशयः कार्यः कुर्वन् षड्भागदण्डभाक् ६२ ॥

जो एक के हाथ विकी चीज़ को दूसरे के हाथ वेच दे, अथवा निकम्मी चीज को अच्छी वना के वेचे, तो मोल से दूना दण्ड उसको राजा लगावे ॥ ६१ ॥ जो वणिक पण्य (सौदा) की हानि लाभ न जाने, तो मोल लेकर उसमें सन्देह करके फेरा फेरी न करे । यदि करे तो छठा भाग उसमें दण्ड लेना चाहिए ॥ ६२ ॥

इति विक्रीयासम्प्रदानप्रकरण समाप्त ।

सम्भूयसमुत्थानप्रकरण ।

सामवायेन वणिजां लाभार्थं कर्म कुर्वताम् ।
लाभालाभौ यथाद्रव्यं यथा वा संविदाकृतौ ॥ ६३॥
प्रतिषिद्धमनादिष्टं प्रमादाद्यच्च नाशितम् ।
स तद्दद्याद्विप्लवाच्च रक्षिताद्दशमांशभाक् ॥ ६४ ॥

समवाय से (इकट्ठे होकर) जो बनियाँ अपने लाभ के लिये कोई काम करें, तो अपने २ द्रव्य के अनुसार लाभालाभ (घटी मुनाफ़ा) उठावें, अथवा जैसी संविद् (सलाह) करली हो वैसा उठावें ॥ ६३ ॥ उनमें से यदि कोई जो बात वर्जित की गई थी उसके करने से व औरों की सम्पत्ति विना ही किसी बात के करने से कोई चीज़ नष्ट कर दे, तो वह उसको भर दे और जो कोई दैवी से बचावे, तो उससे दशवाँ भाग पावे ॥ ६४ ॥

अर्घप्रक्षेपणाद्विंशं भागं शुल्कं नृपो हरेत् ।
व्यासिद्धं राजयोग्यं च विक्रीतं राजगामि तत्॥ ६५॥
मिथ्यावदन्परीमाणं शुल्कस्थानादपासरन् ।
दाप्यस्त्वष्टगुणं यश्च सव्याजक्रयविक्रयी ॥ ६६ ॥

भाव ठहराने के कारण से वीसवाँ भाग राजा शुल्क (महसूल) लेवे और जो चीज़ बेचने की मना की गई हो अथवा राजा के योग्य हो, तो वह दूसरे के पास बिकने पर भी राजा लेलेवे ॥ ६५ ॥ जो शुल्क (महसूल) देने के भय से तोल कमती बतावे शुल्कस्थान (महसूल की जगह) से भाग जावे और जिसके लिये दो मनुष्यों का विवाद (झगड़ा) होरहा हो ऐसी

चीज़ को मोल लेकर बेचे, तो इन सबोंसे अठगुना दण्ड लेना चाहिए ॥ ६६ ॥

तरिकः स्थलजं शुल्कं गृह्णन् दाप्यः पलान्दश ।
ब्राह्मणप्रातिवेश्यानामेतदेवानिमन्त्रणे ॥ ६७ ॥
देशान्तरगते प्रेते द्रव्यं दायाद्बान्धवाः ।
ज्ञातयो व्याहरेयुस्तदागतास्तैर्विना नृपः ॥ ६८ ॥

जो नौका का शुल्क (महसूल) लेनेवाला है, वह जो स्थल (सड़क) का शुल्क लेवे तो दश पण दंड दे । और पड़ोसी ब्राह्मण को जो श्राद्ध आदि में निमंत्रण (नेवता) न दे, तो भी यही दंड देवे ॥ ६७ ॥ यदि इकट्ठा व्यापार करनेवालों में से कोई दूर-देश जाकर मर जावे, तो उसके दायाद (पुत्र आदि) बान्धव (ममेरा भाई आदि) अथवा जाति के लोग आकर उसका अंश लेवें और इनमें से कोई न आवे तो राजा लेवे ॥ ६८ ॥

जिह्मं त्यजेयुर्निर्लाभमशक्तोऽन्येन कारयेत् ।
अनेन विधिराख्यात ऋत्विकार्षककर्मिणाम् ॥ ६९ ॥

इन इकट्ठा व्यापार करनेवालों में से जो जिह्म हो (ठगहारी करे) उसको कुछ लाभ न देकर अपनी संगति से निकाल देवे और जो अशक्त हो वह अपना काम दूसरे से करावे । इसीसे ऋत्विज और खेती करनेवालों के काम करने की भी रीति समझ लेना चाहिए ॥ ६९ ॥

इति सम्भूयसमुत्थानप्रकरण समाप्त ।

स्तेयप्रकरण ।

ग्राहकैर्गृह्यते चोरो लोप्त्रेणाथ पदेन वा ।
पूर्वकर्मापराधी च तथा चाशुद्धवासकः ॥ ७० ॥

ग्राहक (राजपुरुष) लोग जिसको सब मनुष्य चोर कहैं, जिसके निकट चोराई हुई चीज़ का कुछ चिह्न मिले, जिसके पाँव की साथ चोरी के स्थल (जगह) के पादचिह्न से मिल जाय जिसने पहले भी चोरी किया हो, और जो अशुद्धवास (जिसके रहने की जगह न मालूम हो) इन सबोंको चोरी में पकड़े ॥ ७० ॥

अन्येऽपि शङ्कया ग्राह्या जातिनामादिनिह्नवैः ।
द्यूतस्त्रीपानशक्ताश्च शुष्कभिन्नमुखस्वराः ॥ ७१ ॥
परद्रव्यगृहाणां च पृच्छका गूढचारिणः ।
निराया व्ययवन्तश्च विनष्टद्रव्यविक्रयाः ॥ ७२ ॥

और भी जो अपनी जाति और नाम आदि को छिपाते हैं, जो जुआ का खेल, परस्त्रीगमन और मद्यपान में आसक्त हैं, जिनका तुम कौन हो ? ऐसा पूछने से मुँह सूख जावे, स्वर (आवाज़) बदल जावे ॥ ७१ ॥ और जो पराये का धन और घर पूछते फिरते हैं, जो गुप्तवेष बनाकर रहते हैं, जिनको आय (आमद) न हो परन्तु व्यय (ख़र्च) बहुत हो, और जो टूटी फूटी चीज़ के बेचनेवाले हों इन सबोंको शंका (शुबहा) से पकड़ना चाहिए ॥ ७२ ॥

गृहीतः शङ्कया चौर्यो नात्मानं चेद्विशोधयेत् ।
दापयित्वागतं द्रव्यं चौरदण्डेन दण्डयेत् ॥ ७३ ॥

चौरं प्रदाप्यापहृतं घातयेद्विविधैर्वधैः ।
सचिह्नं ब्राह्मणं कृत्वा स्वराष्ट्राद्विप्रवासयेत् ॥ ७४ ॥

जो शंका से, चोरी से पकड़ा गया और अपनी शुद्धता (सफ़ाई) न करे, तो उससे हृत (चोरी गई हुई) चीज़ दिलाना और उसे चोर का-सा दण्ड भी देना ॥ ७३ ॥ चोरी से चोरी गई चीज़ दिलाकर अनेक प्रकार के वध से (मारने से) उसे दण्ड देना । परन्तु ब्राह्मण हो, तो उसके मस्तक में कुत्ते के पंजे का दाग देकर अपने राज्य से निकाल देवे ॥ ७४ ॥

घातितेऽपहृते दोषो ग्रामभर्त्तुरनिर्गते ।
विवीतभर्त्तुस्तु पथि चौरोद्धर्त्तुरवीतके ॥ ७५ ॥
स्वसीम्नि दद्याद् ग्रामस्तु पदं वा यत्र गच्छति ।
पञ्चग्रामी बहिः क्रोशाद्दशग्राम्यथवा पुनः ॥ ७६ ॥

यदि गाँव के भीतर चोरी और घात (खून) हो, और चोर व मारनेवाले का पता बाहर निकल जाने का न मिले, तो ग्रामपाल का दोष जानना (उसी से वह चीज़ व दण्ड लेना) विवीत (बाड़ा) व सराय में चोरी आदि हो, तो उसके रक्षक से लेना और राह में हो, तो मार्गपाल से लेना ॥ ७५ ॥ जिस गाँव की सीमा के भीतर चोरी आदि हो, उस गाँव से वह चीज़ लेना अथवा जहाँ चोर का पाँव गया हो उस स्थल के स्वामी से लेवे (यदि कई ग्राम के मध्य) कोश, दो कोश के पटपड़ में हुई हो, तो उसके पासवाले पाँच व दश गाँवों से लेना चाहिए ॥ ७६ ॥

वन्दिग्राहांस्तथा वाजिकुञ्जराणां च हारिणः ।
प्रसह्य घातिनश्चैव शूलानारोपयेन्नरान् ॥ ७७ ॥

उत्क्षेपकग्रन्थिभेदौ करसंदंशहीनकौ।
कार्यौ द्वितीयापराधे करपादैकहीनकौ॥ ७८॥

जो वन्दिग्राह (क़ैदी छुड़ा लेजाता) हो, घोड़ा व हाथी चोराये और प्रसह्यघातक (ज़बरदस्ती किसी को मारते) हों, तो इन्हें शूल (शूली) पर चढ़ावे॥ ७७॥ उत्क्षेपक (उचक्का) और ग्रंथिभेद (गँठिकटा) इन दोनों का पहिले अपराध में तो क्रम से हाथ और संदंश (चुटकी) कटवा देना। और दूसरे अपराध में, एक-एक हाथ और पाँव कटवा देना॥ ७८॥

क्षुद्रमध्यमहाद्रव्यहरणे सारतो दमः।
देशकालवयः शक्तीः सञ्चिन्त्यं दण्डकर्मणि॥ ७९॥
भक्तावकाशाग्न्युदकमन्त्रोपकरणव्ययान्।
दत्त्वा चौरस्य वा हन्तुर्जानतो दम उत्तमः॥ ८०॥

क्षुद्र (छोटी) मध्यम और बड़ी चीज़ के चुराने में उस द्रव्य के मोल के अनुसार दण्ड देना। और देश, काल, वय (अवस्था) और देखकर भी दण्ड कल्पना करना चाहिए॥ ७९॥ भोजन, रहने की जगह, आग, पानी, मन्त्र (सलाह), उपकरण (औज़ार) और व्यय (खर्च) जो चोर अथवा मारनेवाले को देवे, अथवा उनको जानता हो, तो उन्हें उत्तम दण्ड देना॥८०॥

शस्त्रावपाते गर्भस्य पातने चोत्तमो दमः।
उत्तमो वाधमो वापि पुरुषस्त्रीप्रमापणे॥ ८१॥
विप्रदुष्टां स्त्रियञ्चैव पुरुषघ्नीमगर्भिणीम्।
सेतुभेदकरीं चाप्सु शिलां बद्ध्वा प्रवेशयेत्॥ ८२॥

किसी पर शस्त्र चलावे और गर्भपात करे (किसी का गर्भ गिरावे) तो उत्तम दण्ड पावे ! और जो पुरुष वा स्त्री को मार-डाले तो (जातिकाल आदि विचार के) उत्तम व अधम दंड देना ॥ ८१ ॥ जो स्त्री अतिदुष्टा, पुरुष को मारनेवाली और सेतु (पुलबाँध) तोड़नेवाली हो और गर्भवती न हो, तो इन सबोंके गले में शिला बाँध जल में डुबो देना चाहिए ॥ ८२ ॥

विषाग्निदां पतिगुरुनिजापत्यप्रमापणीम् ।
विकर्णकरनासौष्ठीं कृत्वा गोभिः प्रमापयेत् ॥८३॥
अविज्ञातहतस्याशु कलहं सुतबान्धवाः ।
प्रष्टव्या योषितश्चास्य परपुंसि रताः पृथक् ॥८४॥

विष देनेवाली, आग लगानेवाली, गुरु, पति और अपने अपत्य को मारनेवाली स्त्री को, नाक, कान, हाथ और ओठ कटवा कर (गर्भिणी न हो तो) बैलों से मरवा देना ॥ ८३ ॥ जिसका मारनेवाला जान पड़े तो उसके पुत्र, बन्धु और स्त्री से तथा व्यभिचारिणी स्त्रियों से झटपट पूछकर (कि इससे किस के साथ बिगाड़ था) पता लगावे ॥ ८४ ॥

स्त्रीद्रव्यवृत्तिकामो वा केन वायं गतः सह ।
मृत्युदेशसमासन्नं पृच्छेद्वापि जनं शनैः ॥ ८५॥
क्षेत्रवेश्मवनग्रामविवीतखलदाहकाः ।
राजपत्न्यभिगामी च दग्धव्यास्तु कटाग्निना॥८६॥

इन लोगों से और जो मरणप्रदेश के आस-पास रहनेवाले हों उनसे विश्वास देकर सहज में इस प्रकार पूछे कि यह जो मारागया इसकी क्या अभिलाषा थी, स्त्री को चाहता था या

द्रव्य की इच्छा रखता था । कौन-सी जीविका चाहता था । और किसके संग गया था ॥ ८५ ॥ जो खेत, घर, वन, गाँव, विवीत (वाड़ा) और खलिहान में आग लगावें और जो रानी के संग व्यभिचार करें इन सबों को कट (चटाई) में लपेटवाकर जला देना ॥ ८६ ॥

इति स्तेयप्रकरण समाप्त ।

स्त्रीसंग्रहणप्रकरण ।

पुमान्सङ्ग्रहणे ग्राह्यः केशाकेशि परस्त्रियाः ।
सद्यो वा कामजैश्चिह्नैः प्रतिपत्तौ द्वयोस्तथा ॥८७॥
नीवीस्तनप्रावरणसक्थिकेशावमर्शनम् ।
अदेशकालसम्भाषं सहैकासनमेव च ॥ ८८ ॥

यदि दूसरे की स्त्री के केश खींचकर हँसे, बोले अथवा नखक्षत * आदि चिह्न देख पड़ें या दोनों की प्रीति देख पड़े, तो पुरुष को व्यभिचार में पकड़ना चाहिए ॥ ८७ ॥ जो कोई पराये की स्त्री की नीवी (फुफनी), अंचल, जंघा और केश अभिलाषा समेत छुवे और अकेले में व अँधेरे में उससे बातचीत करे अथवा एक ही आसन पर बैठ रहा हो, तो भी व्यभिचार-दोष में पुरुष को पकड़ना ॥ ८८ ॥

स्त्रीनिषेधे शतन्दद्याद् द्विशतन्तु दमं पुमान् ।
प्रतिषेधे तयोर्दण्डो यथा सङ्ग्रहणे तथा ॥ ८९ ॥
स्वजातावुत्तमो दण्ड आनुलोम्येन मध्यमः ।
प्रातिलोम्ये वधः पुंसो नार्याः कर्णादिकर्त्तनम् ॥९०॥

---

* नहँ के दाग ।

जिस स्त्री के पिता भाई आदि उसको जिस पुरुष से बोलना मना कर दिये हों और वह बोलती देख पड़े, तो सौपण दण्ड देवे । पुरुष को किसी स्त्री के साथ बोलना मना किया हो और बोलता देख पड़े, तो दोसौ पण दण्ड लेना । दोनों को वर्जित किया हो, तो व्यभिचार से जो दण्ड होता है वह लेना ॥ ८९ ॥ अपनी जाति की स्त्री में व्यभिचार करे, तो उत्तम साहस का दंड देना, अपने से नीच जातियों की स्त्री के साथ करने में मध्यम, और अपने से बड़ी जाति की स्त्री से करे, तो पुरुष वधदंड पावे (मारा जाय) और जो स्त्री नीच पुरुष से व्यभिचार करे तो उसके अपराध के अनुसार नाक, कान आदि कटवा देना ॥ ९० ॥

अलङ्कृतां हरेत्कन्यामुत्तमं ह्यन्यथाधमम् ।
दण्डं दद्यात्सवर्णासु प्रातिलोम्ये वधः स्मृतः ॥९१॥
सकामास्वनुलोमासु न दोषस्त्वन्यथाधमः ।
दूषणे तु करच्छेद उत्तमायां वधस्तथा ॥ ९२ ॥

जिसका विवाह होनेवाला हो और आभूषण पहने हो ऐसी अपनी जाति की कन्या को हर लेजाय तो उत्तम दंड पावे और विवाह होनेवाला न हो तो प्रथम साहस दंड देना । यदि उत्तम जाति की कन्या का हरण करे तो मारा जावे ॥ ९१ ॥ यदि वह कन्या सकाम (चाहती) हो और अपने से नीच जाति की हो तो दोष नहीं, और अनचाहती को हरे तो प्रथम साहस का दंड देवे । जो कन्या को (नख वा अंगुली प्रक्षेप आदि से) दूषित करे तो उसका हाथ कटवाना जो उत्तम जाति की कन्या को ऐसा करे तो उसे मरवा डालना ॥ ९२ ॥

शतं स्त्रीदूषणे दद्याद् द्वे तु मिथ्याभिशंसने ।
पशून्गच्छन्शतं दाप्यो हीनां स्त्रीं गां च मध्यमम् ९३
अवरुद्धासु दासीषु भुजिष्यासु तथैव च ।
गम्यास्वपि पुमान्दाप्यः पञ्चाशत्पणिकं दमम् ॥९४॥

जो किसी की कन्या सच्चा भी दोष प्रकाश करे, तो उसमें सौ पण दण्ड लेना और झूठ मूठ दोष लगावे, तो दोसौ पण दण्ड लेना, पशु में गमन करे उससे सौ पण दंड लेना और नीच स्त्री तथा गौ में गमन करे, तो मध्यम साहस दंड करना ॥ ९३ ॥ जो पुरुष पराये की अवरुद्धा (जिसको घर से बाहर निकलना मना है) और भुजिष्या (जिसे किसी को सौंप दिया हो) दासियों में गमन करे, तो उससे पचास पण दंड लेवे यद्यपि वे गमन के योग्य हैं, परन्तु दूसरे की हैं ॥ ९४ ॥

प्रसह्य दास्यभिगमे दण्डो दशपणः स्मृतः ।
बहूनां यद्यकामासौ चतुर्विंशतिकः पृथक् ॥ ९५ ॥
गृहीतवेतनां वेश्यां नेच्छन्तीं द्विगुणं वहेत् ।
अगृहीते समं दाप्यः पुमानप्येवमेव च ॥ ९६ ॥

इनके सिवा और दासियों में यदि बलात्कार से गमन करे, तो दश पण दंड दे और जो कई पुरुष एक ही के पास उसकी इच्छा के विना ही गमन करें तो, उन सबको चौबीस २ पण दंड करे ॥९५॥ जो वेश्या दाम लेके भोग की इच्छा न करे, और शरीर से रोगी न हो तो दूना दंड दे । विना मोल लिये ही स्वीकार किये हो और फिर न चाहे तो बराबर दंड दे । यही दंड पुरुष के लिये भी जानना चाहिए ॥ ९६ ॥

अयोनौ गच्छतो योषां पुरुषं वापि मेहतः ।
चतुर्विंशतिको दण्डस्तथा प्रव्रजितागमे ॥ ९७ ॥
अन्त्याभिगमने त्वंक्यः कबन्धेन प्रवासयेत् ।
शूद्रस्तथान्त्य एव स्यादन्तस्यार्यागमे वधः ॥ ९८ ॥

जो स्त्री की योनि छोड़ दूसरे अंग में गमन करे अन्य पुरुष के सामने रति आदि करे, और संन्यासिनी वा अवधूतिनी के पास जावे तो चौवीस पण दंड देवे ॥ ९७ ॥ चाण्डाल की स्त्री से गमन करे, तो उसके माथे में भग का आकार दागकर, अपने राज्य से निकाल दे और जो शूद्र हो, तो वह चाण्डाल ही हो जाता है । यदि चाण्डाल उत्तम जाति की स्त्री से गमन करे, तो उसे मरवा डालना चाहिए ॥ ९८ ॥

इति स्त्रीसंग्रहप्रकरण समाप्त ।

प्रकीर्णकप्रकरण ।

ऊनं वाभ्यधिकं वापि लिखेद्यो राजशासनम् ।
पारदारिकचौरं वा मुञ्चतो दण्ड उत्तमः ॥ ९९ ॥
अभक्ष्येण द्विजं दूष्यं दण्ड उत्तमसाहसम् ।
मध्यमं क्षत्रियं वैश्यं प्रथमं शूद्रमर्द्धिकम् ॥ ३०० ॥

जो राजा के शासन (आज्ञा) को घटा बढ़ाकर लिखे, या व्यभिचारी और चोर को पकड़ के राजा को न सौंपे, अपने आप छोड़ दे तो उत्तम दंड पावे ॥ ९९ ॥ अभक्ष्य (जो भोजन के योग्य नहीं मूत्र वा विष्ठा आदि) से जो ब्राह्मण का खाना-पीना दूषित करे तो उत्तम दंड पावे । क्षत्रिय का करे तो मध्यम,

वैश्य का करे तो मध्यम और शूद्र का करे तो प्रथम साहस का आधा दंड पावे ॥ ३०० ॥

कूटस्वर्णव्यवहारी विमांसस्य च विक्रयी ।
अङ्गहीनस्तु कर्त्तव्यो दाप्यश्चोत्तमसाहसम् ॥ १ ॥
चतुष्पादकृतो दोषो नापैहीति प्रजल्पतः ।
काष्ठलोष्टेषु पाषाणबाहुयुग्यकृतस्तथा ॥ २ ॥

जो कूटस्वर्ण (निकम्मे सोने को रंग देकर अच्छा बनाकर) से व्यवहार करे और जो कुत्सित मांस (कुत्ता बिल्ला आदि का मांस) बेचते हैं, उनका अंग छेदन करवाना और उत्तम साहस दंड भी करना ॥ १ ॥ जो किसी का चतुष्पाद (चौपाया) किसी को मार दे और उसका स्वामी ऐसा पुकार रहा हो कि हट जाना तो पालनेवाले का दोष नहीं और इसी प्रकार काठ, लोष्ट (ढेला), बाण, पत्थर, बाहु और युग्य (रथ में नधे घोड़े आदि) को फेंकता हो और पुकारता हो कि हट जाना उसको हानि हो तो फेंकनेवाले का दोष नहीं ॥ २ ॥

छिन्ननस्येन यानेन तथा भग्नयुगादिना ।
पश्चाच्चैवापसरता हिंसने स्वाम्यदोषभाक् ॥ ३ ॥
शक्तोऽप्यमोक्षयन् स्वामी दंष्ट्रिणां शृङ्गिणां तथा ।
प्रथमं साहसं दद्याद्विक्रुष्टे द्विगुणं तथा ॥ ४ ॥

जिस गाड़ी के बैल की नाथ टूट गई हो, जुआ टूट गया हो और पीछे को हट रहा हो, वह किसी को मारदे, तो स्वामी का दोष नहीं होता ॥ ३ ॥ सींगवाले और दाँतवाले पशु जो किसी को मारते हों और उनका स्वामी छुड़ाने में समर्थ होकर भी न

छुड़ावे, तो प्रथम साहस दंड पावे । यदि पुकारने पर भी न छुड़ावे तो उससे दूना दंड पावे ॥ ४ ॥

जारश्चौरेत्यभिवदन्दाप्यः पञ्चशतं दमम् ।
उपजीव्यधनं मुञ्चंस्तदेवाष्टगुणीकृतम् ॥ ५ ॥
राज्ञोऽनिष्टप्रवक्तारं तस्यैवाक्रोशकारिणम् ।
तन्मन्त्रस्य च भेत्तारं छित्त्वा जिह्वां प्रवासयेत् ॥६॥

किसी व्यभिचारी को अपने कलंक के डर से चोर चोर कह के छुड़ा दे तो पाँच सौ पण दंड देवे । और जो धन लेकर छोड़ दे तो जितना लिये हो उसका अठगुना दंड दे ॥ ५ ॥ जो कोई राजा की अनिष्ट बातों को कहा करे, या राजा की निन्दा किया करे अथवा राजा के गुप्त मंत्र (सलाह) को प्रकट किया करे, तो उसकी जीभ कटवा कर देश से निकाल देना ॥ ६ ॥

मृताङ्गलग्नविक्रेतुर्गुरोस्ताडयितुस्तथा ।
राजयानासनारोढुर्दण्ड उत्तमसाहसः ॥ ७ ॥
द्विनेत्रभेदिनो राजद्विष्टादेशकृतस्तथा ।
विप्रत्वेन च शूद्रस्य जीवतोऽष्टशतो दमः ॥ ८ ॥

जो मृतक के देह पर की चीज़ों को बेचे, गुरु को ताड़न करे, और राजा के यान (सवारी) अथवा सिंहासन पर चढ़े, तो उत्तम साहस दण्ड देवे ॥ ७ ॥ जो किसी की दोनों आँखें फोड़ दे, राजा का द्विष्टादेश (राजभंग आदि होने की प्रसिद्धि) करे और शूद्र होकर ब्राह्मण के वेष से जीविका करे, तो अठारह सौ पण दण्ड करे ॥ ८ ॥

दुर्दृष्टांस्तु पुनर्दृष्ट्वा व्यवहारान्नृपेण तु ।
सभ्याः सजयिनो दण्ड्या विवादाद्द्विगुणं दमम् ॥ ९ ॥
यो मन्येताजितोऽस्मीति न्यायेनापि पराजितः ।
तमायान्तं पुनर्जित्वा दापयेद् द्विगुणं दमम् ॥ १० ॥

जो व्यवहार सभासद्लोग अच्छी भाँति न देखे हों (द्वेष वा प्रेम से अन्यथा किये हों) तो राजा स्वयं उसको दूसरी बार देखे और जीतनेवाले समेत सब सभासदों से जितने का विवाद हो उससे दूना दण्ड लेवे ॥ ९ ॥ जो न्याय से (सच-मुच) पराजित हुआ हो और कहे कि हम पराजित नहीं भये तो उसका व्यवहार फिर से देखकर उसे पराजित करे और दूना दण्ड उससे लेवे ॥ १० ॥

राज्ञाऽन्यायेन यो दण्डो गृहीतो वरुणाय तम् ।
निवेद्य दद्याद्विप्रेभ्यः स्वयं त्रिंशद्गुणीकृतम् ॥ ३११ ॥

इति श्रीयाज्ञवल्क्यीये धर्मशास्त्रे
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

यदि राजा किसी से अन्याय करके दण्ड लेवे, तो उसका तीस गुणा अपने पास से वरुण देवता के नाम संकल्प करके ब्राह्मणों को देवे और जितना दण्ड लिये हो उतना उसको फेर देवे ॥ ३११ ॥

श्रीयाज्ञवल्क्यस्मृति में व्यवहाराध्याय समाप्त हुआ ।

अथ प्रायश्चित्ताध्यायः ।

—:०:—

अशौचप्रकरण ।

ऊनद्विवर्षं निखनेन्न कुर्यादुदकं ततः ।
आश्मशानादनुव्रज्य इतरो ज्ञातिभिर्मृतः ॥ १ ॥
यमसूक्तं तथा गाथां जपद्भिर्लौकिकाग्निना ।
सदग्धव्य उपेतश्चेदाहिताग्न्यावृतार्थवत् ॥ २ ॥

जो पूरा दो वर्ष का न हो ऐसा बालक मृतक हो, तो उसे पृथ्वी में गाड़ देना और उसको उदक (तिलांजलि) भी न देना इससे अधिक अवस्था का हो, तो जाति के लोग श्मशान तक उसके पीछे जावें ॥ १ ॥ और यमसूक्त तथा यमगाथा (ये दोनों यम देवता के वेदोक्त मन्त्र हैं) पढ़ा करें । लौकिक अग्नि (न कि अग्निहोत्र की अग्नि) से उसका दाह करे, यदि उसका यज्ञोपवीत हुआ हो, तो अग्निहोत्र करनेवाले को गृह्य अग्नि से और जिस पात्र का प्रयोजन पड़े उससे दाहादि कर्म करें, अग्निहोत्री न हों तो लौकिक अग्नि से दाह करें ॥ २ ॥

सप्तमाद्दशमाद्वापि ज्ञातयोऽभ्युपयन्त्यपः ।
अपनः शोशुचदघमनेन पितृदिङ्मुखाः ॥ ३ ॥
एवं मातामहाचार्यप्रेतानामुदकक्रिया ।
कामोदकं सखिप्रत्ता स्वस्रीयश्वशुरर्त्विजाम् ॥ ४ ॥

सातवें या दशवें दिन से पहिले (किसी अयुग्म दिन में) जाति के लोग जल के समीप (अपनः शुचिदघम्) इस मंत्र

को पहले आकर उदक दान करें ॥ ३ ॥ इसी प्रकार मातामह (नाना) और आचार्य का भी उदक दान करना । मित्र, व्याही हुई लड़कियाँ, भागिनेय (भानजा) श्वशुर और ऋत्विज इनको इच्छा हो, तो जल देना नहीं तो न देना ॥ ४ ॥

सकृत्प्रसिञ्चन्त्युदकं नामगोत्रेण वाग्यताः ।
न ब्रह्मचारिणः कुर्युरुदकं पतितास्तथा ॥ ५ ॥
पाखण्ड्यनाश्रिताः स्तेना भर्तृघ्न्यः कामगादिकाः ।
सुराप्य आत्मत्यागिन्यो नाशौचोदकभाजनाः ॥ ६ ॥

(प्रेत का) नाम और गोत्र लेकर मौन साधकर एक बार जल देवे परन्तु ब्रह्मचारी और पतित ये जलदान न करें ॥ ५ ॥ पाखंडी (जो खोपड़ी आदि लिये फिरते हैं), अनाश्रित (जो किसी आश्रम में न हों), चोर (सुवर्ण आदि उत्तम द्रव्य के चुरानेवाले), पति मारनेवाली स्त्री, व्यभिचार करनेवाली इत्यादि स्त्री (निषिद्ध) सुरा पीनेवाले और आत्मघात करनेवाले इनको जल न देना और इनका आशौच भी न मानना ॥ ६ ॥

कृतोदकान्समुत्तीर्णान्मृदुशाद्वलसंस्थितान् ।
स्नातानपवदेयुस्तानितिहासैः पुरातनैः ॥ ७ ॥
मानुष्ये कदलीस्तम्भनिःसारे सारमार्गणम् ।
करोति यः स सम्मूढो जलबुद्बुदसन्निभे ॥ ८ ॥

जब जलदान कर चुके और जहाँ हरी घास लगी हो, उस भूमि पर बैठे तो पुरानी कथा कह कह के उनका शोक दूर करे ॥ ७ ॥ और यह कहे कि मनुष्यलोक कदली के खंभ के

समान भीतर पोला है, इसमें जो कोई स्थिरता का खोज करे वह मूर्ख है । क्योंकि यहाँ पानी के बबूले का लेखा है ॥ ८ ॥

पञ्चधा सम्भृतः कायो यदि पञ्चत्वमागतः ।
कर्मभिः स्वशरीरोत्थैस्तत्र का परिदेवना ॥ ९ ॥
गन्त्री वसुमतीनाशमुदधिर्दैवतानि च ।
फेनप्रख्यः कथं नाशं मर्त्यलोको न यास्यति ॥१०॥

अपने किए हुए कर्मों के कारण पाँच तत्त्वों से यह शरीर बना है । यदि वह उन्हीं पाँचों में मिल गया, तो उसमें रोना क्या ॥ ९ ॥ पृथ्वी, समुद्र और देवता लोग भी नाश को प्राप्त होंगे, तो उनकी अपेक्षा फेन सदृश जो यह मर्त्यलोक है सो क्यों न नष्ट होगा ॥ १० ॥

श्लेष्माश्रुबान्धवैर्मुक्तं प्रेतो भुंक्ते यतोऽवशः ।
अतो न रोदितव्यं हि क्रियाः कार्याः स्वशक्तितः ॥११॥
इति संश्रुत्य गच्छेयुर्गृहं बालपुरःसराः ।
विदश्य निम्बपत्राणि नियताद्वारि वेश्मनः ॥१२॥

बांधव लोग जो श्लेष्मा (खखार) और आँसू गिराते हैं वह सब मृतक को यम के दूत खिलाते हैं इसलिये रोना न चाहिए, परन्तु अपनी शक्ति के अनुसार क्रिया करनी चाहिए ॥ ११ ॥ ऐसी बातें कहते-सुनते श्मशान से आकर, बालकों को आगे करके घर आवे । घर के द्वार पर नीम की पत्तियाँ कूचकर ॥१२॥

आचम्याग्न्यादिसलिलं गोमयं गौरसर्षपान् ।
प्रविशेयुः समालभ्य कृत्वाश्मनि पदं शनैः ॥१३॥

प्रवेशनादिकं कर्म प्रेतसंस्पर्शिनामपि।
इच्छतां तत्क्षणाच्छुद्धिं परेषां स्नानसंयमात् ॥१४॥

आचमन करके अग्नि, जल, गोबर और पीले सरसों इनका स्पर्श करे और पत्थर पर पाँव रख के धीरे से घर में प्रवेश करे ॥ १३ ॥ जो अपनी जाति से दूसरा भी कोई अपनी इच्छा से मृतक का स्पर्श करे, तो निंबपत्र का कूचना आदि कर्म वह भी करे और उसकी शुद्धि स्नान और प्राणायाम करने से उसी क्षण हो जाती है ॥ १४ ॥

आचार्यपित्रुपाध्यायान्निर्हृत्यापि व्रतीव्रती।
सकटान्नं च नाश्नीयान्नच तैः सह संवसेत् ॥१५॥
क्रीतलब्धाशना भूमौ स्वपेयुस्ते पृथक् पृथक्।
पिण्डयज्ञावृतादेयं प्रेतायान्नं दिनत्रयम् ॥ १६ ॥

आचार्य (जो आचाराध्याय में कह आये हैं), पिता, माता और उपाध्याय (कह आये हैं) यदि इनको ब्रह्मचारी श्मशान तक लेजावें, तो उसका व्रत भंग नहीं होता परंतु आशौचियों का अन्न न खावे और न उनके पास रहे ॥ १५ ॥ अशौची लोग अन्न मोल लेकर भोजन करें, भूमि के ऊपर अलग अलग सोवें, और श्राद्ध की रीति से (अपसव्य होकर) मृतक को तीन दिन पिण्डरूप अन्न देवें ॥ १६ ॥

जलमेकाहमाकाशे स्थाप्यं क्षीरं च मृण्मये।
वैतानोपासनाः कार्याः क्रियाश्च श्रुतिनोदनात् ॥१७॥
त्रिरात्रं दशरात्रं वा शावमाशौचमिष्यते।
ऊनद्विवर्ष उभयोः सूतकं मातुरेव हि ॥ १८ ॥

एक दिन मृतक के लिये आकाश में जल और दूध मिट्टी के पात्र में रखना और अग्निहोत्र आदि वैदिक नित्यकर्म किसी दूसरे से कराना ॥ १७ ॥ (सपिण्ड और सगोत्र के भेद से) तीन वा दश दिन मृतक का अशौच होता है। यदि दो वर्ष से छोटी अवस्थावाला मरे, तो माता और पिता ही को अशौच होता है और सूतक (जन्म में न छूना) केवल माता ही को होता है ॥१८॥

पित्रोस्तु सूतकं मातुस्तदसृग्दर्शनाद्ध्रुवम् ।
तदहर्न प्रदुष्येत पूर्वेषां जन्मकारणात् ॥ १९ ॥
अन्तराजन्ममरणे शेषाहोभिर्विशुद्ध्यति ।
गर्भस्रावे मासतुल्या निशाः शुद्धेस्तु कारणम् ॥२०॥

जन्म में पिता और माता को न छूना चाहिए उसमें भी माता को रुधिर देख पड़ता है इस हेतु अवश्य ही न छुवे । और वालक के जन्मदिन में श्राद्ध आदि क्रिया करने में कुछ दोप नहीं होता । क्योंकि वालक का रूप धर के पितर आते हैं ॥ १९ ॥ यदि एक मनुष्य मरा वा जन्मा हो और दशदिन के भीतर ही दूसरा जन्मे या मरे, तो उसका भी शुद्ध जो पहिले के शेष (बाकी) दिन रहे हों उतनें ही में हो जाता है। गर्भपात हो जावे तो (चार महीने से पहले माता ही को तीन दिन अनन्तर) जितने महीने का गर्भ हो उतने ही दिन में माता शुद्ध होती है। और पिता आदि को तीन दिन, परन्तु छः महीने से अधिक हो, तो प्रसव के तुल्य अशौच लगता है ॥ २० ॥

हतानां नृपगोविप्रैरन्वक्षं चात्मघातिनाम् ।
प्रोषिते कालशेषः स्यात्पूर्णे दत्त्वोदकं शुचिः ॥ २१ ॥

क्षत्रस्य द्वादशाहानि विशः पञ्चदशैव तु ।
त्रिंशद्दिनानि शूद्रस्य तदर्द्धं न्यायवर्तिनः ॥ २२ ॥

ब्राह्मण, राजा और गौ इनसे जो मारे गये और जिन्होंने अपने आप जीव दिया हो इनका अशौच उसी क्षण होता है। विदेश में मर जावे, तो दश दिन में जो बचा हो उतना ही अशौच मानना और दश दिन बीत गये हों, तो उदकदान करके उसी क्षण शुद्ध होता है (परन्तु यह बात माता पिता के विषय में नहीं है उनका पूरा दश दिन मानना होता है) और भी कई प्रकार स्मृतियों में है ॥ २१ ॥ क्षत्रिय को बारह दिन, वैश्य को पन्द्रह और शूद्र को तीस दिन का अशौच होता है। परन्तु जो शूद्र ब्राह्मण की सेवा में तत्पर हो उसको पन्द्रह दिन का होता है ॥ २२ ॥

आदन्तजन्मनः सद्य आचूडान्नैशिकी स्मृता ।
त्रिरात्रमाव्रतादेशाद्दशरात्रमतः परम् ॥ २३ ॥
अहस्त्वदत्तकन्यासु बालेषु च विशोधनम् ।
गुर्वन्तेवास्यनूचानमातुलश्रोत्रियेषु च ॥ २४ ॥

दाँत निकलने से पहले बालक मरे, तो उसी क्षण शुद्ध होता है। दाँत निकलने के अनन्तर मुंडन तक एक दिन रात, और मुंडन से व्रतबन्धतक तीन दिन रात और व्रतबन्ध होने पर दश दिन का अशौच मानना चाहिए ॥ २३ ॥ जिस कन्या का वाग्दान न किया हो उसके और बालक, गुरु, अन्तेवासी (जो ब्रह्मचारी पढ़ने को गुरु के पास रहे), वेदवेत्ता ब्राह्मण, मामा और श्रोत्रिय इनके मरने में एक दिन का अशौच मानना ॥ २४ ॥

अनौरसेषु पुत्रेषु भार्यास्वन्यगतासु च ।
निवासराजनि प्रेते तदहः शुद्धिकारणम् ॥ २५ ॥
ब्राह्मणानानुगन्तव्यो न शूद्रो न द्विजः क्वचित ।
अनुगम्याम्भसि स्नात्वा स्पृष्ट्वाग्निं घृतभुक्शुचिः २६

औरस छोड़ दूसरे पुत्रों के व्यभिचारिणी भार्या के और अपने देश के राजा के मरने में, एक ही दिन से शुद्ध होता है ॥२५॥ ब्राह्मण, किसी असगोत्र द्विज अथवा शूद्र के मृतक के पीछे श्मशान में न जावे । यदि जावे, तो स्नान करके अग्नि का स्पर्श करे और उस दिन केवल घी खाकर रहे तब शुद्ध होता है ॥२६॥

महीपतीनां नाशौचं हतानां विद्युता तथा ।
गोब्राह्मणार्थे संग्रामे यस्य चेच्छति भूमिपः ॥२७॥
ऋत्विजां दीक्षितानां च यज्ञियं कर्म कुर्वताम् ।
सत्रिव्रतिब्रह्मचारि दातृब्रह्मविदां तथा ॥ २८ ॥

राजाओं को अशौच नहीं होता । जो विजली का मारा मरा हो, गौ वा ब्राह्मण के लिये संग्राम में जो मरे, जिसको राजा न चाहे, इन सबोंका अशौच न मानना चाहिए ॥ २७ ॥ ऋत्विज लोग, दीक्षित (जिसने यज्ञ में अभिषेक पाया हो), यज्ञ के काम करनेवाले, यज्ञ करनेवाले, व्रत करनेवाले (यज्ञ और उत्सव कर रहे हों), ब्रह्मचारी, दाता और ब्रह्मज्ञानी इन सब पुरुषों को ॥ २८ ॥

दाने विवाहे यज्ञे च सङ्ग्रामे देशविप्लवे ।
आपद्यपि हि कष्टायां सद्यः शौचं विधीयते ॥२९॥

उदक्याशुचिभिः स्नायात्संस्पृष्टस्तैरुपस्पृशेत् ।
अब्लिङ्गानि जपेच्चैव गायत्रीं मनसा सकृत् ॥३०॥

और दानः विवाह, यज्ञ, लड़ाई, देशविप्लव और बड़ा कष्ट देनेवाली विपत्ति इन सब समयों में उसी जगह शुद्धि हो जाती है ॥ २९ ॥ रजस्वला स्त्री और चाण्डाल जो छू देवे, तो स्नान करके उनको छू के कोई दूसरा छूवे तो आचमन करने से और वरुणदेवता के मंत्र तथा गायत्री जपने से शुद्ध होता है ॥३०॥

कालोऽग्निः कर्म मृद्वायुर्मनो ज्ञानं तपो जलम् ।
पश्चात्तापो निराहारः सर्वेऽमी शुद्धिहेतवः ॥३१॥
अकार्यकारिणं दानं वेगो नद्याश्च शुद्धिकृत् ।
शोध्यस्य मृच्च तोयं च संन्यासो वै द्विजन्मनाम् ॥३२॥

काल, अग्नि, कर्म, मृत्तिका, वायु, मन, ज्ञान, तप, जल, पश्चात्ताप और उपवास ये सब शुद्धि के हेतु हैं ॥ ३१ ॥ निकम्मा काम करनेवालों की शुद्धि दान से होती है । और नदी के वेग से अशुद्ध वस्तु की मृत्तिका और जल से एवं द्विजों की शुद्धि संन्यास से होती है ॥ ३२ ॥

तपो वेदविदां क्षान्तिर्विदुषां वर्ष्मणो जलम् ।
जपः प्रच्छन्नपापानां मनसः सत्यमुच्यते ॥ ३३ ॥
भूतात्मनस्तपोविद्ये बुद्धेर्ज्ञानं विशोधनम् ।
क्षेत्रज्ञस्येश्वरज्ञानाद्विशुद्धिः परमा मता ॥ ३४ ॥

वेद जाननेवालों के तप से, विद्वानों की क्षमा से, शरीर की जल सें, गुप्तपापों की जप से, और मन की सच्चाई से ॥ ३३ ॥

भूतात्मा की तप और विद्या से, बुद्धि की ज्ञान से और क्षेत्रज्ञ की ईश्वर के ज्ञान से, परम शुद्धता होती है ॥ ३४ ॥

इत्यशौचप्रकरण समाप्त ।

आपद्धर्मप्रकरण ।

क्षात्रेण कर्मणा जीवेद्विशां वाप्यापदि द्विजः ।
निस्तीर्य तामथात्मानं पावयित्वा न्यसेत्पथि ॥३५॥
फलोपलक्षौमसोममनुष्यापूपवीरुधः ।
तिलौदनरसक्षारां दधि क्षीरं घृतं जलम् ॥ ३६ ॥

आपत्तिकाल में, ब्राह्मण, क्षत्रिय के अथवा वैश्यों के काम करके जीविका करे । और जब उस समय से पार पा जाय, तो प्राय-श्चित्त से देह पवित्र करके अपनी निज वृत्ति ग्रहण करे ॥ ३५ ॥ फल, पत्थर, अतसी के वस्त्र आदि, सोमलता, मनुष्य, पुआ, विरुद्ध तिल, ओदन (भात), रस (तेल आदि), क्षार (खारी नोन आदि), दही, दूध, घी, जल ॥ ३६ ॥

शस्त्रासवमधूच्छिष्टमधुलाक्षाथ बर्हिषः ।
मृच्चर्मपुष्पकुतुपकेशतक्रविषक्षितीः ॥ ३७ ॥
कौशेयनीललवणमांसैकशफसीसकान् ।
शाकार्द्रौषधिपिण्याकपशुगन्धांस्तथैव च ॥ ३८ ॥

शस्त्र, आसव (मदिरा अर्क आदि), मधु, जूठा मद्य, लाक्षा, कुश, मिट्टी, चाम, फूल, कुतुप (कम्बल), वाल की चीज़ (चँवर आदि), तक्र (माठा), विष, पृथ्वी ॥ ३७ ॥ पाटवस्त्र, नील, लवण, मांस, एक खुरवाले (घोड़ा आदि), सीसा,

शाक, आर्द्रौषधि (गीली दवा), पिण्याक (पीना) और पशु (बनैल), मृग आदि, गन्ध चन्दन आदि ॥ ३८ ॥

वैश्यवृत्त्यापि जीवन्नो विक्रीणीत कदाचन ।
धर्मार्थं विक्रयं नेयास्तिला धान्येन तत्समाः ॥३६॥
लाक्षालवणमांसानि पतनीयानि विक्रये ।
पयो दधि च मद्यं च हीनवर्णकराणि तु ॥ ४० ॥

इन सब चीज़ों को वैश्य की वृत्ति (नौकरी) करे, तो भी न बेंचे । धर्म-कार्य के अर्थ किसी दूसरे अन्न को बराबर लेकर तिल की बिक्री करे ॥ ३६ ॥ लाख, नोन और मांस इनके बेंचने से मनुष्य पतित होता है । और दूध, दही और मदिरा इनके बेंचने से हीनवर्ण हो जाता है ॥ ४० ॥

आपद्गतः संप्रगृह्णन् भुञ्जानो वा यतस्ततः ।
न लिप्येतैनसा विप्रो ज्वलनार्कसमो हि सः ॥ ४१ ॥
कृषिशिल्पं भृतिर्विद्या कुसीदं शकटं गिरिः ।
सेवानूपं नृपो भैक्ष्यमापत्तौ जीवनानि तु ॥ ४२ ॥

आपत्काल में यदि ब्राह्मण नीचदान ले व भोजन करे, तो दोष नहीं है । क्योंकि उस समय वह अग्नि और सूर्य के समान होता है ॥ ४१ ॥ खेती करनी, शिल्प (कारीगरी), भृति (मज़दूरी), विद्या (पढ़ना आदि), कुसीद (व्याज लेनेवाला), शकट (गाड़ी), गिरि (पहाड़ की घास लकड़ी बेंचना), सेवा, अनूप (जलप्रायदेश), नृप (राजा) और भीख ये सब विपत्ति-काल में जीने के उपाय हैं ॥ ४२ ॥

बुभुक्षितस्त्र्यहं स्थित्वा धान्यमब्राह्मणाद्धरेत् ।
प्रतिगृह्य तदाख्येयमभियुक्ते न धर्मतः ॥ ४३ ॥
तस्य वृत्तं कुलं शीलं श्रुतमध्ययनं तपः ।
ज्ञात्वा राजा कुटुम्बं च धर्म्यां वृत्तिं प्रकल्पयेत् ॥४४॥

तीन दिन भूखा रहकर ब्राह्मण को छोड़ दूसरे के घर से अन्न चुराता यदि पकड़ा जाये, तो धर्म से सच-सच कह देवे ॥ ४३ ॥ इस प्रकार विपत्ति में पड़े हुए मनुष्य का कुल, शील, विद्या, वेद, तप और कुटुम्ब यह सब देख के राजा उसको धर्म के अनुकूल वृत्ति (जीविका) ठहरा देवे ॥ ४४ ॥

इत्यापद्धर्मप्रकरण समाप्त ।

वानप्रस्थप्रकरण ।

सुतविन्यस्तपत्नीकस्तया वानुगतो वनम् ।
वानप्रस्थो ब्रह्मचारी साग्निः सोपासनो व्रजेत् ॥ ४५ ॥
अफालकृष्टेनाग्नींश्च पितॄन्देवातिथीनपि ।
भृत्यांश्च तर्पयेच्छ्मश्रुजटालोमदात्मवान् ॥ ४६ ॥

लड़कों को स्त्री सौंपकर व उसे साथ ही लेकर ब्रह्मचर्यव्रत धारण करके अग्नि (वैतानाग्नि) और उपासना (गृह्याग्नि) समेत वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करे (वन में जावे) ॥ ४५ ॥ बिना जुती भूमि में जो अन्न उपजे उसी से अग्नि, पितर, देवता को अतिथि और भृत्यों (सेवकों) को तुष्ट करे । दाढ़ी, जटा और रोम न तुड़ावे, आत्मवान् (आत्मा की उपासना में) रत होवे ॥ ४६ ॥

अह्नो मासस्य षण्णां वा तथा संवत्सरस्य वा।
अर्थस्य सञ्चयं कुर्यात्कृतमाश्वयुजे त्यजेत् ॥ ४७ ॥
दान्तस्त्रिषवणस्नायी निवृत्तश्च प्रतिग्रहात्।
स्वाध्यायवान्दानशीलः सर्वसत्त्वहिते रतः ॥ ४८ ॥

एक दिन, महीना भर, छः महीना अथवा वर्षभर के लिये अन्न इकट्ठा रक्खे और उसको कुँवार की पूर्णमासी को सब खर्च कर देवे ॥ ४७ ॥ इन्द्रियों का दमन रक्खे, तीन काल स्नान करे, दान न लेवे, वेद पढ़ा करे, दान दिया करे और सब जीवों के हित में तत्पर रहे ॥ ४८ ॥

दन्तोलूखलिकः कालपक्वाशी वाश्मकुट्टकः।
श्रौतं स्मार्त्तं फलं स्नेहैः कर्म कुर्यात्तथा क्रियाः ॥४९॥
चान्द्रायणैर्नयेत्कालं कृच्छ्रैर्वा वर्त्तयेत्सदा।
पक्षे गते वाप्यश्नीयान्मासे वाहनि वागते ॥५०॥

दाँत से कुचल कर जो चीज़ खा सके सो खावे (ओखली में न कूटे) अथवा अपने से जो पक गया हो सो खावे व पत्थर पर कूट ले और वेदोक्त कर्म व धर्मशास्त्र की क्रिया में जो हवन आदि करना हो और देह में मलना आदि निज कार्य भी फलों के अर्क से करे ॥ ४९ ॥ सदा चान्द्रायण व्रत अथवा कृच्छ्र व्रत करके अपना काल वितावे। अथवा पन्द्रह दिन व महीना भर व एक दिन बीतने पर भोजन करे ॥ ५० ॥

स्वप्याद्भूमौ शुचीरात्रौ दिवा संप्रपदैर्नयेत्।
स्थानासनविहारैर्वा योगाभ्यासेन वा तथा ॥५१॥

ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्यस्थो वर्षासु स्थण्डिलेशयः ।
आर्द्रवासास्तु हेमन्ते शक्त्या वापि तपश्चरेत् ॥५२॥

शुद्ध होकर रात को नंगी-भूमि पर सोवे और दिन में घूमते फिरते बितावे। अथवा स्थान (खड़ा रहना) और आसन (बैठने) के विहार से व योगाभ्यास से दिन काटे ॥ ५१ ॥ ग्रीष्म (गरमी) में पंचाग्नि के बीच बैठे, वर्षा में भूमि पर सोवे, हेमन्त ऋतु में गीला वस्त्र पहने अथवा अपनी शक्ति के अनुसार तप करे ॥५२॥

यः कण्टकैर्वितुदति चन्दनैर्यश्च लिम्पति ।
अक्रुद्धोऽपरितुष्टश्च समस्तस्य च तस्य च ॥५३॥
अग्नीन्वाप्यात्मसात्कृत्वा वृक्षावासो मिताशनः ।
वानप्रस्थगृहेष्वेव यात्रार्थं भैक्ष्यमाचरेत् ॥ ५४ ॥

जो काँटा चुभावे और जो चंदन लगावे इन दोनों को बराबर जाने। न पहले पर क्रोध करे, और न दूसरे पर तुष्ट हो ॥ ५३ ॥ अथवा तीनों अग्नियों को भी आत्मा में समझ ले व वृक्ष के तले वास रक्खे, परमित (नपा हुआ) भोजन करे और प्राण की रक्षा के लिये वानप्रस्थों ही के घर भिक्षा करे ॥ ५४ ॥

ग्रामादाहृत्य वा ग्रासानष्टौ भुञ्जीत वाग्यतः ।
वायुभक्षः प्रागुदीचीं गच्छेद्वा वर्ष्मसंक्षयात् ॥ ५५ ॥

अथवा गाँव से अन्न ले आकर मौनी होकर आठ ग्रास खावे। अथवा वायुभक्षण (उपवास) करते हुए ईशानदिशा में जब तक मृत्यु न हो बराबर चला जावे ॥ ५५ ॥

इति वानप्रस्थप्रकरण समाप्त ।

यतिधर्मप्रकरण ।

वनाद् गृहाद्वा कृत्वेष्टिं सार्ववेदमदक्षिणाम् ।
प्राजापत्यां तदन्ते तानग्नीनारोप्य चात्मनि ॥५६॥

यदि गृहस्थाश्रम अथवा वानप्रस्थाश्रम में प्रजापति देवता की ऐसी यज्ञ करे कि अपना सर्वस्व धन दक्षिणा में दे डाले, और यज्ञ की (वैताल) अग्नियों को वेद-रीति से आत्मा में स्थापन करे ॥ ५६ ॥

अधीतवेदो जपकृत्पुत्रवानन्नदोऽग्निमान् ।
शक्त्या च यज्ञकृन्मोक्षे मनःकुर्यात्तु नान्यथा ॥५७॥
सर्वभूतहितः शान्तस्त्रिदण्डी सकमण्डलुः ।
एकारामः परिव्रज्य भिक्षार्थी ग्राममाश्रयेत् ॥ ५८ ॥

और वेद पढ़ा हो, जप करता हो, पुत्रजन्म हो चुका हो, दीन दुःखित को अन्न देता हो, अग्नि में होम करता हो और अपनी शक्ति के अनुसार यज्ञ करता होवे, तो मोक्ष (संन्यासाश्रम) को ग्रहण करने की इच्छा करे । ऐसा न हो तो इच्छा न करे ॥ ५७ ॥ सब जीवों का हित करे, शान्त रहे (कड़ी बात कहनेपर क्रोध न करे) बाँस के तीन दण्ड और कमण्डलु धारण करे, किसी का संग न रक्खे । वैर प्रीति आदि संसार के काम सब छोड़ दे और भिक्षा लेने को गाँव में जावे ॥ ५८ ॥

अप्रमत्तश्चरेद्भैक्ष्यं सायाह्नेऽनभिलक्षितः ।
रहिते भिक्षुकैर्ग्रामे यात्रामात्रमलोलुपः ॥ ५९ ॥

यतिपात्राणि मृद्वेणुदार्वलाबुमयानि च ।
सलिलैः शुद्धिरेतेषां गोवालैश्चावघर्षणम् ॥ ६० ॥

प्रमाद (वाणी और चक्षु आदि की चपलता) छोड़कर, सन्ध्यासमय में अनभिलक्षित (ज्योतिषी वा सामुद्रिक) के काम से रहित होकर जहाँ दूसरा भिक्षुक न होवे वहाँ अपने पेट ही भरने के योग्य भिक्षा माँगे अधिक का लालच न करे ॥ ५९ ॥ मृत्तिका, बाँस, काठ और अलाबु (लौकी) से संन्यासियों के पात्र बनते हैं । जल के साथ धोने और गोवाल के घसने से ही उनकी शुद्धि होती है ॥ ६० ॥

सन्निरुद्धेन्द्रियग्रामं रागद्वेषौ प्रहाय च ।
भयं हित्वा च भूतानाममृती भवति द्विजः ॥ ६१ ॥
कर्त्तव्याशेषशुद्धिस्तु भिक्षुकेण विशेषतः ।
ज्ञानोत्पत्तिनिमित्तत्वात्स्वातन्त्र्यकरणाय च ॥ ६२ ॥

सब इन्द्रियों का संयम करे, वैर प्रीति छोड़ दे और किसी जीव को भय देनेवाला काम न करे, तो द्विज मुक्त होता है ॥ ६१ ॥ संन्यासी विशेष करके अन्तःकरण की शुद्धि प्राणायाम से करे, क्योंकि उससे ज्ञान बढ़ता है और ध्यान करने में स्वतन्त्रता होती है ॥ ६२ ॥

अवेक्ष्या गर्भवासाश्च कर्मजा गतयस्तथा ।
आधयो व्याधयः क्लेशा जरा रूपविपर्ययः ॥ ६३ ॥
भवो जातिसहस्रेषु प्रियाप्रियविपर्ययः ।
ध्यानयोगेन सम्पश्येत्सूक्ष्म आत्मात्मनि स्थितः ॥ ६४ ॥

विराग होने के लिये गर्भवास (जहाँ मल मूत्र में रहना होता है उस) पर ध्यान दे और कुकर्म से जो गति होती है उन्हें समझे आधि (चित्त की पीड़ा) व्याधि (शरीर का रोग) क्लेश (अविद्या आदि पाँच बुढ़ापा और स्वरूप का बदलना) ॥ ६३ ॥ सैकड़ों जातों में जन्म लेना चाही बात न होना और अनचाही का होना इन सबको देखकर ध्यान द्वारा निश्चिन्ताई से अपने शरीर में स्थित आत्मा को देखना ॥ ६४ ॥

नाश्रमः कारणं धर्मे क्रियमाणो भवेद्धि सः ।
अतो यदात्मनोऽपथ्यं परेषां न तदाचरेत् ॥ ६५ ॥
सत्यमस्तेयमक्रोधो ह्रीः शौचं धीर्धृतिर्दमः ।
संयतेन्द्रियता विद्या धर्मः सर्व उदाहृतः ॥ ६६ ॥

किसी धर्म के आचरण में कोई आश्रम कारण नहीं है क्योंकि करने से सब आश्रमों में धर्म होता ही है । इसलिये जो बात अपने को भली न लगे, वह दूसरे के साथ न करे ॥ ६५ ॥ सच बोलना, चोरी न करना, क्रोध न करना, लज्जा, पवित्रता, बुद्धिमानी, धीरज, शान्ति, इन्द्रियों को वश में रखना और विद्याभ्यास यह सब धर्म के लक्षण हैं ॥ ६६ ॥

निस्सरन्ति यथा लोहपिण्डात्तप्तात्स्फुलिङ्गकाः ।
सकाशादात्मनस्तद्वदात्मनः प्रभवन्ति हि ॥६७॥
तत्रात्मा हि स्वयं किञ्चित्कर्म किञ्चित्स्वभावतः ।
करोति किञ्चिदभ्यासाद्धर्माधर्मोभयात्मकम् ॥६८॥

जिस प्रकार, तपाये हुए लोहे से जो छोटे-छोटे कण उड़ते

हैं उन्हें स्फुलिंग (चिनगारियाँ) कहते हैं, इसी प्रकार परमात्मा से जीवात्मा उपजते हैं यह बात कही जाती है ॥ ६७ ॥ फिर वहाँ धर्म और अधर्मरूपी काम कुछ तो आत्मा आप ही करता है कुछ स्वभाव से और कुछ अभ्यास से करता है ॥६८॥

निमित्तमक्षरः कर्त्ता बोद्धा ब्रह्मगुणी वशी ।
अजः शरीरग्रहणात्स जात इति कीर्त्यते ॥ ६९ ॥
सर्गादौ स यथाकाशं वायुं ज्योतिर्जलं महीम् ।
सृजत्येकोत्तरगुणांस्तथा दत्ते भवन्नपि ॥ ७० ॥

यद्यपि आत्मा सब वस्तुओं का निमित्त, विनाशरहित, करनेहारा, ज्ञानरूप (जाननेवाला), ब्रह्म (व्यापक), गुणी, वशी (इन्द्रियों को वश में रखनेवाला) और अज कभी जन्मता नहीं है परन्तु शरीर ग्रहण करने से उसको लोग कहते हैं कि पैदा हुआ है ॥ ६९ ॥ जिस प्रकार सृष्टि के आदि में, वह आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी को जो क्रम से एक-एक गुण अधिक रखते हैं (आकाश १ वायु २ तेज ३ जल ४ पृथ्वी ५) इन्हें बनाता है उसी प्रकार उत्पन्न होकर उन्हें धारण भी करता है ॥ ७० ॥

आहुत्याप्यायते सूर्यः सूर्याद्वृष्टिरथौषधिः ।
तदन्नं रसरूपेण शुक्रत्वमधिगच्छति ॥ ७१ ॥
स्त्रीपुंसयोस्तु संयोगे विशुद्धे शुक्रशोणिते ।
पञ्चधातून्स्वयं षष्ठ आदत्ते युगपत्प्रभुम् ॥ ७२ ॥

आहुति देने (होम करने) से सूर्य का तेज बढ़ता है । सूर्य से वृष्टि और उससे सब ओषधिरूप अन्न पैदा होते हैं, और

उनके रस से शुक्र (वीर्य) बनता है ॥ ७१ ॥ जब स्त्री पुरुष के संयोग से शुक्र (वीर्य) शोणित (रज) शुद्ध होते हैं तो पाँचों धातुओं को छठाँ आत्मा एक ही बार ग्रहण करता है ॥७२॥

इन्द्रियाणि मनः प्राणो ज्ञानमायुः सुखं धृतिः ।
धारणा प्रेरणं दुःखमिच्छाहङ्कार एव च ॥ ७३ ॥
प्रयत्न आकृतिर्वर्णः स्वरद्वेषौ भवाभवौ ।
तस्यैतदात्मजं सर्वमनादेरादिमिच्छतः ॥ ७४ ॥

इन्द्रिय, मन, प्राण, ज्ञान, आयु (अवस्था), सुख, धीरज, धारणा (स्मरणशक्ति), प्रेरणा दुःख, इच्छा, अहंकार ॥ ७३ ॥ प्रयत्न, आकृति (स्वरूप), वर्ण (रंग), स्वरद्वेष, उत्पत्ति और नाश ये सब उस आत्मा के आश्रय आधार होते हैं । जब वह उत्पन्न होने की इच्छा करता है ॥ ७४ ॥

प्रथमे मासि संक्लेदभूतो धातुविमूर्च्छितः ।
मास्यर्बुदं द्वितीये तु तृतीयेऽङ्गेन्द्रियैर्युतः ॥ ७५ ॥
आकाशाल्लाघवं सौक्ष्म्यं शब्दं श्रोत्रं बलादिकम् ।
वायोश्च स्पर्शनं चेष्टां व्यूहनं रौक्ष्यमेव च ॥ ७६ ॥

पहले सूक्ष्म (पृथ्वी आदि) धातुओं से मूर्च्छित होकर गर्भ-संक्लेद (पानी के समान गीला) रहता है । दूसरे महीने अर्बुद (कड़ा होता है) तीसरे में अंग (हाथ पाँव आदि) और इन्द्रियों (नाक कान आदि) से युक्त होता है ॥ ७५ ॥ आकाश से हलकापन, सूक्ष्मता, शब्द (ध्वनि सुनने की शक्ति) और बल आदि, वायु से स्पर्श (छूना), चेष्टा (इधर उधर डोलना) और रूक्षता (रूखापन) धारण करता है ॥ ७६ ॥

पित्तात्तु दर्शनं पक्तिमौष्ण्यं रूपं प्रकाशितम् ।
रसात्तु रसनं शैत्यं स्नेहं क्लेदं समार्दवम् ॥ ७७ ॥
भूमेर्गन्धं तथा घ्राणं गौरवं मूर्तिमेव च ।
आत्मा गृह्णात्यजः सर्वं तृतीये स्पन्दते ततः ॥७८॥

पित्त से देखना, पचाने की सामर्थ्य, उष्णता, रूप और प्रकाश करने की शक्ति ग्रहण करता है । रस से रसना (जिससे स्वाद मालूम होता है) शीतलता, गीलापन, ढीलापन और नरमावट पाता है ॥ ७७ ॥ भूमि से गन्ध, घ्राण (जिससे गन्ध जान पड़ता है) गौरव (गरुआई) और मूर्त्ति (आकार व स्वरूप) इन सबको भी आत्मा तीसरे ही मास में ग्रहण करता है । इसके अनन्तर, कुछ-कुछ डोलने लगता है ॥ ७८ ॥

दोहदस्याप्रदानेन गर्भो दोषमवाप्नुयात् ।
वैरूप्यं मरणं वापि तस्मात्कार्यं प्रियं स्त्रियाः ॥७९॥
स्थैर्यं चतुर्थे त्वङ्गानां पञ्चमे शोणितोद्भवः ।
षष्ठे बलस्य वर्णस्य नखरोम्णां च सम्भवः ॥८०॥

दोहद (जिस चीज़ पर गर्भिणी स्त्री का मन चले) के न देने से गर्भ में कुरूपता और मरण आदि दोष हो जाते हैं । इसलिये जो स्त्री को प्रिय लगे वही करना चाहिये ॥ ७९ ॥ चौथे महीने में अंग (हाथ पाँव) आदि की दृढ़ता होती है, पाँचवें में रुधिर उपजता है और छठे महीने में बल, वर्ण (रंग) नख और रोम की बढ़ती होती है ॥ ८० ॥

मनश्चैतन्ययुक्तोऽसौ नाडीस्नायुशिरायुतः ।
सप्तमे चाष्टमे चैव त्वङ्मांसस्मृतिमानपि ॥ ८१ ॥

पुनर्धात्रीं पुनर्गर्भमोजस्तस्य प्रधावति ।
अष्टमे मास्यतो गर्भो जातः प्राणैर्वियुज्यते ॥ ८२ ॥

सातवें में मन, चैतन्य, नाड़ी स्नायु (जिससे हड्डियाँ बँधी रहती हैं) और शिरा (जिसमें वात पित्त और श्लेष्मा घूमते हैं) इनसे युक्त होता है आठवें में त्वचा (खाल) मांस और स्मरणशक्ति को पाता है ॥ ८१ ॥ आठवें महीने में उस गर्भ का ओज (बल व पिता) बारबार धात्री (माता) और गर्भ को दौड़ता है, इसलिये यदि आठवें में बालक जन्मे तो जीव निकल जाता है ॥ ८२ ॥

नवमे दशमे वापि प्रबलैः सूतिमारुतैः ।
निःसार्यते बाण इव यन्त्रच्छिद्रेण सज्वरः ॥ ८३ ॥
तस्य षोढा शरीराणि षट्त्वचो धारयन्ति च ।
षडङ्गानि तथास्थ्नां च सहषष्ट्याशतत्रयम् ॥ ८४ ॥

नवें व दशवें महीने में बड़े प्रबल प्रसूतिमारुत (अपान वायु) से प्रेरित होकर ज्वर सहित गर्भ से बाहर निकलता है जैसे यंत्र से बाण छूटता है ॥ ८३ ॥ उसके छः प्रकार के * शरीर छही त्वचा और छः अंगों † को और तीन सौ साठ हड्डियाँ धारण करते हैं ॥ ८४ ॥

---

* रक्त, मांस, मेदस, अस्थि, मज्जा और शुक्र इन छः धातुओं के परिपाक हेतु जो जठराग्नि के स्थान हैं उनके योग से छः प्रकार शरीर कहे जाते हैं । और वे ही छः त्वचा कहे जाते हैं, जैसे केले की छाल खम्भा ही है ।

† दो हाथ, दो पांव, शिर और पेट ।

स्थालैः सह चतुःषष्टिर्दन्ता वै विंशतिर्नखाः ।
पाणिपादशलाकाश्च तेषां स्थानचतुष्टयम् ॥८५॥
षष्ट्यङ्गुलीनां द्वौ पार्ष्ण्योर्गुल्फेषु च चतुष्टयम् ।
चत्वार्यरत्निकास्थीनि जङ्घयोस्तावदेव तु ॥ ८६ ॥

उन तीन सौ साठ हड्डियों को गिनाता है । स्थल (समगुर) समेत चौंसठ दाँत, बीस नहँ, हाथ और पाँव की (शलाका रूप) लंबी-लंबी हड्डियाँ भी बीस होती हैं और उनके चार स्थान हैं (दो हाथ दो पाँव) ॥ ८५ ॥ अंगुलियों की साठ पार्ष्णि (एँड़ी की दो गुल्फ (पाँव के पंजे) की चार अरत्निका (मुठ हथ) की चार और दोनों जंघों की भी उतनी ही चार हड्डियाँ होती हैं ॥ ८६ ॥

द्वे द्वे जानुकपोलोरुफलकांससमुद्भवे ।
अक्षतालूषकश्रोणीफलके च विनिर्दिशेत् ॥ ८७ ॥
भागास्थ्येकं तथा पृष्ठे चत्वारिंशच्च पञ्च च ।
ग्रीवापञ्चदशास्थी स्याज्जत्र्वेकैकं तथा हनुः ॥८८॥

जानु (टेउनी) कपोल (गाल) ऊरु (पट्टे) फलक अंस (कन्धे) अक्ष (कच्चा) तालूष (तालु) श्रोणी और फलक (दोनों चूतर) में दो दो हड्डियाँ जानना ॥ ८७ ॥ भग (गुदा) की एक पीठि की पैंतालीस ग्रीवा (गर्दन) में पंद्रह जत्रु (हँसुआ) और हनु (ठुड्ढी) में एक ॥ ८८ ॥

तन्मूले द्वे ललाटाक्षिगण्डेनासाघ नास्थिका ।
पार्श्वकाः स्थालकैः सार्द्धमर्बुदैश्च द्विसप्ततिः ॥८९॥

द्वौ शङ्खौ कपालानि चत्वारि शिरसस्तथा ।
उरः सप्तदशास्थीनि पुरुषस्यास्थिसङ्ग्रहः ॥ ९० ॥

उस दाढ़ के मूल (जड़) की दो हड्डियाँ, ललाट (मस्तक) आँख, गण्ड (कपोल) और आँख का बीच इनमें भी दो दो और नाक में घन नामक एक हड्डी है । पार्श्वक (पसुली की हड्डियाँ) अपने स्थालक (रहने की जगह) और अर्बुद नाम हड्डियों समेत बहत्तर होती हैं ॥ ८९ ॥ दो हड्डियाँ शंखक (भौंह औ कान के बीच) की चार कपाल की हड्डियाँ और छाती में सत्रह, इतनी हड्डियाँ मनुष्य के होती हैं सो मैंने कही हैं ॥ ९० ॥

गन्धरूपरसस्पर्शशब्दाश्च विषयाः स्मृताः ।
नासिकालोचनेजिह्वात्वक्श्रोत्रं चेन्द्रियाणि च ॥९१
हस्तौ पायुरुपस्थं च जिह्वा पादौ च पञ्च वै ।
कर्मेन्द्रियाणि जानीयान्मनश्चैवोभयात्मकम् ॥९२

गन्ध, रूप, रस, स्पर्श और शब्द इतने विषय मनुष्य के बन्धन हैं और नाक, आँख, जीभ, त्वचा (खाल) और कान ये उनकी ज्ञानेन्द्रिय जानने के द्वार हैं ॥ ९१ ॥ हाथ, पाँव, गुद व उपस्थ (जिससे रति का सुख हो) जीभ और पाँव ये पाँच कर्मेन्द्रिय कहलाते हैं । और मन को (ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय) दोनों कहते हैं ॥ ९२ ॥

नाभिरोजो गुदं शुक्रं शोणितं शङ्खकौ तथा ।
मूर्द्धांसकण्ठहृदयं प्राणस्यायतनानि च ॥ ९३ ॥
वपावसावहननं नाभिः क्लोमयकृत्प्लिहा ।
क्षुद्रान्तं वृक्कौ बस्तिः पुरीषाधानमेव च ॥ ९४ ॥

नाभि, ओज (पिता) गुद शुक्र (वीज) रक्त, शंखक भौंह कान के बीच शिर, कन्धे व कण्ठ (नटी) हृदय ये दश प्राण के घर हैं ॥ ९३ ॥ वपा (कीली) वसा (चरवी) अवहनन (पुस्फस) * नाभिक्लोम यकृत् (दाहिने कोखे की वरवट) क्लोम-प्लीहा (वायें कोखे की तापतिल्ली) क्षुद्रान्त्र (हृदय की आँती) वृक्कक (हृदय के पास दो मांस के गोले होते हैं) वस्ति (पेडू) पुरीषाधान (मल की जगह) ॥ ९४ ॥

आमाशयोथ हृदयं स्थूलान्त्रं गुद एव च ।
उदरञ्च गुदौ कोष्टयो विस्तारोयमुदाहृतः ॥ ९५ ॥
कनीनिके चाक्षिकूटशष्कुलीकर्णपत्रकौ ।
कर्णौ शङ्खौ भ्रुवौ दन्तवेष्टावेष्ठौ ककुन्दरे ॥ ९६ ॥

आमाशय (जहाँ अन्न पचकर इकट्ठा होता है) हृदयकमल वड़ी अन्तड़ी, गुद, उदर (पेट) और गुद की दोनों कोठियाँ, इतने प्राण के रहने के स्थलों का विस्तार है ॥ ९५ ॥ कनीनिका (आँख के तारे) अक्षिकूट (आँख और नाक का जोड़) शष्कुली (कान का भीतरी खण्ड) कर्णपत्र (कान का वाहरी खण्ड) कान, शंखक, भौंह, दन्तवेष्ट (दतपाली) ओठ, ककुन्दर (जघन कूप) ॥ ९६ ॥

वङ्क्षणौ वृषणौ वृक्कौ श्लेष्मसंङ्घातजौ स्तनौ ।
उपजिह्वा स्फिजौ बाहू जङ्घोरुषु च पिण्डिका ॥ ९७ ॥
तालूदरं बस्तिशीर्षं चिबुके गलशुण्डिके ।
अवटश्चैवमेतानि स्थानान्यत्र शरीरके ॥ ९८ ॥

* फुस् फुस् व पुस् पुस् ॥

वंक्षण (जंघा और ऊरू का जोड़) वृषण (अण्डकोश) हृक (हृदय के पास मांस के दो गोले) दोनों स्तन जो श्लेष्मा के इकट्ठे होने से बने हैं, उपजिह्वा (घंटी) स्फिज (कटिमोथा) बाहु, जंघा और उसकी मांसपिण्डिका ॥ ९७ ॥ तालु, उदर, पेड़ू, शिर, चिबुक (दाढ़ी), गलशुण्डिका (दाढ़ी और गले का जोड़) और जो कोई शरीर में गर्त (नीची जगह) हो ॥९८॥

अक्षिवर्णचतुष्कञ्च पद्धस्तहृदयानि च।
नवच्छिद्राणि तान्येव प्राणस्यायतनानि तु ॥९९॥
शिराःशतानि सप्तैव नव स्नायुशतानि च।
धमनीनां शते द्वे तु पञ्च पेशीशतानि च ॥१००॥

और आँख, कान, नाक, मुँह, मूत्रद्वार, मलद्वार ये नव छिद्र और पूर्वोक्त स्थान और पाँव हाथ और हृदय ये सब प्राण के रहने के स्थल हैं ॥ ९९ ॥ शिरा (वात पित्त श्लेष्मवाहिनी) नाड़ी सात सौ हैं। स्नायु (हड्डियों के बन्धन) नव सौ हैं। धमनी (प्राणवाहिनी) नाड़ी दो सौ हैं। और पेशी (मोटी मोटी नसें) जो जंघा आदि की हैं वे पाँच सौ हैं इस प्रकार शरीर के प्रत्येक वस्तुओं का विस्तार है ॥ १०० ॥

एकोनत्रिंशल्लक्षाणि तथा नव शतानि च।
षट्पञ्चाशच्च जानीत शिराधमनिसंज्ञिताः ॥ १ ॥
त्रयोलक्षास्तु विज्ञेयाः श्मश्रुकेशाः शरीरिणाम्।
सप्तोत्तरं मर्मशतं द्वे च सन्धिशते तथा ॥ २ ॥

हे मुनि लोग ! यह जानो कि शिरा और धमनी इन दोनों नाड़ियों के मिलने से उनकी शाखा उन्तीस लाख नव सौ छप्पन,

होजाती हैं ॥ १ ॥ मनुष्यों के दाढ़ी मूँछ और शिर में सब मिल कर तीन लाख बाल होते हैं। एक सौ सात मर्मस्थल (जहाँ चोट लगने से मर जावें ऐसी जगह) हैं और दो सौ हड्डियों के जोड़ हैं ॥ २ ॥

रोम्णां कोट्यस्तु पञ्चाशच्चतस्रः कोट्य एव च ।
सप्तषष्टिस्तथा लक्षाः सार्द्धाः स्वेदायनैःसह ॥ ३ ॥
वायवीयैर्विगण्यन्ते विभक्ताः परमाणवः ।
यद्यप्येकोऽनुवेत्त्येषां भावानां चैव संस्थितिम्॥ ४ ॥

स्वेदायन (पसीना निकलने की जगह) समेत चौवन करोड़ सात लाख रोम होते हैं ॥ ३ ॥ इनकी गिनती तब हो सकती है जब वायु के परमाणु में अलग-अलग किये जावें । और हे मुनि लोग ! तुम लोगों में जो कोई इन भावों की स्थिति जानता हो वह मान्य है । क्योंकि ये बड़े कठिन हैं ॥ ४ ॥

रसस्य नव विज्ञेया जलस्याञ्जलयो दश ।
सप्तैव तु पुरीषस्य रक्तस्याष्टौ प्रकीर्तिताः ॥ ५ ॥
षट् श्लेष्मा पञ्च पित्तञ्च चत्वारो मूत्रमेव च ।
वसात्रयो द्वौ तु मेदोमज्जैकोऽर्ध्वं तु मस्तके ॥ ६ ॥

इस शरीर में अन्न का रस नव अंजली, जल दश अंजली । पुरीष (अन्नमल) सात अंजली, रक्त आठ अंजली ॥ ५ ॥ श्लेष्मा (कफ) छः अंजली, पित्त पाँच अंजली, मूत्र चार अंजली, वसा (चरबी) तीन, मेद (मांसरस) दो, मज्जा (हड्डी के भीतर की चरबी) सारे शरीर में एक और मस्तक में आधी अंजली मिलजुल डेढ अंजली होती हैं ॥ ६ ॥

श्लेष्मौजसस्तावदेव रेतसस्तावदेव तु ।
इत्येतदस्थिरं वर्ष्म यस्य मोक्षाय कृत्यसौ ॥ ७ ॥
द्वासप्ततिसहस्राणि हृदयादभिनिःसृताः ।
हिताहिता नामनाड्यस्तासां मध्ये शशिप्रभम् ॥ ८ ॥

श्लेष्मौजस (कफ़ का सार) और रेत (वीर्य) भी उतना ही डेढ़ अंजली रहता है । इस प्रकार हाड़ मांस आदि अपवित्र वस्तुओं से यह शरीर बना है और अस्थिर है ऐसी जिसकी मति है वह पण्डित मोक्ष पाने के योग्य होता है ॥ ७ ॥ जो हृदयस्थ हित और अहित नामक बहत्तर सहस्र (बहत्तर हज़ार) नाड़ियाँ निकली हैं और इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा तीन ये इन सबोंके मध्य में चन्द्रमा के सदृश प्रकाशमान ॥ ८ ॥

मण्डलं तस्य मध्यस्थ आत्मा दीप इवाचलः ।
स ज्ञेयस्तं विदित्वेह पुनराजायते न तु ॥ ९ ॥
ज्ञेयं चारण्यकमहं यदादित्यादवाप्तवान् ।
योगशास्त्रञ्च मत्प्रोक्तं ज्ञेयं योगमभीप्सता ॥ १० ॥

एक मण्डल उसके बीच निर्वातस्थल के दीप के समान अचल और प्रकाशमान आत्मा है, उसको जानना चाहिए । क्योंकि जो उसको जानता है वह फिर इस संसार में नहीं उत्पन्न होता ॥९॥ याज्ञवल्क्य मुनि कहते हैं योग (और विषयों को छोड़ आत्मा में स्थिरता) पाने की अभिलाषा रक्खे वह बृहदारण्यक नाम ग्रन्थ जो मैंने सूर्य देवता से पाया है उसको और हमारे बनाये हुए योगशास्त्र को पढ़े ॥ १० ॥

अनन्यविषयं कृत्वा मनोबुद्धिस्मृतीन्द्रियम् ।
ध्येय आत्मा स्थितो योऽसौ हृदये दीपवत्प्रभुः ११ ॥
यथाविधानेन पठन्सामगायमविच्युतम् ।
सावधानस्तदभ्यासात्परंब्रह्माधिगच्छति ॥ १२ ॥

मन, बुद्धि, स्मृति और हाथ, पाँव, आँख, कान आदि इन्द्रियों को दूसरे विषयों से हटाकर जो हृदय में अचल दीप के समान प्रभु आत्मा स्थित है उसका ध्यान करना ॥ ११ ॥ यदि आत्मा का ध्यान न हो सके तो सामवेद का गान सावधान होकर यथाविधि पढ़े और अभ्यास करे तो परब्रह्म को जानता है ॥ १२ ॥

अपरान्तकमुल्लोप्यं मद्रकं मकरीं तथा ।
औवेणकं सरोबिन्दुमुत्तरं गीतकानि च ॥ १३ ॥
ऋग्गाथापाणिकादक्षविहिता ब्रह्मगीतिका ।
गेयमेतत्तदभ्यासकरणान्मोक्षसंज्ञितम् ॥ १४ ॥

जिसका मन उसमें भी न लगे अपरान्तक, उल्लोप्य, मद्रक, मकरी, औवेणक और सरोबिन्दु सहित उत्तर गीत इन सब गीतों को पढ़े ॥ १३ ॥ और ऋग्गाथा, पाणिका, दक्षगीतिका और ब्रह्मगीतिका इन सबों को गावे । उनके अभ्यास से चित्त एकाग्र होता है । इसलिये इन्हें मोक्ष देनेवाली कहते हैं ॥ १४ ॥

वीणावादनतत्त्वज्ञः श्रुतिजातिविशारदः ।
तालज्ञश्चाप्रयासेन मोक्षमार्गं नियच्छति ॥ १५ ॥

गीतज्ञो यदि योगेन नाप्नोति परमं पदम् ।
रुद्रस्यानुचरो भूत्वा तेनैव सह मोदते ॥ १६ ॥

जो मनुष्य वीणा (वीन जिसके बजाने की रीति भरत आदि मुनियों ने कही है) बजाने का तत्त्व जाननेवाला हो, श्रुति और जाति में प्रवीण हो और ताल भी जानता हो तो सहज ही मुक्ति की राह पाता है ॥ १५ ॥ गीत जाननेवाला यदि योग करने से परम पद (मुक्ति) न पावे तो रुद्र (महादेव) का अनुचर होता है और उन्हीं के साथ क्रीड़ा करता है ॥ १६ ॥

अनादिरात्मा कथितस्तस्यादिस्तु शरीरकम् ।
आत्मनस्तु जगत्सर्वं जगतश्चात्मसम्भवः ॥ १७ ॥
कथमेतद्विमुह्यामः सदेवासुरमानवम् ।
जगदुद्भूतमात्मा च कथं तस्मिन् वदस्व नः ॥ १८ ॥

इस प्रकरण में जितनी बातें कही हैं सबसे मालूम होता है आत्मा अनादि है । उसकी उत्पत्ति यही है कि शरीर धारण करना, आत्मा से सब (पृथ्वी आदि) जगत् और जगत् (पृथ्वी आदि महाभूत के संग) से आत्मा (जीवों) की उत्पत्ति कही है ॥ १७ ॥ परन्तु यह बात विस्तारपूर्वक हमसे कहिये कि यह देवता, असुर और मनुष्य आदि के सहित संसार कैसे उपजा और उस जगत् में आत्मा किस प्रकार (पशु पक्षी आदि योनि में) प्राप्त होता है । क्योंकि इसमें हम लोगों को बड़ा संदेह है (ऐसा ऋषियों ने याज्ञवल्क्य मुनि से पूछा) ॥ १८ ॥

मोहजालमपास्येह पुरुषो दृश्यते हि यः ।
सहस्रकरपन्नेत्रः सूर्यवर्चाः सहस्रकः ॥ १९ ॥

स आत्मा चैव यज्ञश्च विश्वरूपः प्रजापतिः ।
विराजः सोऽन्नरूपेण यज्ञत्वमुपगच्छति ॥ २० ॥

याज्ञवल्क्यमुनि उत्तर देते हैं, इस संसार के मोहजाल (जो इस स्थूल शरीर में आत्मा का अभिमान करते हैं) को छोड़ जो असंख्य हाथ पाँव और लोचन रखनेवाला है सूर्य के समान तेज से प्रकाशमान है और अनेक शिरवाला है ॥ १९ ॥ वही आत्मा और यज्ञ कहलाता है । क्योंकि वह विराट पुरुष अन्नरूप से यज्ञ होता है और उससे वृष्टि आदि के द्वारा विश्वरूप (संसार का आधार) होता है ॥ २० ॥

यो द्रव्यदेवतात्यागसम्भूतो रस उत्तमः ।
देवान्सन्तर्प्य सरसो यजमानं फलेन च ॥ २१ ॥
संयोज्य वायुना सोमं नीयते रश्मिभिस्ततः ।
ऋग्यजुःसामविहितं सौरं धामोपनीयते ॥ २२ ॥

देवताओं के निमित्त जो वस्तु दी जाती है उससे जो उत्तम सकल जगत् के जन्म का वीज रस अदृष्ट व दैव उत्पन्न होता है वह देवताओं को और फल से यजमान को तुष्ट करके ॥ २१ ॥ वायु से प्रेरित होकर चन्द्रमण्डल में प्राप्त होता है । वहाँ से किरणों के द्वारा सूर्यमण्डल में प्राप्त होकर ऋक् यजुः और साम इन तीनों वेदों का स्वरूप हो जाता है ॥ २२ ॥

सुमण्डलादसौ सूर्यः सृजत्यमृतमुत्तमम् ।
यज्जन्म सर्वभूतानामशनानशनात्मना ॥ २३ ॥
तस्मादन्नात्पुनर्यज्ञः पुनरन्नं पुनः क्रतुः ।
एवमेतदनाद्यन्तं चक्रं सम्परिवर्त्तते ॥ २४ ॥

अपने मण्डल से सूर्य वृष्टिरूप अमृत उत्पन्न करता है जो चर और अचररूप सब जगत् के जन्म का हेतु है ॥ २३ ॥ उस वृष्टि से उत्पन्न हुए अन्न से फिर यज्ञ होता है और यज्ञ से फिर (पूर्वोक्त प्रकार) से अन्न होता है उससे फिर यज्ञ इस प्रकार यह अनादि और अविनाशी संसार घूमता रहता है ॥ २४ ॥

अनादिरात्मा सम्भूतिर्विद्यते नान्तरात्मनः ।
समवायी तु पुरुषो मोहेच्छाद्वेषकर्मजः ॥ २५ ॥
सहस्रात्मा मया यो वा आदिदेव उदाहृतः ।
मुखबाहूरुपज्जाः स्युस्तस्य वर्णा यथाक्रमम् ॥ २६ ॥

आत्मा अनादि है इसलिये अन्तरात्मा की उत्पत्ति नहीं होती। यद्यपि ऐसा है तो भी पुरुष शरीर से समवायी (सुख दुःख आदि भोग का सम्बन्ध रखनेवाला) होता है और वह सम्बन्ध मोह इच्छा और द्वेष इनसे उत्पादित कर्म के द्वारा होता है ॥२५॥ हे मुनि लोगो ! जो मैंने तुमसे असंख्यरूप और सकल जगत् का कारण आदिदेव कहा है उसी के मुँह, बाहु, उरु और पाद से क्रम से चारों वर्ण उत्पन्न हुए हैं ॥ २६ ॥

पृथिवी पादतस्तस्य शिरसो द्यौरजायत ।
नस्तः प्राणा दिशः श्रोत्रात्स्पर्शाद्वायुर्मुखाच्छिखी २७
मनसश्चन्द्रमा जातश्चक्षुषश्च दिवाकरः ।
जघनादन्तरिक्षं च जगच्च सचराचरम् ॥ २८ ॥

उसी के पाँव से पृथ्वी, शिर से आकाश (देवलोक व स्वर्ग) नाक से प्राण, कान से दशदिशा, स्पर्श से वायु, मुँह से

अग्नि ॥२७॥ मन से चन्द्रमा, आँख से सूर्य और जघन से अंतरिक्ष (शून्य आकाश) और चराचर जगत् उत्पन्न होता है ॥ २८ ॥

यद्येवं स कथं ब्रह्मन्पापयोनिषु जायते ।
ईश्वरः स कथं भावैरनिष्टैः सम्प्रयुज्यते ॥ २९ ॥
करणेनान्वितस्यापि पूर्वज्ञानं कथं च न ।
वेत्ति सर्वगतां कस्मात्सर्वगोऽपि न वेदनाम् ॥ ३० ॥

ऋषिलोग पूछते हैं हे ब्रह्मन्, हे योगिन्, याज्ञवल्क्य ! जो ऐसा ही अर्थात् आत्मा ही जीव होता है, तो यह पापयोनि (मृगपक्षी आदि) में क्यों उत्पन्न होता है । और वह ईश्वर है इससे अनिष्टभाव (मोह, राग, द्वेष आदि दोष) भी उसमें नहीं लग सकते जिससे वह जन्म लेवे ॥ २९ ॥ और मन आदि ज्ञान इन्द्रियों से युक्त है, तो उसको पूर्वजन्म की वातों का ज्ञान क्यों नहीं रहता और वही सवमें है तो सवको (दुःख आदि सुख) वेदना का क्यों नहीं जानता ॥ ३० ॥

अन्त्यपक्षिस्थावरतां मनोवाक्कायकर्मजैः ।
दोषैः प्रयाति जीवोऽयं भयं योनिशतेषु च ॥३१॥
अनन्ताश्च यथा भावाः शरीरेषु शरीरिणाम् ।
रूपाण्यपि तथैवेह सर्वयोनिषु देहिनाम् ॥ ३२ ॥

पहले प्रश्न का उत्तर योगीश्वर कहते हैं यद्यपि यह जीव ईश्वरांश है और ईश्वर का सत्यज्ञान आदिस्वरूप है तो भी मन वाणी और शरीर से जो कर्म (अविद्या के वश होकर मोह राग आदि भाव द्वारा) किये गये हैं उनसे अन्त्यज (चाण्डाल) पक्षी और स्थावर (वृक्ष आदि योनियों में) क्रम से सैकड़ों जन्म तक

प्राप्त होते हैं ॥ ३१ ॥ और जीवों के अपने-अपने शरीर में जैसे अनन्तभाव होते हैं उसीके अनुसार सब योनियों में देहियों के-स्वरूप भी होते हैं ॥ ३२ ॥

विपाकः कर्मणां प्रेत्य केषांचिदिह जायते।
इह वामुत्र वै केषां भावास्तत्र प्रयोजनम् ॥ ३३ ॥
परद्रव्याण्यभिध्यायंस्तथानिष्टानि चिन्तयन्।
वितथाभिनिवेशी च जायतेऽन्त्यासु योनिषु ॥३४॥

किसी कर्म का फल परलोक में, किसी का यहाँ ही और किसी का यहाँ वहाँ दोनों स्थल में होता है। इसमें भी जैसा भाव (अभिलाषा) हो ॥ ३३ ॥ (पहले कहा है कि मनोवाक्काय कर्मों से चाण्डाल आदि योनि मिलती हैं उसी को बढ़ा के दिखाते हैं) जो दूसरे के द्रव्य के हरने की चिन्ता सदा करता रहता है और अनिष्ट (ब्रह्महत्यादि हिंसा) का चिन्तन करता और झूठी बात में बारंबार यह संकल्प करता है वह चाण्डाल होता है ॥ ३४ ॥

पुरुषोऽनृतवादी च पिशुनः पुरुषस्तथा।
अनिबद्धप्रलापी च मृगपक्षिषु जायते ॥ ३५ ॥
अदत्तादाननिरतः परदारोपसेवकः।
हिंसकश्चाविधानेन स्थावरेऽप्यभिजायते ॥ ३६ ॥

जो पुरुष झूठ बोलता, चुगली खाता, कठोर वचन बोला करता और प्रेमसंग की बात कहा करता है वह मृग और पक्षी की योनि में उत्पन्न होता है ॥ ३५ ॥ जो विना दिये ही दूसरे का धन लेता रहता है और दूसरे की स्त्री में आसक्त रहता और

यज्ञ आदि के विना ही जीवों को मारा करता है वह स्थावरयोनि में उत्पन्न होता है ॥ ३६ ॥

आत्मज्ञः शौचवान्दान्तस्तपस्वी विजितेन्द्रियः ।
धर्मकृद्वेदविद्यावित्सात्त्विको देवयोनिताम् ॥ ३७ ॥
असत्कार्यरतो धीर आरम्भी विषयी च यः ।
स राजसो मनुष्येषु मृतो जन्माधिगच्छति ॥ ३८ ॥

जो आत्मज्ञानी (विद्या और धन आदि के गर्व से रहित) होता है शौचवान् (वाह्य आभ्यन्तर की शुद्धि से युक्त), शान्ति रखनेवाला, तपस्वी, जितेन्द्रिय, धर्म करनेवाला और वेदों का अर्थ जाननेवाला होता है वह सात्त्विक (सतोगुणवाला) देवयोनि को प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥ जो असत्कार्य (नृत्यगीत आदि) में सदा रत, व्यग्रचित्त (कार्यों से व्याकुल) और विषयों में लिपटा रहता है वह रजोगुणवाला मरने पर मनुष्य की योनि में उत्पन्न होता है ॥ ३८ ॥

निद्रालुः क्रूरकृल्लुब्धो नास्तिको याचकस्तथा ।
प्रमादवान् भिन्नवृत्तो भवेत्तिर्यक्षु तामसः ॥ ३९ ॥
रजसा तमसा चैवं समाविष्टो भ्रमन्निह ।
भावैरनिष्टैः संयुक्तः संसारं प्रतिपद्यते ॥ ४० ॥

जो निद्रालु (अधिक सोनेवाला) जीवों को पीड़ा देनेवाला, लोभी, नास्तिक (धर्मनिन्दक), याचक (मंगन), प्रमादी (कार्यविवेक से रहित) और उलटे आचार से युक्त होता है वह तामस (तमोगुणवाला) तिर्यक्योनि (पशु पक्षी आदि योनि) में उत्पन्न होता है ॥ ३९ ॥ इस प्रकार जो रजोगुण और तमोगुण

से युक्त होकर अनेक प्रकार के दुःख देनेवाले भाव से युक्त होता है वह पुनः पुनः शरीर धरता है ॥ ४० ॥

मलिनो हि यथादर्शो रूपालोकस्य न क्षमः ।
तथाविपक्वकरणं आत्मज्ञानस्य न क्षमः ॥ ४१ ॥
कट्वेर्वारो यथा पक्वे मधुरः सन् रसोपि न ।
प्राप्यते ह्यात्मनि तथानापक्वकरणेज्ञता ॥ ४२ ॥

अब पूर्व जन्म की सुधि क्यों नहीं रखता इत्यादि दूसरे प्रश्न का उत्तर देते हैं जिस प्रकार मलिन दर्पण में रूप नहीं देख पड़ता ऐसे ही आत्मा भी अविपक्वकरण (राग द्वेष आदि मल से आक्रान्त चित्त) होने से पूर्वजन्म की बातों के जानने में समर्थ नहीं होता ॥ ४१ ॥ जिस प्रकार कड़ुई (तीत) ककड़ी में विना पके उसका मधुर रस प्रकट नहीं होता इसी तरह जब तक आत्मा के करण (इन्द्रिय अपक्व राग द्वेष आदि मल से युक्त) रहते हैं तब तक जानने की शक्ति नहीं होती ॥ ४२ ॥

सर्वाश्रयां निजे देहे देही विन्दति वेदनाम् ।
योगी मुक्तश्च सर्वासां यो न प्राप्नोति वेदनाम् ॥४३॥
आकाशमेकं हि यथा घटादिषु पृथग्भवेत् ।
तथात्मैको ह्यनेकश्च जलाधारेष्विवांशुमान् ॥४४॥

जिसको देह का अभिमान लगा है वह अपनी देह में सर्वाश्रय (आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक) वेदना को पाता है और जो योगी अहंकार आदि से रहित है वह दूसरों की वेदना जानता है और आप उनको नहीं पाता ॥ ४३ ॥ जिस प्रकार आकाश एक ही है परन्तु घट आदि उपाधिभेद से

घटाकाश, मठाकाश ऐसे भिन्न-भिन्न नाम से कहा जाता है अथवा जैसे सूर्य एक ही है परन्तु जिस-जिस प्रकार के पात्र में जल रक्खोगे उसमें वैसा ही दीख पड़ने से अनेक प्रकार का मालूम होता है इसी प्रकार आत्मा एक ही है परन्तु अन्तःकरण उपाधि-भेद से अनेक जान पड़ता है ॥ ४४ ॥

ब्रह्मखानिलतेजांसि जलं भूश्चेति धातवः ।
इमे लोका एष आत्मा तस्माच्च सचराचरम् ॥ ४५ ॥
मृद्दण्डचक्रसंयोगात्कुम्भकारो यथा घटम् ।
करोति तृणमृत्काष्ठैर्गृहं वा गृहकारकः ॥ ४६ ॥

ब्रह्म (आत्मा) आकाश, वायु, अग्नि, जल और भूमि ये सब धातु कहलाते हैं क्योंकि शरीर में व्याप्त होकर उसका धारण करते हैं । और इन आकाश आदि को लोक जड़ भी कहते हैं । और यह ज्ञानमय आत्मा कहलाता है । इन दोनों से चराचर जगत् उत्पन्न होता है ॥ ४५ ॥ जिस प्रकार मिट्टी, दंड और चक्र से कुम्हार घड़ा बनाता है एवं तृण, मृत्तिका और काठ से गृहकारक (बढ़ई) घर बनाता है ॥ ४६ ॥

हेमपात्रमुपादाय रूपं वा हेमकारकः ।
निजलालासमायोगात्कोशं वा कोशकारकः ॥४७॥
करणान्येवमादाय तासु तास्विह योनिषु ।
सृजत्यात्मानमात्मा च सम्भूयकरणानि च ॥४८॥

केवल सुवर्ण से सोनार विविध भाँति के रूप बनाता है और अपनी लाला (लार) से मकड़ी कोश (जाला) तनती है ॥ ४७ ॥ इसी प्रकार इन्द्रियों को और पृथ्वी आदि महाभूतों

को लेकर आत्मा भिन्न-भिन्न योनियों में अपने ही को (निज कर्म से बँधा हुआ) उपजाता है ॥ ४८ ॥

महाभूतानि सत्यानि यथात्मापि तथैव हि ।
कोन्यथैकेन नेत्रेण दृष्टमन्येन पश्यति ॥ ४६ ॥
वाचं वा को विजानाति पुनः संश्रुत्य संश्रुताम् ।
अतीतार्थः स्मृतिः कस्य को वा स्वप्नस्य कारकः ॥५०॥

जिस प्रकार (पृथ्वी आदि) महाभूत सच हैं, इसी प्रकार आत्मा भी सच है। नहीं तो एक इन्द्रिय में जो वस्तु जानी गई है उसको दूसरी से यह वही चीज़ है ऐसा कौन जानता ॥४६॥ और एक समय सुनी हुई बात को फिर यह वही बात है ऐसा कौन जानता, जो बातें बहुत दिन की हो गई हैं उनकी सुधि कौन रखता, जो बातें स्वप्न में देखीं उनका स्मरण किसको होता (क्योंकि उस समय सब इन्द्रियों का व्यापार विरुद्ध रहता) है ॥ ५० ॥

जातिरूपवयोवृत्तविद्यादिभिरहङ्कृतः ।
शब्दादिविषयोद्योगं कर्मणा मनसा गिरा ॥ ५१ ॥
स सन्दिग्धमतिः कर्मफलमस्ति न वेति वा ।
विप्लुतः सिद्धमात्मानमसिद्धोऽपि हि मन्यते ॥ ५२ ॥

जाति, रूप और विद्या आदि से हमीं युक्त हैं ऐसा अहंकार किसको होता और सुनना, स्पर्श करना आदि जो विषय के भोग हैं इनके लिये उद्यम कौन करता; इसलिये बुद्धि और इन्द्रियों से अलग एक आत्मा है यह सिद्ध है ॥ ५१ ॥ वह आत्मा अहं-कार आदि से दूषित होके सब कर्मों में फल है, वा नहीं है ऐसा

सन्देह बुद्धि में लाता है और अपने को कृतार्थ न हो तो भी कृतार्थ मानता है ॥ ५२ ॥

मम दाराः सुतामात्या अहमेषामिति स्थितिः ।
हिताहितेषु भावेषु विपरीतमतिः सदा ॥ ५३ ॥
ज्ञेयज्ञे प्रकृतौ चैव विकारे चाविशेषवान् ।
अनाशकानलापातजलप्रपतनोद्यमी ॥ ५४ ॥

उस (अहंकारादि दूषित आत्मा) को यह ममता होती है कि ये हमारे स्त्री, पुत्र और भृत्य हैं और मैं इनका हूँ और हित तथा अनहित कार्यों में सदा विपरीत मति होती है, यह शास्त्र-मर्यादा है ॥ ५३ ॥ ज्ञेयज्ञ आत्मा प्रकृति (आत्मा के गुण की साम्यावस्था) और विकार अहंकार आदि से विवेकरहित होता है और अनशन (खाना छोड़ देना) अग्नि और जल में प्रवेश करना और ऊँचे स्थल से गिर के मरजाना इत्यादि बातों में उद्यम करता है ॥ ५४ ॥

एवं वृत्तोऽविनीतात्मा वितथाभिनिवेशवान् ।
कर्मणा द्वेषमोहाभ्यामिच्छया चैव बध्यते ॥ ५५ ॥
आचार्योपासनं वेदशास्त्रार्थेषु विवेकिता ।
तत्कर्मणामनुष्ठानं सङ्गः सद्भिर्गिरः शुभाः ॥ ५६ ॥

ऐसा अविनीतात्मा होकर झूठा संकल्प करता हुआ कर्म, राग, द्वेष, मोह और इच्छा से बाँधा जाता है ॥ ५५ ॥ मुक्ति का उपाय कहते हैं । विद्या के लिये गुरु की उपासना, वेदांत और योगशास्त्र आदि के अर्थ का विवेक रखना, उनमें जो कर्म कहे हैं उन्हें करना, सज्जनों से संग करना, प्रिय वचन बोलना ॥५६॥

स्त्र्यालोकालम्भविगमः सर्वभूतात्मदर्शनम् ।
त्यागः परिग्रहाणां च जीर्णकाषायधारणम् ॥ ५७ ॥
विषयेन्द्रियसंरोधस्तन्द्रालस्यविवर्जनम् ।
शरीरपरिसंख्यानं प्रवृत्तिष्वघदर्शनम् ॥ ५८ ॥

स्त्रियों का देखना और स्पर्श त्याग देना, सब जीवों को अपने समान जानना, परिग्रह (पुत्र स्त्री आदि) का त्याग करना पुराना वस्त्र पहनना ॥ ५७ ॥ विषयों से इन्द्रियों को रोकना तन्द्रा (जंभाई) और आलस्य (अनुत्साह) को छोड़ना, देह में अपवित्रता आदि दोषों को समझा करना, सब प्रवृत्तियों (गमन आदि) में अघ (पाप) को देखना ॥ ५८ ॥

नीरजस्तमता सत्त्वशुद्धिर्निःस्पृहता शमः ।
एतैरुपायैः संशुद्धः सत्त्वयोग्यमृती भवेत् ॥ ५९ ॥
तत्त्वस्मृतेरुपस्थानात् सत्त्वयोगात्परिक्षयात् ।
कर्मणां सन्निकर्षाच्च सतां योगः प्रवर्तते ॥ ६० ॥

रजोगुण और तमोगुण का परित्याग (प्राणायाम आदि से अन्तःकरण की शुद्धि), विषयों में अभिलाष न रखना और शम (संयम) रखना, इन सब उपायों से शुद्ध होकर केवल सतोगुणयुक्त होकर ब्रह्म की उपासना करे, तो मुक्त होता है ॥ ५९ ॥ तत्त्व (आत्मा) का सदा स्मरण होने से, सतोगुण (शुद्धि) के योग से, कर्मों के नाश होने से और सज्जनों के संग से आत्मा का योग होता है ॥ ६० ॥

शरीरसंक्षये यस्य मनः सत्त्वस्थमीश्वरम् ।
अविप्लुतमतिः सम्यग्जातिसंस्मरतामियात् ॥ ६१ ॥

यथा हि भरतो वर्णैर्वर्णयत्यात्मनस्तनुम् ।
नानारूपाणि कुर्वाणस्तथात्मा कर्मजास्तनूः ॥६२॥

जिस अविप्लुतमति (अहंकार आदि से अदूषित बुद्धि) का मन शरीरत्याग समय में सत्त्वगुणयुक्त होकर ईश्वर में लगता है, वह यदि परमगति न पावे तो पूर्वजन्मों का स्मरण तो उसे होता ही है ॥ ६१ ॥ जिस प्रकार नट अनेक रूप बनाने के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार का वेष बनाता है इसी प्रकार अपने (शुभा-शुभ) कर्मों से उत्पन्न शरीर आत्मा धारण करता है ॥ ६२ ॥

कालकर्मात्मबीजानां दोषैर्मातुस्तथैव च ।
गर्भस्य वैकृतन्दृष्टमङ्गहीनादिजन्मनः ॥ ६३ ॥
अहङ्कारेण मनसा गत्या कर्मफलेन च ।
शरीरेण च नात्मायं मुक्तपूर्वः कथञ्चन ॥ ६४ ॥

काल, कर्म और आत्मा बीज (अपनी उत्पत्ति का कारण पिता का बीज) और माता के (रज के) दोप इन सब दोषों से भी गर्भ का विकार होकर अंगहीन आदि का जन्म होता है ॥ ६३ ॥ अहंकार, मन, संसार के हेतुभूत जो दोष हैं धर्म अधर्मरूपी कर्मों का फल और सूक्ष्म शरीर इन सबसे यह आत्मा मोक्ष होने बिना कभी नहीं छूटता है ॥ ६४ ॥

वर्त्याधारः स्नेहयोगाद्यथा दीपस्य संस्थितिः ।
विक्रियापि च दृष्टैवमकाले प्राणसङ्क्षयः ॥ ६५ ॥
अनन्ता रश्मयस्तस्य दीपवद्यः स्थितो हृदि ।
सितासिताः कर्बुनीलाः कपिलापीतलोहिताः ॥ ६६ ॥

जैसे एक ही दीपक में कई वत्तियाँ और तेल के योग से जलते दीप को प्रबल वायु एक साथ ही सबको बुझा देता है इसी प्रकार अकाल में भी मनुष्यों का प्राणत्याग हो जाता है ॥ ६५ ॥ मोक्षमार्ग कहते हैं । जो आत्मा दीप के सदृश हृदय में स्थित है उसकी श्वेत, काली, कबरी, नीली, कपिला, पीली और लाल रंग की असंख्य नाड़ियाँ हैं ॥ ६६ ॥

ऊर्ध्वमेकः स्थितस्तेषां यो भित्त्वा सूर्यमण्डलम् ।
ब्रह्मलोकमतिक्रम्य तेन याति परां गतिम् ॥ ६७ ॥
यदस्यान्यद्रश्मिशतमूर्ध्वमेव व्यवस्थितम् ।
तेन देवशरीराणि तैजसानि प्रपद्यते ॥ ६८ ॥

उनमें एक नाड़ी जो ऊपर की ओर सूर्यमण्डल को भेद कर ब्रह्मा के स्थान से भी परे चली गई है उसीके द्वारा परमगति को प्राप्त होता है ॥ ६७ ॥ इस आत्मा की मुक्तिनाड़ी से भिन्न और जो सैकड़ों ऊर्ध्वमुख नाड़ियाँ हैं उनसे देवताओं के धाम और शरीर प्राप्त होते हैं ॥ ६८ ॥

येनैकरूपश्चाधस्ताद्रश्मयोऽस्य मृदुप्रभाः ।
इह कर्मोपभोगाय तैः संसरति सोऽवशः ॥ ६९ ॥
वेदैः शास्त्रैः सविज्ञानैर्जन्मना मरणेन च ।
आर्त्या गत्या तथागत्या सत्येन ह्यनृतेन च ॥ ७० ॥

और जो उसके नीचे कम ज्योतिवाली नाड़ियाँ हैं उनके द्वारा इस संसार में अपने कर्मों का भोग करने के लिये जन्म पाता है ॥ ६९ ॥ वेद, शास्त्र, अनुभव, जन्म, मरण, पीड़ा, चलना, न चलना, सचाई, झुठाई ॥ ७० ॥

श्रेयसा सुखदुःखाभ्यां कर्मभिश्च शुभाशुभैः ।
निमित्तशाकुनज्ञानग्रहसंयोगजैः फलैः ॥ ७१ ॥
तारानक्षत्रसञ्चारैर्जागरैः स्वप्नजैरपि ।
आकाशपवनज्योतिर्जलभूतिमिरैस्तथा ॥ ७२ ॥

हित वस्तु का मिलना (परलोक के) सुख और दुःख अच्छे और बुरे कर्म, निमित्त (भूकम्प आदि) शकुन ज्ञान (पक्षी की चेष्टा जाननी) (सूर्य आदि) ग्रहों के संयोग से जो फल उत्पन्न हो ॥ ७१ ॥ तारा (अश्विनी आदि सत्ताईस से भिन्न) और नक्षत्र (अश्विनी आदि) इनकी गति द्वारा शुभाशुभ फल जानना, जागते वा सोते समय जो भला बुरा देखें, आकाश, वायु, ज्योति (सूर्य आदि) जल, भूमि और अन्धकार जो ये जीवों के उपभोग के लिये बने हैं ॥ ७२ ॥

मन्वन्तरैर्युगप्राप्त्या मन्त्रौषधिफलैरपि ।
वित्तात्मानं वेद्यमानं कारणं जगतस्तथा ॥ ७३ ॥
अहङ्कारः स्मृतिर्मेधा द्वेषो बुद्धिः सुखं धृतिः ।
इन्द्रियान्तरसञ्चार इच्छा धारणजीविते ॥ ७४ ॥

मन्वंतर (मनु का बदलना) युग का बदलना और मंत्र तथा औषधियों का फल इन सब बातों से हे मुनि लोगो ! देह से पृथक् आत्मा है और वह जगत् का कारण है ऐसा समझो ॥ ७३ ॥ अहंकार स्मरण मेधा (धारणा) द्वेष, बुद्धि, सुख, धैर्य, इन्द्रियान्तर संचार (अर्थात् एक इन्द्रिय से जानी हुई चीज़ का दूसरी से स्मरण करना) इच्छा धारणा, जीना ॥ ७४ ॥

स्वर्गः स्वप्नश्च भावानां प्रेरणां मनसो गतिः ।
निमेषश्चेतना यत्न आदानं पाञ्चभौतिकम् ॥७५॥
यत एतानि दृश्यन्ते लिङ्गानि परमात्मनः ।
तस्मादस्ति परो देहादात्मा सर्वग ईश्वरः ॥ ७६ ॥

स्वर्ग, स्वप्न, इन्द्रियों की प्रेरणा, मन की गति, निमेष (पलक मारना), चेतना, यत्न, पञ्चभूतों का धारण ॥ ७५ ॥ इतने सब परमात्मा के चिह्न देख पड़ते हैं । इसलिये देह से अलग कोई आत्मा, जो सर्वज्ञ ईश्वर और सबमें व्याप्त है यह बात सिद्ध भई ॥ ७६ ॥

बुद्धीन्द्रियाणि सार्थानि मनःकर्मेन्द्रियाणि च ।
अहङ्कारश्च बुद्धिश्च पृथिव्यादीनि चैव हि ॥७७॥
अव्यक्तमात्मक्षेत्रज्ञः क्षेत्रस्यास्य निगद्यते ।
ईश्वरः सर्वभूतस्थः सन्नसन्सदसच्च यः ॥ ७८ ॥

शब्द आदि अपने विषयों सहित श्रोत्र आदि बुद्धि इन्द्रिय मन वाणी आदि कर्मेन्द्रिय, अहंकार, बुद्धि, पृथ्वी आदि पञ्च महाभूत ॥ ७७ ॥ और अव्यक्त (प्रकृति) ये सब उस सर्वव्यापी और ईश्वर सत् असत् रूपधारी के स्थान हैं और इनमें रहकर वह आत्मा और क्षेत्रज्ञ कहा जाता है ॥ ७८ ॥

बुद्धेरुत्पत्तिरव्यक्तात्ततोऽहङ्कारसम्भवः ।
तन्मात्रादीन्यहङ्कारादेकोत्तरगुणानि च ॥ ७९ ॥
शब्दस्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च तद्गुणाः ।
यो यस्मान्निःसृतश्चैषां स तस्मिन्नेव लीयते ॥८०॥

अव्यक्त (सत्त्व रज तम इन तीनों गुणों की साम्यावस्था) से बुद्धि की उत्पत्ति होती है । उससे अहंकार और अहंकार से तन्मात्रा आदि उत्पन्न होती हैं । और इनमें क्रम से एक २ गुण अधिक होते हैं ॥ ७९ ॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये सब उन आकाश आदि पञ्चभूतों के गुण हैं और जो जिससे निकलता है वह प्रलयसमय उसी में लीन हो जाता है ॥ ८० ॥

यथात्मानं सृजत्यात्मा तथा वः कथितो मया ।
विपाकात्त्रिःप्रकाराणां कर्मणामीश्वरोऽपि सन् ॥ ८१ ॥
सत्त्वं रजस्तमश्चैव गुणास्तस्यैव कीर्त्तिताः ।
रजस्तमोभ्यामाविष्टश्चक्रवद्भ्राम्यते ह्यसौ ॥ ८२ ॥

ईश्वर भी होकर जिस तौर यह आत्मा मानस आदि तीनों प्रकार के कर्मों के विपाक होने से आत्मा (जीव) को सिरजता है सो मैंने आप लोगों से कहा ॥ ८१ ॥ सत्त्व, रज और तम ये तीनों गुण भी उसीके हैं और रजोगुण तमोगुण से युक्त होकर चक्र के सदृश वही आत्मा इस संसार में घूमता है यह भी कहा ॥ ८२ ॥

अनादिरादिमांश्चैव स एव पुरुषः परः ।
लिङ्गेन्द्रियग्राह्यरूपः सविकार उदाहृतः ॥ ८३ ॥
पितृयानोऽजवीथ्याश्च यदगस्त्यस्य चान्तरम् ।
तेनाग्निहोत्रिणो यान्ति स्वर्गकामा दिवं प्रति ॥ ८४ ॥

वह अनादि परम पुरुष शरीर धारणरूपी विकार से आदिमान होता है चिह्न और इन्द्रियों से देखने योग्य भी होता है ॥ ८३ ॥ अजवीथी देवताओं का पथ और अगस्त्य के तारा

के बीच पितृयान है उसीमें होकर स्वर्ग की इच्छा से यज्ञ करनेवाले अग्निहोत्री लोग स्वर्ग जाते हैं * ॥ ८४ ॥

ये च दानपराः सम्यगष्टाभिश्च गुणैर्युताः।
तेऽपि तेनैव मार्गेण सत्यव्रतपरायणाः ॥ ८५ ॥
तत्राष्टाशीतिसाहस्रा मुनयो गृहमेधिनः।
पुनरावर्तिनो बीजभूता धर्मप्रवर्त्तकाः ॥ ८६ ॥

जो लोग अहंकार छोड़कर दानशील होकर, दया, क्षांति, अनसूया, शौच, अनायास, मंगल, अकार्पण्य और अस्पृहा इन आत्मा के आठों गुणों से युक्त हैं, वे भी सत्यवादी उसी मार्ग से स्वर्ग को जाते हैं ॥ ८५ ॥ उसी पितृयान में अट्ठासी हज़ार मुनि गृहस्थ धर्मवाले रहते हैं। उनका यही धर्म है कि वार-वार सृष्टि के आदि में धर्म का उपदेश करके उसका बीज बोते हैं ॥ ८६ ॥

सप्तर्षिनागवीथ्यन्तर्देवलोकं समाश्रिताः।
तावन्त एव मुनयः सर्वारम्भविवर्जिताः ॥ ८७ ॥

---

* विष्णु, वायु और मत्स्यपुराण में, नागवीथी, अजवीथी, वृषभवीथी आदि का वर्णन है। अश्विनी आदि २७ नक्षत्रों का विभाग करके इनकी कल्पना की है। उसीके अनुसार देवयान और पितृयान अर्थात् उत्तरायण, दक्षिणायन का कल्पना भी होती है। इन वीथियों का वर्णन वराहमिहिर ने 'बृहत्संहिता' के शुक्रचाराध्याय में किया है। अगस्त्य तारा दक्षिण में है, इस कारण पितृयान मार्ग में उसका निर्देश किया है। इन दोनों यानों की कल्पना का मूल ऋग्वेद में भी है। वास्तव में सूर्यभ्रमण मार्ग-क्रान्तिवृत्त के अंशों की कल्पना मात्र है। उससे सब सङ्गति स्पष्ट ज्ञात होजाती है।

तपसा ब्रह्मचर्येण सङ्गत्यागेन मेधया ।
तत्र गत्वावतिष्ठन्ते यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ८८ ॥

सप्तर्षि और नागवीथी (ऐरावत पथ) के बीच देवलोक में रहनेवाले, उतने ही (अट्ठासी हज़ार) मुनि सब काम छोड़कर केवल ज्ञान में रत ॥ ८७ ॥ तपस्या, ब्रह्मचर्य, संगत्याग और मेधा इन सब गुणों से युक्त महाप्रलय तक स्थित रहते हैं ॥ ८८ ॥

यतो वेदाः पुराणानि विद्योपनिषदस्तथा ।
श्लोकाःसूत्राणि भाष्याणि यच्च किञ्चन वाङ्मयम् ८९
वेदानुवचनं यज्ञो ब्रह्मचर्यं तपो दमः ।
श्रद्धोपवासः स्वातन्त्र्यमात्मनो ज्ञानहेतवः ॥ ९० ॥

और उन्हीं से वेद, पुराण, अंगविद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, भाष्य और जो कुछ शास्त्र हैं सब प्रचलित हुए हैं ॥८९॥ वेदों का पढ़ना, यज्ञ करना, ब्रह्मचर्य रखना, तपस्या, इन्द्रियों का दमन, धर्म में श्रद्धा, उपवास और स्वतंत्रता (निश्चिन्ताई) इन सबसे ज्ञान होता है ॥ ९० ॥

स ह्याश्रमैर्विजिज्ञास्यः समस्तैरेवमेव तु ।
द्रष्टव्यस्त्वथ मन्तव्यः श्रोतव्यश्च द्विजातिभिः॥ ९१ ॥
य एनमेवं विन्दन्ति ये चारण्यकमाश्रिताः ।
उपासते द्विजाः सत्यं श्रद्धया परया युताः ॥ ९२ ॥

द्विज लोग, हर एक आश्रम में उस आत्मा की जिज्ञासा (खोज) करें उसी का मनन, ध्यान और विचार करें । आत्मज्ञान के ही उपाय पूर्व कहे हैं ॥ ९१ ॥ जो द्विज बड़ी श्रद्धा से

शुद्ध होकर इस आत्मा की उपासना कही रीति से अरण्य (निर्जन प्रदेश) में करते हैं वे उसको पाते हैं ॥ ९२ ॥

क्रमात्ते सम्भवन्त्यर्चिरहः शुक्लन्तथोत्तरम् ।
अयनं देवलोकं च सवितारं सवैद्युतम् ॥ ९३ ॥
ततस्तान्पुरुषोऽभ्येत्य मानसो ब्रह्मलौकिकान् ।
करोति पुनरावृत्तिस्तेषामिह न विद्यते ॥ ९४ ॥

जिन्हें आत्मज्ञान होता है वे क्रम से अग्नि, दिन, शुक्लपक्ष, उत्तरायण, देवलोक, सूर्य और विद्युत् (बिजली) इन सब मुक्ति की राह दिखानेवाले देवताओं के लोक में जाकर उन्हीं का-सा रूप पाते हैं ॥ ९३ ॥* मानस (जिसकी उत्पत्ति मन के संकल्प से है) पुरुष आकर उनको ब्रह्मलोक में पहुँचाता है और वहाँ से फिर उनका जन्म नहीं होता। क्योंकि परमात्मा में लीन होजाते हैं ॥ ९४ ॥

यज्ञेन तपसा दानैर्ये हि स्वर्गजितो नराः ।
धूमं निशां कृष्णपक्षं दक्षिणायनमेव च ॥ ९५ ॥
पितृलोकं चन्द्रमसं वायुं वृष्टिं जलं महीम् ।
क्रमात्ते सम्भवन्तीह पुनरेव व्रजन्ति च ॥ ९६ ॥

जो लोग यज्ञ तपस्या और दान देने से स्वर्ग में जाते हैं वे अपने पुण्य का फल भोगने के अनन्तर क्रम से धूम, निशा,

---

* देवयान मार्ग 'तेऽर्चिरभिसम्भवन्त्यर्चिषोऽहरह्न आपूर्यमाण'... इत्यादि श्रुति के अनुसार होता है। और पितृयान 'धूममभिसंभवन्ति धूमाद्रात्रिं रात्रेरपरपक्षम्' इत्यादि है। ज्योतिष सिद्धान्त से मेष आदि ६ राशि देवयान और तुलादि ६ राशि पितृयान हैं अर्थात् उत्तरायण और दक्षिणायन ।

कृष्णपक्ष, दक्षिणायन ॥ १९५ ॥ पितृलोक, चन्द्रलोक, इनके देवता का लोक पाते हैं। फिर वायु वृष्टि जल और भूमि को प्राप्त होकर अन्न आदि के वीर्य का रूप होकर संसार में आते हैं ॥ १९६ ॥

एतद्यो न विजानाति मार्गद्वितयमात्मवान् ।
दन्दशूकः पतङ्गो वा भवेत्कीटोऽथवा कृमिः ॥ १९७॥
ऊरुस्थोत्तानचरणः सव्ये न्यस्योत्तरं करम् ।
उत्तानं किञ्चिदुन्नाम्य मुखं विष्टभ्य चोरसा ॥ १९८ ॥

जो इन दोनों पथों के धर्मों का आचरण नहीं करता वह सांप पक्षी और कीड़े मकोड़ों का जन्म पाता है ॥ १९७ ॥ उपासना का प्रकार कहते हैं—पद्मासन से बैठकर, बाँयें हाथ की हथेली में दहिना हाथ उतान रखकर मुँह कुछ ऊपर को उठा वा छाती से रोककर ॥ १९८ ॥

निमीलिताक्षः सत्त्वस्थो दन्तैर्दन्तानसंस्पृशन् ।
तालुस्थाचलजिह्वश्च संवृतास्यः सुनिश्चलः ॥ १९९॥
संनिरुध्येन्द्रियग्रामं नातिनीचोच्छ्रितासनः ।
द्विगुणं त्रिगुणं वापि प्राणायाममुपक्रमेत् ॥ २०० ॥

आँखें मूँदकर काम क्रोध आदि से रहित होकर दाँतों से दाँत न मिलाकर, तालू में जीभ को अचल रखकर मुख मूँद निश्चल होकर बैठे ॥ १९९ ॥ इन्द्रियों को अपने-अपने विषयों से अच्छी तरह रोक और न बहुत नीचे और न ऊँचे आसन पर बैठकर दूना वा तिगुना प्राणायाम करने का आरम्भ करे ॥ २०० ॥

ततो ध्येयः स्थितो योऽसौ हृदये दीपवत्प्रभुः।
धारयेत्तत्र चात्मानं धारणां धारयन्बुधः॥ १॥
अन्तर्द्धानं स्मृतिः कान्तिर्दृष्टिः श्रोतज्ञता तथा।
निजं शरीरमुत्सृज्य परकायप्रवेशनम्॥ २॥

जब प्राणवायु अपने वश में हो जावे, तो निश्चल दीप के समान प्रभु का हृदय में ध्यान करना और उस हृदय में आत्मा का धारण करना। धारण (एक प्रकार का प्राणायाम) भी विज्ञ-लोगों को रखना चाहिये॥ १॥ अन्तर्द्धान (अदृश्य होजाना) स्मृति (अतीन्द्रिय बातों का स्मरण) कांति (शोभा) दृष्टि (जो होगई है वा होनेवाली बात है, उसका देखना) श्रोत्रज्ञता (बड़ी-बड़ी दूर की बातों को सुन लेना) अपना शरीर छोड़कर दूसरे के शरीर में प्रवेश कर जाना॥ २॥

अर्थानां छन्दतः सृष्टिर्योगसिद्धेर्हि लक्षणम्।
सिद्धेर्योगे त्यजन्देहममृतत्वाय कल्पते॥ ३॥
अथवाप्यभ्यसन्वेदं न्यस्तकर्मा वने वसन्।
अयाचिताशी मितभुक् परां सिद्धिमवाप्नुयात्॥ ४॥

और अपनी इच्छा ही से जिस चीज़ को चाहे उत्पन्न करले ये सब योग सिद्धि के लक्षण हैं। और जब योग सिद्ध भया तो देहत्याग करने से ब्रह्मरूप हो जाता है॥ ३॥ अथवा (यज्ञ दान आदि न कर सके तो) किसी वेद का अभ्यास करते सब काम छोड़ वन में रहकर विना माँगे जो मिले उसे परमित भोजन करता रहे। इस प्रकार परम सिद्धि (मुक्ति) को पाता है॥ ४॥

न्यायागतधनस्तत्त्वज्ञाननिष्ठोऽतिथिप्रियः ।
श्राद्धकृत्सत्यवादी च गृहस्थोऽपि हि मुच्यते ॥ ५ ॥

जिसने धर्म से धन कमाया हो, जो तत्त्वज्ञान में निष्ठा (प्रीति) रखता हो, अतिथि को प्यार करे, श्राद्ध करनेवाला और सत्यवादी हो, तो वह गृहस्थ भी मुक्त होता है ॥ ५ ॥

इति अध्यात्मप्रकरण समाप्त ।

अथ प्रायश्चित्तप्रकरण ।

महापातकजान् घोरान् नरकान्प्राप्य दारुणान् ।
कर्मक्षयात्प्रजायन्ते महापातकिनस्त्विह ॥ ६ ॥

महापातक (ब्रह्महत्यादि पाँच) से उत्पन्न घोर नरकों के भोगने से जब कर्म का क्षय होता है, तो महापातकी लोग इस संसार में, जिन-जिन योनियों को प्राप्त होते हैं, वे इस प्रकार हैं ॥६॥

मृगश्वशूकरोष्ट्राणां ब्रह्महा योनिमृच्छति ।
खरपुष्कसवेनानां सुरापो नात्र संशयः ॥ ७ ॥
कृमिकीटपतङ्गत्वं स्वर्णहारी समाप्नुयात् ।
तृणगुल्मलतात्वं च क्रमशो गुरुतल्पगः ॥ ८ ॥

मृगा (हिरन), कुत्ता, सुअर और ऊँट का जन्म ब्रह्मघाती पाता है । सुरा पीनेवाला गधा, पुष्कस (प्रतिलोम निषाद से शूद्र की स्त्री में उत्पन्न) और वेन (वैदेहक से आंबष्ठी में उत्पन्न) का जन्म पाता है ॥ ७ ॥ सोना चुरानेवाला कृमि, कीट और पतंग का जन्म और गुरुपत्नीभोक्ता तृण, गुल्म और लता का जन्म पाता है ॥ ८ ॥

ब्रह्महा क्षयरोगी स्यात् सुरापः श्यावदन्तकः ।
हेमहारी तु कुनखी दुश्चर्मा गुरुतल्पगः ॥ ९ ॥
यो येन संवसत्येषां स तल्लिंगोऽभिजायते ।
अन्नहर्त्तामयावी स्यान्मूको वागपहारकः ॥ १० ॥

ब्रह्मघाती मनुष्य का जन्म पावे तो राजयक्ष्मा रोग होता है और सुरापी काले दाँतवाला. सोना चुरानेवाला सड़े नख का और गुरुतल्पगामी कोढ़ी होता है ॥ ९ ॥ जो इनमें किसी के संग रहे वह भी वैसा ही महापातकी कहलाता है । अन्न चुरावे तो उसे अजीर्ण रोग, वाणी चुरावे (पोथी चुरावे, कपट से पढ़े या विद्या न बतावे) तो मूक (गूंगा) होता है ॥ १० ॥

धान्यमिश्रोऽतिरिक्ताङ्गः पिशुनः पूतिनासिकः ।
तैलहृत्तैलपायी स्यात्पूतिवक्त्रस्तु सूचकः ॥ ११ ॥
परस्य योषितं हृत्वा ब्रह्मस्वमपहृत्य च ।
अरण्ये निर्जले देशे भवति ब्रह्मराक्षसः ॥ १२ ॥

धान्य से मिली हुई चीज़ चुरावे तो उसके कोई अधिक अंग होता है (जैसे छः उँगली), चुगली करनेवाले की नासिका दुर्गन्ध देती है, तेल चुरावे तो तैलपायी (कीड़ा) होता है, सूचक हो (झूठमूठ किसी को दोष लगावे) तो उसका मुँह बसाता है ॥ ११ ॥ जो दूसरे की स्त्री अथवा ब्राह्मण की चीज़ अपहरण करता है, वह निर्जल वन में ब्रह्मराक्षस होता है ॥ १२ ॥

हीनजातौ प्रजायेत पररत्नापहारकः ।
पत्रशाकं शिखी हृत्वा गन्धान्छुच्छुन्दरी शुभान् १३

मूषको धान्यहारी स्याद्यानमुष्ट्रः कपिः फलम् ।
जलं प्लवः पयः काको गृहकारी ह्युपस्करम् ॥ १४ ॥

दूसरे के रत्नों को चुरावे तो हीन जाति (हेमकार नाम पक्षी योनि) में उत्पन्न होता है, जिसमें पत्ते ही हों ऐसा शाक चुरावे तो मोर और सुगन्ध की वस्तु चुरावे तो छछूंदर होता है ॥ १३ ॥ धान चुरावे तो मूस, यान (सवारी) चुरावे तो ऊँट, फल चुरावे तो वानर, जल चुरावे तो प्लव (शकटविल नाम पक्षी), दूध चुरावे तो काक और गृहस्थ की चीज़ चुरावे (मूशल आदि) तो गृहकारी (वरट नामक कीट) होता है ॥ १४ ॥

मधुदंशः फलं गृध्रो गां गोधाग्निं वकस्तथा ।
श्वित्री वस्त्रं श्वा रसं तु चीरी लवणहारकः ॥ १५ ॥
प्रदर्शनार्थमेतत्तु मयोक्तं स्तेयकर्मणि ।
द्रव्यप्रकारा हि यथा तथैव प्राणिजातयः ॥ १६ ॥

मधु चुरावे तो दंश (डांस), मांस चुरावे तो गिद्ध, गौ चुरावे तो गोह, अग्नि चुरावे तो बगला, वस्त्र चुरावे तो कोढ़ी, कोई खट्टा-मीठा आदि रस चुरावे तो कुत्ता होता और निमक चुरावे तो चीरी (ऊँचे स्वर से बोलनेवाला कीट) होता है ॥ १५ ॥ मैंने यह दिखलाने को इतना ही कहा है, परन्तु जिस प्रकार की चीज़ चुरावे वैसी ही जाति में वह उत्पन्न होता है, ऐसा समझना चाहिये १६

यथाकर्म फलं प्राप्यः तिर्यक्त्वं कालपर्ययात् ।
जायन्ते लक्षणभ्रष्टा दरिद्राः पुरुषाधमाः ॥ १७ ॥
ततो निष्कल्मषीभूताः कुले महति भोगिनः ।
जायन्ते विद्ययोपेता धनधान्यसमन्विताः ॥ १८ ॥

अपने किये हुए कर्मों के अनुसार नरक में वास और पशु पक्षी आदि योनि को पाकर कालक्रम से कर्मफल क्षीण होने पर कुरूप और दरिद्री मनुष्य का जन्म होता है ॥ १७ ॥ तब जो अच्छा कर्म करे तो पापरहित होकर बड़े कुल में जन्म पाकर नाना प्रकार के भोग, विद्या और धन धान्य से युक्त होता है ॥१८॥

इति कर्मविपाक प्रकरण समाप्त ।

विहितस्याननुष्ठानान्निन्दितस्य च सेवनात् ।
अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणां नरः पतनमृच्छति ॥ १९ ॥
तस्मात्तेनेह कर्त्तव्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये ।
एवमस्यान्तरात्मा च लोकश्चैव प्रसीदति ॥ २० ॥

जो नित्य वा नैमित्तिक वस्तु विहित है, उसके न करने से, निन्दित वस्तु के करने से और इन्द्रियों का संयम न रखने से मनुष्य पतित होता है ॥ १९ ॥ इसलिये वह पुरुष प्रायश्चित्त करे, उसके करने से वह शुद्ध और उसका अन्तरात्मा प्रसन्न होता है ॥ २० ॥

प्रायश्चित्तमकुर्वाणाः पापेषु निरता नराः ।
अपश्चात्तापिनः कष्टान्नरकान् यान्ति दारुणान् ॥ २१ ॥
तामिस्रं लोहशंकुं च महानिरयशाल्मली ।
रौरवं कुड्मलं पूतिमृत्तिकं कालसूत्रकम् ॥ २२ ॥

जो प्रायश्चित्त नहीं करते और सदा पाप में रत रहते तथा उसका पछतावा भी नहीं करते, वे लोग दारुण कष्ट देनेवाले नरक में जाते हैं ॥ २१ ॥ तामिस्र, लोहशंकु, महानिरय, शाल्मलि, रौरव, कुड्मल, पूतिमृत्तिक, कालसूत्रक ॥ २२ ॥

सङ्घातं लोहितोदं च सविषं संप्रपातनम् ।
महानरककाकोलं सञ्जीवनमहापथम् ॥ २३ ॥
अवीचिमन्धतामिस्रं कुम्भीपाकं तथैव च ।
असिपत्रवनं चैव तापनं चैकविंशकम् ॥ २४ ॥

संघात, लोहितोदक, सविष, संप्रयासन, महानरक, काकोल, संजीवन, महापथ ॥ २३ ॥ अवीचि, अन्धतामिस्र, कुम्भीपाक और असिपत्रवन ये इक्कीस नरक हैं। जैसा इनका नाम है, वैसे ही कष्ट इनमें होते हैं ॥ २४ ॥

महापातकजैर्घोरैरुपपातकजैस्तथा ।
अन्विताया न्त्वचरितप्रायश्चित्ता नराधमाः ॥ २५ ॥
प्रायश्चित्तैरपैत्येनो यदज्ञानकृतं भवेत् ।
कामतो व्यवहार्यस्तु वचनादिह जायते ॥ २६ ॥

जो नरों में अधम महापातक और उपपातक से युक्त और प्रायश्चित्त नहीं करते, वे इन नरकों में पड़ते हैं ॥ २५ ॥ जो पाप अज्ञान से करे वह प्रायश्चित्त करने से दूर होता है और जो जानबूझ कर किया हो वह दूर नहीं होता। परन्तु प्रायश्चित्त करने से धर्मशास्त्र के वचनों के द्वारा लोक में व्यवहार के योग्य होजाता है ॥ २६ ॥

ब्रह्महा मद्यपः स्तेनस्तथैव गुरुतल्पगः ।
एते महापातकिनो यश्च तैः सह संवसेत् ॥ २७ ॥
गुरूणामध्यधिक्षेपो वेदनिन्दा सुहृद्वधः ।
ब्रह्महत्या समं ज्ञेयमधीतस्य च नाशनम् ॥ २८ ॥

ब्राह्मण को मारनेवाला, मदिरा पीनेवाला, ब्राह्मण का सोना चुरानेवाला, गुरु की स्त्री में गमन करनेवाला और जो इनके संग में रहे, ये पाँच महापातकी कहे जाते हैं ॥ २७ ॥ गुरु की झूठी निन्दा, वेद की निन्दा, मित्र का वध और पढ़े हुए शास्त्र को भुलाना ये चारों ब्रह्महत्या के समान हैं ॥ २८ ॥

निषिद्धभक्षणं जैह्म्यमुत्कर्षे च वचोऽनृतम् ।
रजस्वलामुखास्वादः सुरापानसमानि तु ॥ २९ ॥
अश्वरत्नमनुष्यस्त्रीभूधेनुहरणं तथा ।
निक्षेपस्य च सर्वं हि सुवर्णस्तेयसम्मितम् ॥ ३० ॥

लशुन आदि निषिद्ध चीजों का खाना, कुटिलाई करना, बड़ाई के लिये झूठ बात बोलना और रजस्वला स्त्री का मुँह चूमना ये सब सुरापान के तुल्य हैं ॥२९॥ घोड़ा, रत्न, मनुष्य, स्त्री, भूमि, गौ और थाती (रक्खी हुई चीज़ का अपहरण करना) ये सब सुवर्णस्तेय के समान हैं ॥ ३० ॥

सखिभार्याकुमारीषु स्वयोनिष्वन्त्यजासु च ।
सगोत्रासु सुतस्त्रीषु गुरुतल्पसमं स्मृतम् ॥ ३१ ॥
पितुःस्वसारं मातुश्च मातुलानीं स्नुषामपि ।
मातुःसपत्नीं भगिनीमाचार्यतनयां तथा ॥ ३२ ॥

मित्र की स्त्री, उत्तम जाति की क्वारी कन्या, बहिन, चाण्डाली, अपने गोत्र की स्त्री और पुत्र की वधू इन सबमें गमन करना गुरुतल्पगमन के तुल्य है ॥ ३१ ॥ फूफू, माता, मामी, पतोहू, सौतेली माता, बहिन, गुरु की लड़की ॥ ३२ ॥

आचार्यपत्नीं स्वसुतां गच्छंस्तु गुरुतल्पगः ।
लिङ्गं छित्वा वधस्तत्र सकामायाः स्त्रिया अपि ॥ २३ ॥
गोवधो व्रात्यतास्तेयमृणानां चानपाक्रिया ।
अनाहिताग्निता पण्यविक्रयः परिवेदनम् ॥ २४ ॥

गुरु की स्त्री और अपनी लड़की इनमें से किसी का गमन करे तो गुरुतल्पग होता है । राजा उसका लिंग कटवा कर मार डाले । और जो स्त्री ही कामवश होकर इन्हीं पुरुषों के पास जावे तो उसे भी मरवा डाले ॥ २३ ॥ गोवध करना, जिसको जिस समय में कहा है उस समय तक यज्ञोपवीत न देना, चोरी करना, ऋण न देना, अधिकारी होकर अग्निहोत्र न करना, जो बेचने योग्य चीज़ नहीं हैं उनका बेचना, जेठे भाई के रहते ही छोटे का ब्याह करना ॥ २४ ॥

भृतादध्ययनादानं भृतकाध्यापनं तथा ।
पारदार्यं पारिवित्यं वार्धुष्यं लवणक्रिया ॥ २५ ॥
स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रवधो निन्दितार्थोपजीवनम् ।
नास्तिक्यं व्रतलोपश्च सुतानां चैव विक्रयः ॥ २६ ॥

नौकर से पढ़ना, नौकर होकर पढ़ाना, दूसरे की स्त्री का सेवन, छोटे का ब्याह हो बड़े का क्वारा ही रहना, ब्याज लेने की जीविका करना, निमक बनाना ॥ २५ ॥ स्त्री, शूद्र, वैश्य और क्षत्रिय का वध करना, निन्दित वस्तु से जीविका करना, नास्तिकता करना, ब्रह्मचारी होकर स्त्री-गमन करना, अपने लड़कों का बेचना ॥ २६ ॥

धान्यकुप्यपशुस्तेयमयाज्यानां च याजनम् ।
पितृमातृसुतत्यागस्तडागारामविक्रयः ॥ २७ ॥

कन्यासंदूषणं चैव परिविन्दकयाजनम्।
कन्याप्रदानं तस्यैव कौटिल्यं व्रतलोपनम् ॥ ३८ ॥

धान्य, पीतल, सीसा आदि द्रव्य और पशु की चोरी करना, यज्ञ के योग्य जो नहीं (शूद्र आदि) उनको यज्ञ कराना, पिता, माता और लड़का इनका त्याग करना, तालाव और वगीचे को बेचना ॥ ३७ ॥ कन्या का दूषण (अंगुली आदि से योनि विदारण) करना, वड़े भाई के रहते जो पहिले अपना व्याह करे उसको यज्ञ कराना, उसी को कन्यादान देना, कुटिलता करना, व्रत छोड़ना ॥ ३८ ॥

आत्मनोऽर्थे क्रियारम्भो मद्यपस्त्रीनिषेवणम्।
स्वाध्यायाग्निसुतत्यागो बान्धवत्याग एव च ॥३९॥
इन्धनार्थं द्रुमच्छेदः स्त्रीहिंसौषधजीवनम्।
हिंस्रयन्त्रविधानं च व्यसनान्यात्मविक्रयः॥ ४० ॥

अपने ही लिये भोजन वनाना, मदिरा पीनेवाली स्त्री का सेवन, वेद के पाठ-अग्निहोत्र और लड़के को त्यागना, वान्धव (चाचा, मामा आदि) का त्याग करना ॥ ३९ ॥ ईंधन के लिये पेड़ काटना, स्त्री के द्वारा जीवन करना, किसी जीव के वध से या औषध से जीवन करना, हिंसा करनेवाले यंत्रों को वनाना, व्यसन (मृगया आदि १८), अपने को वेचना ॥ ४० ॥

शूद्रप्रेष्यं हीनसख्यं हीनयोनिनिषेवणम्।
तथैवानाश्रमे वासः परान्नपरिपुष्टता ॥ ४१ ॥
असच्छास्त्राधिगमनमाकरेष्वधिकारिता।
भार्याया विक्रयश्चैषामेकैकमुपपातकम् ॥ ४२ ॥

शूद्र की सेवा करना, हीनजाति से मित्रता करना, नीच जाति की स्त्री का भोग, किसी आश्रम में न रहना, दूसरे का अन्न खाकर जीना ॥ ४१ ॥ असत् शास्त्र (नास्तिक आदि के शास्त्रों को) पढ़ना, जहाँ सोना चाँदी आदि निकलें ऐसी खानि में अधिकार पाना और अपनी स्त्री का वेचना इनमें से हर एक कर्म उपपातक कहलाते हैं ॥ ४२ ॥

शिरःकपाली ध्वजवान् भिक्षाशी कर्मवेदयन् ।
ब्रह्महा द्वादशाब्दानि मितभुक्शुद्धिमाप्नुयात ४३॥
ब्राह्मणस्य परित्राणाद्गवां द्वादशकस्य च ।
तथाश्वमेधावभृथस्नानाद्वा शुद्धिमाप्नुयात् ॥४४॥

ब्राह्मण का घात करे तो उसी अपने मारे हुए ब्राह्मण की खोपड़ी हाथ में लेकर और एक दूसरी खोपड़ी को वाँस में बाँध कर ध्वजा वनाकर अपना किया हुआ कर्म सबको सुना कर भीख माँग-माँग के थोड़ा-थोड़ा खावे । इस प्रकार वारह वर्ष व्रत करने से ब्रह्महत्या से छूटता है ॥ ४३ ॥ किसी ब्राह्मण का प्राण बचा देवे अथवा वारह गौ का प्राण बचावे वा किसी के अश्वमेध यज्ञ में अवभृथ नाम स्नान करे, तो उसी समय ब्रह्महत्या से छूट जाता है ॥ ४४ ॥

दीर्घतीव्रामयग्रस्तं ब्राह्मणं गामथापि वा ।
दृष्ट्वा पथि निरातङ्कं कृत्वा वा ब्रह्महा शुचिः ॥४५॥
आनीय विप्रसर्वस्वं हृतं घातित एव वा ।
तन्निमित्तं क्षतः शस्त्रैर्जीवन्नपि विशुद्ध्यति ॥ ४६ ॥

चिरकाल से किसी रोग से ग्रस्त वा बड़े दुःखदायी कुष्ठ

आदि रोग से पीड़ित ब्राह्मण अथवा गौ को राह में देखे और उसकी सेवा करके उसे चंगा करे, तो भी ब्रह्महत्या से छूट जाता है ॥ ४५ ॥ जो कोई ब्राह्मण का सर्वस्व धन हरता हो उससे लड़ाई करके ब्राह्मण का धन बचावे और घायल होकर जीवे, तो ब्रह्महत्या से छूट जाता है । यदि मर जाय तो भी ब्रह्महत्या से दूर होजाता है ॥ ४६ ॥

लोमभ्यः स्वाहेत्येवं हि लोमप्रभृति वै तनुम् ।
मज्जां तां जुहुयाद्वापि मंत्रैरभिर्यथाक्रमम् ॥४७॥
सङ्ग्रामे वाहतो लक्ष्यभूतः शुद्धिमवाप्नुयात् ।
मृतकल्पः प्रहारार्तो जीवन्नपि विशुद्ध्यति ॥४८॥

अथवा (लोमभ्यः स्वाहा) इत्यादि मंत्रों से अपने शरीर के (रोम, खाल, रक्त, मांस, मेद, स्नायु, हड्डी और मज्जा) इन सबको अग्नि में हवन कर दे, तो ब्रह्महत्या से छूट जाता है ॥ ४७ ॥ दो धनुर्विद्या जाननेवाले जहाँ लड़ते हों, उनके बीच में खड़ा होवे, यदि उनके बाणों से मरजाय तो शुद्ध और बहुत घायल होकर जीता बचे तो भी ब्रह्महत्या से शुद्ध होता है ॥ ४८ ॥

अरण्ये नियतो जप्त्वा त्रिर्वै वेदस्य संहिताः ।
शुद्ध्यते वा मिताशी त्वाप्रतिस्रोतःसरस्वतीम् ॥४९॥
पात्रे धनं वा पर्याप्तं दत्त्वा शुद्धिमवाप्नुयात् ।
अदातुश्च विशुद्ध्यर्थमिष्टिर्वैश्वानरी स्मृता ॥५०॥

अपने भोजन का संयम कर (थोड़ा भोजन करे) वन में जाकर सम्पूर्ण वेद का तीन वार पाठ करे, तो भी शुद्ध होता है । अथवा मिताशी (थोड़ा-थोड़ा खाना हुआ) होकर सरस्वती

नदी के तीर-तीर पश्चिम समुद्र जावे, तो शुद्ध होता है ॥ ४९ ॥ अथवा सुपात्र ब्राह्मण को उसके जीवन भर के लिये पूरा द्रव्य दे देवे, तो भी शुद्ध होता है ॥ ५० ॥

याागस्थक्षत्रविड्घाती चरेद्ब्रह्महणि व्रतम् ।
गर्भहा च यथावर्णं तथात्रेयी निपूदकः ॥ ५१ ॥
चरेद्व्रतमहत्वापि घातार्थं चेत्समागतः ।
द्विगुणं सवनस्थे तु ब्राह्मणे व्रतमादिशेत् ॥ ५२ ॥

जो यज्ञ करते हुए क्षत्रिय वा वैश्य को मारे तो ब्रह्महत्या का व्रत करे । जिस वर्ण के गर्भ का पातक करे उस वर्ण के मारने में जो प्रायश्चित्त कहा है, वह करे और रजस्वला स्त्री को मारे तो भी जिस वर्ण की स्त्री हो उसी वर्ण की हत्या का प्रायश्चित्त करे ॥ ५१ ॥ मारने के लिये आवे और किसी कारण से न मारे तो भी वह उतना ही प्रायश्चित्त करे जो मारने में होता है । यदि यज्ञ करते हुए ब्राह्मण को मारे तो दूना प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ ५२ ॥

इति ब्रह्महत्या प्रायश्चित्तप्रकरण ।

सुराम्बुघृतगोमूत्रपयसामग्निसन्निभम् ।
सुरापोऽन्यतमं पीत्वा मरणाच्छुद्धिमृच्छति ॥ ५३ ॥
बालवासा जटी वापि ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् ।
पिण्याकं वा कणान्वापि भक्षयेत्त्रिसमा निशि ॥ ५४ ॥

यदि कोई सुरा पीवे तो मदिरा, जल, घी, गौ का मूत्र और दूध इनमें से किसी एक को अग्नि के समान तपाकर पीवे और उसी से मरजाय तो शुद्धि होती है ॥ ५३ ॥ कंबल पहन कर

और जटा बढ़ाकर ब्रह्महत्या का व्रत करे अथवा तीन वर्ष तक रात्रि के समय एक ही बार पिण्याक (पीना) व चावल के कण (कना) भोजन करे तो भी शुद्ध होता है ॥ ५४ ॥

अज्ञानात्तु सुरां पीत्वा रेतो विण्मूत्रमेव च।
पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥ ५५ ॥
पतिलोकं न सा याति ब्राह्मणी या सुरां पिबेत्।
इहैव सा शुनी गृध्री शूकरी चोपजायते ॥ ५६ ॥

यदि विना जाने सुरा, रेत, विष्ठा अथवा मूत पीलवे तो तीनों द्विज वर्णों का फिर से संस्कार करना चाहिये ॥ ५५ ॥ जो ब्राह्मणी स्त्री सुरा पीवे तो वह पतिलोक को नहीं प्राप्त होती। यहीं कुत्ती, शूकरी और गिद्ध पक्षी की योनि में उत्पन्न होती है ॥५६॥

इति सुरापान प्रायश्चित्तप्रकरण।

ब्राह्मणः स्वर्णहारी तु राज्ञे मुसलमर्पयेत्।
स्वकर्म ख्यापयंस्तेन हतो मुक्तोपि वा शुचिः ॥५७॥
अनिवेद्य नृपे शुध्येत्सुरापव्रतमाचरन्।
आत्मतुल्यं सुवर्णं वा दद्याद्वापि प्रतुष्टिकृत् ॥५८॥

ब्राह्मण का सोना चुरानेवाला अपना कर्म कहके राजा को लोहे का मूसल दे फिर राजा चाहे उस मूसल से उसका वध करे वा छोड़ दे दोनों प्रकार वह शुद्ध होजाता है ॥ ५७ ॥ राजा से निवेदन न करे तो सुरापी का व्रत करने से शुद्ध होता है। अथवा अपने बराबर वा जितने से ब्राह्मण संतुष्ट हो उतना सोना दे तो भी शुद्ध होता है ॥ ५८ ॥

इति स्वर्णस्तेयप्रायश्चित्तप्रकरण।

तप्तेऽयःशयने सार्धमायस्या योषिता स्वपेत् ।
गृहीत्वोत्कृत्य वृषणौ नैर्ऋत्यां चोत्सृजेत्तनुम् ॥५९॥
प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं समा वा गुरुतल्पगः ।
चान्द्रायणं वा त्रीन्मासानभ्यसेद्वेदसंहिताम् ॥६०॥

जो गुरुपत्नी में गमन करे वह लोहे की शय्या और स्त्री बना के उसे इतना तपावे कि लाल होजाय तब उसी स्त्री के संग सोवे अथवा अपना अंड और लिंग काट के अंगुली पर लिये हुए नैर्ऋत्य दिशा में चलते-चलते प्राण त्याग दे तो शुद्ध होता है ॥ ५९ ॥ अथवा तीन वर्ष तक कृच्छ्र प्राजापत्य नाम व्रत करे (इन व्रतों को आगे कहेंगे) वा तीन महीने तक वेदसंहिता का अभ्यास करता हुआ चान्द्रायण व्रत करे तो भी शुद्ध होता है ॥ ६० ॥

इति गुरुतल्पगप्रायश्चित्तप्रकरण ।

एभिस्तु संवसेद्यो वै वत्सरं सोऽपि तत्समः ।
कन्यां समुद्वहेदेषां सोपवासामकिञ्चनाम् ॥ ६१ ॥

इनके साथ जो एक वर्ष रहे वह भी उन्हीं के समान हो-जाता है । इन लोगों की कन्या को उपवास कराके और एक सूत भी पिता का उसके शरीर पर न हो ऐसी रीति से ब्याह ले तो कुछ दोष नहीं है ॥ ६१ ॥

इति संसर्गप्रायश्चित्तप्रकरण ।

चान्द्रायणं चरेत्सर्वानवकृष्टान्निहन्य तु ।
शूद्रोऽधिकारहीनोऽपि कालेनानेन शुद्ध्यति ॥ ६२॥

किसी नीच जाति (सूत मागध आदि) मनुष्य को मारे तो चान्द्रायण व्रत करे । यद्यपि इन सब व्रतों के करने में जप भी

करना होता है और उसमें शूद्र का अधिकार नहीं है परन्तु वह इतने काल के व्रत ही से शुद्ध होजाता है ॥ ६२ ॥

पञ्चगव्यं पिबेद्गोघ्नो मासमासीत संयमः।
गोष्ठेशयो गोऽनुगामी गोप्रदानेन शुद्ध्यति ॥६३॥
कृच्छ्रञ्चैवातिकृच्छ्रञ्च चरेद्वापि समाहितः।
दद्यात्त्रिरात्रं चोपोष्य वृषभैकादशास्तु गाः॥६४॥

जो गौ को मारे वह पञ्चगव्य (गौ का मूत, गोबर, दूध, दही, घी और कुशा का जल) पीकर महीना भरतक इंद्रियों का संयम करके गौ की शाला में सोवे, गौ के पीछे-पीछे दिन में घूमा करे महीना के अन्त में एक गोदान करे तो शुद्ध होता है ॥६३॥ मासभर कृच्छ्रव्रत करे या अतिकृच्छ्र करे अथवा तीन दिन उपवास करके दश गौ और एक बैल दान देवे तो शुद्ध होजाता है ॥ ६४ ॥

इति गोवधप्रायश्चित्तप्रकरण।

उपपातकशुद्धिः स्यादेवं चान्द्रायणेन वा।
पयसा वापि मासेन पराकेणाथवा पुनः ॥ ६५ ॥
ऋषभैकसहस्रा गा दद्यात्क्षत्रवधे पुमान्।
ब्रह्महत्याव्रतं वापि वत्सरत्रितयं चरेत् ॥ ६६ ॥

दूसरे उपपातकों की भी शुद्धि इसी गोवधप्रायश्चित्त से होती है अथवा चान्द्रायणव्रत से या महीना भर दूध पीने से या पराक व्रत करने से भी होती है ॥ ६५ ॥ यदि कोई पुरुष क्षत्रिय को मारे तो एक बैल समेत हजार गोदान देने से वा तीन वर्ष तक ब्रह्महत्या का व्रत करने से शुद्ध होता है ॥ ६६ ॥

वैश्यहाब्दं चरेदेतद्दद्यादेकशतं गवाम् ।
षण्मासाच्छूद्रहोप्येतद्धेनूर्दद्याद्दशाथ वा ॥ ६७ ॥
दुर्वृत्तब्रह्मविट्क्षत्रशूद्रयोषाः प्रमाप्य तु ।
दृतिन्धनुर्बस्तमविं क्रमाद्दद्याद्विशुद्धये ॥ ६८ ॥

वैश्य को मारे तो एक वर्ष ब्रह्महत्या व्रत करे अथवा सौ गो-दान दे तो शुद्ध होता है । और शूद्र का वध करे तो छः महीने ब्रह्महत्या व्रत करे व दश गौ और एक बैल दान देकर शुद्ध होता है ॥ ६७ ॥ यदि ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय और शूद्र की व्य-भिचारिणी स्त्रियों को मारे तो अपनी शुद्धि के लिये क्रम से दृति (चरसा) धनुष, बकरा और भेड़ का दान देवे ॥ ६८ ॥

अप्रदुष्टां स्त्रियं हत्वा शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ।
अस्थिमतां सहस्रं तु तथानस्थिमतामनः ॥ ६९ ॥
मार्जारगोधानकुलमण्डूकाश्च पतत्रिणः ।
हत्वा त्र्यहं पिबेत्क्षीरं कृच्छ्रं वा पादिकं चरेत् ॥ ७० ॥

अदुष्टा (सुशीला) स्त्री को मारे तो शूद्रहत्या का व्रत करे और हज़ार हड्डीवाले तथा एक गाड़ी का बोझ वेहड्डीवाले जीव मारे तो एक शूद्रहत्या का व्रत करे ॥ ६९ ॥ बिल्ली, गोह, ने-उरा, मेढक, कुत्ता और चिड़िया इन्हें मारे तो तीन दिन तक दूध पीकर रहे वा पादकृच्छ्र व्रत करे तो शुद्ध होता है ॥ ७० ॥

गजे नीलवृषाः पञ्च शुके वत्सो द्विहायनः ।
खराजमेषेषु वृषो देयः क्रौञ्चे त्रिहायनः ॥ ७१ ॥
हंसश्येनकपिक्रव्यज्जलस्थलशिखण्डिनः ।
भासं हत्वा च दद्याद्गामक्रव्यादस्तु वत्सिकाम् ॥ ७२ ॥

हाथी को मारे तो पाँच नील वृषभ दान दे, शुक (तोता) मारे तो दो वर्ष का बछरा दान दे। गदहा, बकरा, भेड़ा और क्रौंच पक्षी को मारे तो तीन वर्ष का बछरा दान देवे ॥ ७१ ॥ हंस, बाज, वानर, क्रव्याद (कच्चा मांस खानेवाले गिद्ध, व्याघ्र, शृगाल आदि) जलचर और स्थलचर पक्षी मयूर और भास (पक्षिविशेष) पक्षी को मारे तो एक गोदान दे। क्रव्याद छोड़ औरों को मारे तो बछिया दान दे ॥ ७२ ॥

उरगेष्वायसो दण्डो पण्डके त्रपुसीसकम्।
कोले घृतघटो देय उष्ट्रे गुञ्जा हयेंशुकम् ॥ ७३ ॥
तित्तिरौ तु तिलद्रोणं गजादीनामशक्नुवन्।
दानं दातुं चरेत्कृच्छ्रमेकैकस्य विशुद्धये ॥ ७४ ॥

साँप को मारे तो लोहे का दण्ड दान करे, पण्डक (नंपुसक व जल में रहनेवाला सर्प) को मारे तो पीतल और सीसा दान करे, कोल (शूकर) को मारे तो घी का घड़ा देवे। ऊँट को मारे तो गुंजा (घुंघची) दान देवे। घोड़ा मारे तो वस्त्र दान करे ॥७३॥ तित्तिर मारे तो एक दोना तिल दान करना और हाथी आदि के मारने में जो दान देना कहा है वह न कर सके तो हर एक के बदले एक-एक कृच्छ्र व्रत करे ॥ ७४ ॥

फलपुष्पान्नरजससत्त्वघाते घृताशनम्।
किञ्चित्सास्थिमतां देयं प्राणायामस्त्वनस्थिके ७५॥
वृक्षगुल्मलतावीरुच्छेदने जप्यमृक्शतम्।
स्यादौषधिवृथाच्छेदे क्षीराशी गोऽनुगो दिनम् ॥७६॥

फल, फूल, अनाज और रस (गुड़ आदि) में जो जीव पड़

जाते हैं, इनको मारे तो घी भोजन करे और हड्डीवाले जीव को मारे तो थोड़ा-सा दान दे । विना हड्डी का हो तो एक प्राणायाम करने से शुद्ध होता है ॥ ७५ ॥ यदि कोई प्रयोजन (आम्र आदि) वृक्ष, गुल्म, लता और वीरुध (ये सब व्यवहाराध्याय में कह आये हैं) इन सबोंको काटे तो सौ बार कोई गायत्री आदि ऋचा जपने से शुद्ध होता है । और ओषधियों को व्यर्थ काटे तो दिन भर दूध पीकर रहे और गौ की सेवा करे, इतना विशेष है ॥ ७६ ॥

पुंश्चली वानरखरैर्दष्टश्चोष्ट्रादिवायसैः ।
प्राणायामं जले कृत्वा घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥७७॥
यन्मेऽद्यरेत इत्याभ्यां स्कन्नं रेतोऽभिमन्त्रयेत् ।
स्तनान्तरं भ्रुवोर्मध्ये तेनानामिकया स्पृशेत् ॥७८॥

व्यभिचारिणी स्त्री, वानर, गदहा, ऊँट और कौआ आदि दाँत से काट लेवें तो जल में खड़ा होकर प्राणायाम करे और उस दिन घी खा के रहे तो शुद्ध होता है ॥ ७७ ॥ जिसका वीर्य स्वप्न आदि में अपने आप गिर पड़े तो वह (यन्मेऽद्यरेतः) इत्यादि दोनों मंत्रों से उसका अभिमन्त्रण करे और उसकी छाती के मध्य और भौंह के बीच अनामिका अँगुली से छुआवे ॥ ७८ ॥

मयि तेज इतिच्छायां स्वां दृष्ट्वाम्बुगतां जपेत् ।
सावित्रीमशुचौ दृष्टे चापल्ये चानृतेऽपि च ॥ ७९ ॥
अवकीर्णी भवेद्गत्वा ब्रह्मचारी तु योषितम् ।
गर्दभं पशुमालभ्य नैर्ऋतं स विशुद्ध्यति ॥ ८० ॥

अपनी परछाहीं पीछे आती देखे तो (मयितेजः) इस मंत्र को जपे और किसी अपवित्र मनुष्य को देखे वा चंचलता करे अथवा झूंठ बोले तो गायत्री का जप करे ॥ ७९ ॥ यदि कोई ब्रह्मचारी स्त्री के पास जाय तो वह अवकीर्णी कहलाता है। और गदहा को मार के उसके मांस से निर्ऋति देवता का यज्ञ करे तो शुद्ध होता है ॥ ८० ॥

भैक्ष्याग्निकार्ये त्यक्त्वा तु सप्तरात्रमनातुरः।
कामावकीर्ण इत्याभ्यां जुहुयादाहुतिद्वयम् ॥ ८१ ॥
उपस्थानं ततः कुर्यात्समासिञ्चन्त्वनेन तु।
मधुमांसाशने कार्यः कृच्छ्रः शेषव्रतानि च ॥ ८२ ॥

अनातुर रहे (किसी कार्य से व्याकुल न हो) और सात दिन तक भिक्षा और अग्निहोत्र छोड़ दे तो वह ब्रह्मचारी (कामावकीर्ण) इत्यादि दो मंत्रों से दो आहुति हवन करके ॥ ८१ ॥ समासिञ्चन्तु, इस मन्त्र से अग्नि का उपस्थान करे। जो ब्रह्मचारी मधु व मांस खा लेवे तो कृच्छ्रव्रत उसके प्रायश्चित्त के लिये करे और फिर जो उसके व्रत शेष रहे हों, उनको समाप्त करे ॥८२॥

प्रतिकूलं गुरोः कृत्वा प्रसाद्यैव विशुद्ध्यति।
कृच्छ्रत्रयं गुरुः कुर्यान्म्रियते प्रहितो यदि ॥ ८३ ॥
क्रियमाणोपकारे तु मृते विप्रे न पातकम्।
विपाके गोवृषाणाञ्च भेषजाग्निक्रियासु च ॥ ८४ ॥

गुरु की इच्छा के विरुद्ध कोई काम ब्रह्मचारी करे तो गुरु को प्रसन्न कराने ही से शुद्ध होता है। और जो गुरु किसी ऐसे काम को भेजे कि ब्रह्मचारी मर जाय तो गुरु तीन कृच्छ्र व्रत

करे ॥ ८३ ॥ यदि कोई औषध देने वा अन्न खिलाने आदि से ब्राह्मण और गौ का उपकार कर रहा हो, संयोग से वह गौ वा ब्राह्मण मर जाय तो औषध आदि हित वस्तु देनेवाले को पाप नहीं लगता ॥ ८४ ॥

मिथ्याभिशंसिनो दोषो द्विःसमो भूतवादिनः ।
मिथ्याभिशस्तदोषञ्च समादत्ते मृषा वदन् ॥ ८५
महापापोपपापाभ्यां योभिशंसेन्मृषापरम् ।
अब्भक्षो मासमासीत स जापी नियतेन्द्रियः ॥८६

जो किसी को मिथ्या ही दोष लगावे तो उसको दूना दोष लगता है । और सत्य भी किसी का दोष हो उसको वे पूछे आपसे आप कहता फिरे तो उतना ही दोष उसको लगता है जो झूठमूठ दोष लगाता है, वह केवल दूना दोष ही नहीं पाता, किन्तु जिसको दोष लगाता है, उसने जो पाप किये हों, सब उसको लगते हैं ॥ ८५ ॥ महापातक और उपपातक का दोष जो झूठमूठ दूसरे को लगावे, वह इन्द्रियों का संयम करके महीने भर तक जप करता रहे और केवल जल पीके रहे, अन्न न खावे ॥ ८६ ॥

अभिशस्तो मृषाकृच्छ्रञ्चरेदाग्नेय मेव च ।
निर्वपेत्तु पुरोडाशं वायव्यं पशुमेव वा ॥ ८७ ॥
अनियुक्तो भ्रातृजायां गच्छंश्चान्द्रायणं चरेत् ।
त्रिरात्रान्ते घृतं प्राश्य गतोदक्या विशुद्ध्यति ॥८८॥

जिसको झूठमूठ दोष लगाया गया हो, वह कृच्छ्र प्राजापत्य करे वा अग्निदेव का पुरोडाश (हविष्य) बनाकर यज्ञ करे अथवा वायु देवता के पशु से यज्ञ करे ॥ ८७ ॥ बड़े लोगों की

आज्ञा के बिना ही जो भाई की स्त्री में गमन करता है, वह चान्द्रायण व्रत करे और रजस्वला स्त्री में गमन करे तो तीन दिन उपवास कर घी खावे तो शुद्ध होता है ॥ ८८ ॥

त्रीन् कृच्छ्रानाचरेद्व्रात्ययाजकोऽभिचरन्नपि ।
वेदप्लावी यवान्यब्दं त्यक्त्वा च शरणागतम् ॥८९॥
गोष्ठे वसन् ब्रह्मचारी मासमेकं पयोव्रतः ।
गायत्रीजाप्यनिरतः शुद्ध्यते सत्प्रतिग्रहात् ॥ ९० ॥

जो व्रात्य (पतित सावित्री) को यज्ञ करावे वह तीन कृच्छ्रव्रत करे और किसी का अभिचार (कष्ट देने वा मारने का उद्योग) करे तो भी तीन कृच्छ्र करे । जो अनध्याय में वा शूद्र के सामने वेद पढ़े वह और जो अपनी शरण आये को निकाल दे वह भी एक वर्ष भर यव का भात खाकर व्रत किया करे, तो शुद्ध होता है ॥ ८९ ॥ यदि किसी निषिद्ध मनुष्य का दान ग्रहण करे तो ब्रह्मचर्य धारण करके महीना भर दूध पीता और गायत्री जपता हुआ गोशाला में वास करे तो शुद्ध होता है ॥९०॥

इत्युपपातकप्रायश्चित्तप्रकरण ।

प्राणायामी जले स्नात्वा खरयानोष्ट्रयानगः ।
नग्नःस्नात्वा च भुक्त्वा च गत्वा चैव दिवा स्त्रियम् ॥९१
गुरुं तुंकृत्य हुंकृत्य विप्रं निर्जित्य वादतः ।
बद्ध्वा वा वाससा क्षिप्रं प्रसाद्योपवसेद्दिनम् ॥ ९२ ॥

जिस रथ में गदहे वा ऊँट नधे हों उस पर चढ़ के कहीं जावे अथवा नंगा होकर नहावे वा भोजन करे या दिन को अपनी स्त्री के पास जावे तो जल में स्नान करके प्राणायाम करे, तो शुद्ध

होता है ॥ ९१ ॥ गुरु (अपने से बड़ा पिता आदि) को तुकारी मारे, ब्राह्मण को क्रोध से हुंकर डाट दे अथवा वस्त्र गले में डाल ब्राह्मण को बाँधे, तो झटपट उसके पाँवपर गिर के प्रसन्न करे। और दिनभर उपवास करे तो शुद्ध होता है ॥ ९२ ॥

विप्रदण्डोद्यमे कृच्छ्रस्त्वतिकृच्छ्रो निपातने ।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रोसृक्पाते कृच्छ्रोभ्यन्तरशोणिते ॥ ९३

ब्राह्मण को मारने के लिये लाठी आदि उठावे तो कृच्छ्र व्रत करे, चला देवे तो अतिकृच्छ्र व्रत करे। जो लहू निकाले तो कृच्छ्राति-कृच्छ्र व्रत करे और भीतर लहू हो आवे, तो भी कृच्छ्र व्रत करे ॥ ९३ ॥

इति प्रकीर्णकप्रकरण ।

देशकालं वयः शक्तिं पापं चावेक्ष्य यत्नतः ।
प्रायश्चित्तं प्रकल्प्यं स्याद्यत्र चोक्ता न निष्कृतिः ९४

जिस पाप का प्रायश्चित्त नहीं कहा है उस पाप को देखना और देशकाल को देखना फिर उसके अनुसार प्रायश्चित्त की कल्पना कर लेना ॥ ९४ ॥

दासीकुम्भं बहिर्ग्रामान्निनयेरन्स्वबान्धवाः ।
पतितस्य बहिः कुर्युः सर्वकार्येषु चैव तम् ॥ ९५ ॥
चरितं व्रत आयाते निनयेरन्नवं घटम् ।
जुगुप्सेरन्नवाप्यैनं संविशेयुश्च सर्वशः ॥ ९६ ॥

जिसको पाप लगा हो और वह अपनी जाति के लोगों के कहने पर भी प्रायश्चित्त न करे तो उसके जाति और बान्धव लोग मिल के उसके नाम का जल से भरा हुआ घड़ा दासी के

हाथ गाँव से बाहर निकाल देवें उस पतित को फिर हर एक प्रकार से व्यवहार से अलग रक्खें ॥ ६५ ॥ यदि घड़ा निकालने पर कुछ सूझे और प्रायश्चित्त करके फिर अपने जाति भाइयों के निकट आवे तो वे लोग इकट्ठे होकर उसके साथ नये घड़े में पानी मँगा के पीवें और उसकी निन्दा भी कभी न करें और सब व्यवहार में उसका संग्रह रक्खें ॥ ६६ ॥

पतितानामेष एव विधिः स्त्रीणां प्रकीर्तितः।
वासो गृहान्तिकं देयमन्नं वासः सरक्षणम् ॥ ६७ ॥
नीचाभिगमनं गर्भपातनं भर्तृहिंसनम्।
विशेषपतनीयानि स्त्रीणामेतान्यपि ध्रुवम् ॥ ६८ ॥

यही विधि पतित स्त्रियों की भी है। केवल इतना विशेष है कि अपने घर के निकट कोई झोपड़ी उनके रहने को लगा देनी और अन्न वस्त्र साधारण रीति से दिया करना और इस बात की रक्षा भी रक्खे कि वह अभिचार आदि न करने पावें ॥६७॥ नीच जाति के पुरुष के पास जाना, गर्भ गिराना और अपने पति का वध करना इन सब कामों से विशेष करके स्त्री पतित होती है और महापातक आदि से भी पतित होती है ॥ ६८ ॥

शरणागतबालस्त्रीहिंसकान्संविशेन्न तु।
चीर्णव्रतानपि सतः कृतघ्नसहितानिमान् ॥ ६६ ॥
घटेऽपवर्जिते ज्ञातिमध्यस्थो यवसं गवाम्।
प्रदद्यात्प्रथमं गोभिः सत्कृतस्य हि सत्क्रिया ॥२००॥

शरणागत बालक और स्त्री को मारनेवाला जो प्रायश्चित्त कर भी डाले तो भी उसके साथ खानपान का व्यवहार न

करना । यही रीति कृतघ्नी की भी समझना चाहिये ॥ ९९ ॥ जिसका घड़ा निकाला गया हो वह फिर प्रायश्चित्त करके जाति में मिलने आया हो तो पहले सब जाति बन्धुओं के बीच अपने हाथ से गौ को यवस (कोमल घास) खिलावे तो जाति के लोग भी उसका सत्कार करें नहीं तो नहीं ॥ ३०० ॥

विख्यातदोषः कुर्वीत पर्षदोऽनुमतं व्रतम् ।
अनभिख्यातदोषस्तु रहस्यं व्रतमाचरेत् ॥ १ ॥

जिसके पाप को जाति या गाँव के लोग जानगये हों तो वह पर्षत् के कहने के अनुसार प्रायश्चित्त करे और जिसका कोई न जानते हों वह रहस्य व्रत करने से ही शुद्ध होता है ॥ १ ॥

इति प्रकशिप्रायश्चित्तप्रकरण ।

त्रिरात्रोपोषितो जप्त्वा ब्रह्महा त्वघमर्षणम् ।
अन्तर्जले विशुध्येत दत्त्वा गां च पयस्विनीम् ॥ २ ॥
लोमभ्यः स्वाहेत्यथवा दिवसं मारुताशनः ।
जले स्थित्वाऽग्निं जुहुयाच्चत्वारिंशत् घृताहुतीः ॥ ३ ॥

ब्रह्मघाती का रहस्य व्रत यह है कि तीन दिन उपवास करके जल के भीतर अघमर्षणमंत्र तीन वार जपे और दूध देनेवाली गौ ब्राह्मण को दे तो शुद्ध होता है ॥ २ ॥ अथवा एक दिन रात भूखा रहे और उसी रात भर जल में खड़ा रहे । प्रातःकाल जल से निकल (लोमभ्यः स्वाहा) इन आठ मन्त्रों से चालीस आहुति (अर्थात् हर एक से पाँच आहुति) घी की करे ॥ ३ ॥

त्रिरात्रोपोषितो हुत्वा कूष्माण्डीभिर्घृतं शुचिः ।
ब्राह्मणः स्वर्णहारी तु रुद्रजापी जले स्थितः ॥ ४ ॥

सहस्रशीर्षा जापी तु मुच्यते गुरुतल्पगः ।
गौर्देया कर्मणोस्यान्ते पृथगेभिः पयस्विनी ॥ ५ ॥

सुरापी हो तो तीन दिन उपवास करे और कूष्माण्डी नाम ऋचा से चालीस आहुति आग में दे तो शुद्ध होता है । और ब्राह्मण का सोना चुरावे तो तीन दिन उपवास करके जल में खड़ा हो रुद्रीपाठ करने से शुद्ध होता है ॥ ४ ॥ गुरुपत्नी में गमन करनेवाला तीन उपवास के अनन्तर (सहस्रशीर्षा) मंत्रों को जपने से शुद्ध होता है । और इन सबोंको अपने-अपने व्रत करने के बाद एक दूध देनेवाली गौ देनी चाहिये ॥ ५ ॥

इति महापातकरहस्यप्रायश्चित्तप्रकरण ।

प्राणायामशतं कार्यं सर्वपापापनुत्तये ।
उपपातकजातानामनादिष्टस्य चैव हि ॥ ६ ॥

उपपातक और जिनका प्रायश्चित्त नहीं कहा है ऐसे पापों की शुद्धि सौ प्राणायाम करने से होती है ॥ ६ ॥

ॐकाराभिष्टुतः सोमसलिलं पावनं पिबेत् ।
कृत्वा तु रेतोविरामूत्रप्राशनन्तु द्विजोत्तमः ॥ ७ ॥
निशायां वा दिवा वापि यदज्ञानकृतं भवेत् ।
त्रैकाल्यसंध्याकरणात्तत्सर्वं विप्रणश्यति ॥ ८ ॥

यदि ब्राह्मण भूल से रेत (वीर्य) विष्ठा और मूत्र मुँह में डाल ले तो गले भर जल में खड़ा होकर महाव्याहृति पढ़ के सोमलता का जल पीवे तो शुद्ध होता है ॥ ७ ॥ रात वा दिन में जो उपपातक पाप अज्ञान से होता है वह तीनों काल की सन्ध्या करने से दूर होजाता है ॥ ८ ॥

शुक्रियारण्यकजपो गायत्र्याश्च विशेषतः ।
सर्वपापहरा ह्येते रुद्रैकादशिनी यथा ॥ ९ ॥
यत्र यत्र च संकीर्णमात्मानं मन्यते द्विजः ।
तत्र तत्र तिलैर्होमो गायत्र्याश्च विशेषतः ॥ १० ॥

शुक्रिय, आरण्यक और विशेष से गायत्री तथा ग्यारहों प्रकार के रुद्र अनुवाक इन सब मंत्रों का जप सब पापों के प्रायश्चित्त में करना चाहिये ॥ ९ ॥ जहाँ-जहाँ जब-जब द्विज अपने को पापी समझे तहाँ-तहाँ तिल और गायत्री से होम करे और तिलदान करे फिर शुद्ध होजाता है ॥ १० ॥

वेदाभ्यासरतं क्षान्तं पञ्चयज्ञक्रियापरम् ।
न स्पृशन्तीह पापानि महापातकजान्यपि ॥ ११ ॥
वायुभक्षो दिवातिष्ठन् रात्रिं नीत्वाप्सु सूर्यदृक् ।
जप्त्वा सहस्रं गायत्र्याः शुध्येद्ब्रह्मवधादृते ॥ १२ ॥

वेद के अभ्यास में रत, क्षमायुक्त और बड़ी यज्ञक्रिया करनेवाले द्विज को महापातक के पाप भी नहीं लगते ॥ ११ ॥ दिनभर उपवास कर रहे और जल में खड़ा होकर रात बितावे जब सूर्य देख पड़ें तो हज़ार गायत्री का जप करे तब ब्रह्महत्या को छोड़ और सब पाप दूर होजाते हैं ॥ १२ ॥

इति रहस्यप्रायश्चित्तप्रकरण।

ब्रह्मचर्यं दया क्षान्तिर्दानं सत्यमकल्पता ।
अहिंसास्तेयमाधुर्यं दमश्चेति यमाः स्मृताः ॥ १३ ॥
स्नानं मौनोपवासेज्यास्वाध्यायोपस्थनिग्रहाः ।
नियमा गुरुशुश्रूषा शौचाक्रोधो प्रमादतः ॥ १४ ॥

ब्रह्मचर्य (सकल इन्द्रियों का संयम), दया, क्षांति (सहना), दान देना, सच बोलना, कुटिलता न रखनी, हिंसा और चोरी न करनी, मधुरवाणी बोलना और ज्ञानेन्द्रियों का दमन करना ये यम कहलाते हैं ॥ १३ ॥ स्नान करना, मौन रहना, उपवास करना, देवपूजन, वेद पढ़ना, लिंग का निग्रह रखना, गुरु की सेवा, शुद्ध रहना और क्रोध तथा प्रमाद न करना ये सब नियम कहे जाते हैं ॥१४॥

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।
जग्ध्वा परेऽह्युपवसेत्कृच्छ्रं सान्तपनं परम् ॥ १५ ॥
पृथक्सान्तपनं द्रव्यैः षडहः सोपवासकः ।
सप्ताहेन तु कृच्छ्रायं महासान्तपनः स्मृतः ॥ १६ ॥

एक दिन गौ का मूत्र, गोबर, दूध, दही, घी और कुश का जल पीकर रहे और दूसरे दिन शुद्ध उपवास करे, तो वह सांतपनकृच्छ्र नाम व्रत कहाता है ॥ १५ ॥ जो सांतपन में गोमूत्र आदि छः वस्तु कहे हैं, उन हर एक से एक-एक दिन काटे और सातवें दिन शुद्ध उपवास करे, तो सात दिन में महासान्तपन नाम कृच्छ्र होता है १६

पर्णोदुम्बरराजीवबिल्वपत्रकुशोदकैः ।
प्रत्येकं प्रत्यहं पीतैः पर्णकृच्छ्र उदाहृतः ॥ १७ ॥
तप्तक्षीरघृताम्बूनामेकैकं प्रत्यहं पिबेत् ।
एकरात्रोपवासश्च तप्तकृच्छ्र उदाहृतः ॥ १८ ॥

पलाश, उदुम्बर (गूलर), कमल और बिल्वपत्र इन प्रत्येक के पत्तों को एक-एक दिन पानी में काढ़ के* उस जल को पीवे और पाँचवें दिन कुशका जल पीकर रहे, तो पर्णकृच्छ्र नाम व्रत होता है॥१७॥ दूध, घी और पानी इन हर एकको तपाकर एक-एक दिन पीवे और चौथे दिन शुद्ध उपवास करे तो वह तप्तकृच्छ्र व्रत कहलाता है॥१८॥

एकभुक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ।
उपवासेन चैवायं पादकृच्छ्रः प्रकीर्त्तितः ॥ १९ ॥

---

* अवट कर ।

यथाकथञ्चित् त्रिगुणः प्राजापत्योयमुच्यते ।
अयमेवातिकृच्छ्रः स्यात्पाणिपूरान्नभोजनः ॥ २० ॥

एक दिन एक ही वार मध्याह्न में भोजन करे, दूसरे दिन रात को, तीसरे दिन विना माँगे मिले तो भोजन करे और चौथे दिन शुद्ध उपवास करे तो यह पादकृच्छ्र कहलाता है ॥ १९ ॥ यही पादकृच्छ्र चाहे जिस तौर तिगुना (बारह दिन तक) करे, तो प्राजापत्य कहलाता है । और यही व्रत पहले तीन दिनों को एक मूठी अन्न खाकर वितावे तो अतिकृच्छ्र कहलाता है ॥ २० ॥

कृच्छ्रातिकृच्छ्रः पयसा दिवसानेकविंशतिम् ।
द्वादशाहोपवासेन पराकः परिकीर्त्तितः ॥ २१ ॥
पिण्याकाचामतक्राम्बुसक्तूनाम्प्रतिवासरम् ।
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रः सौम्योयमुच्यते ॥ २२ ॥

केवल दूध पीकर इक्कीस दिन वितावे, तो कृच्छ्रातिकृच्छ्र व्रत कहलाता है । और बारह दिन उपवास करने से पराक व्रत होता है ॥ २१ ॥ पीना (तिल की खली) आचाम (मांड़-भात का पसेव) तक्र (माठा-छांछ-लस्सी) जल और सत्तू इन हर एक को एक-एक दिन पीकर पाँच दिन और छठाँ दिन उपवास से बितावे तो सौम्यकृच्छ्र व्रत होता है ॥ २२ ॥

एषां त्रिरात्रमभ्यासादेकैकस्य यथाक्रमम् ।
तुलापुरुष इत्येष ज्ञेयः पञ्चदशाहिकः ॥ २३ ॥
तिथिवृद्ध्याचरेत्पिण्डान् शुक्ले शिख्यण्डसम्मितान् ।
एकैकं ह्रासयेत्कृष्णे पिण्डं चान्द्रायणं चरन् ॥ २४ ॥

पीना आदि पाँचों चीज़ों में हर एक को क्रम से तीन-तीन दिन खावे तो यह पन्द्रह दिन का तुलापुरुष नाम व्रत होता है ॥ २३ ॥ चान्द्रायण व्रत का यह विधान है कि शुक्ल पक्षमें जैसे-जैसे तिथि बढ़ती जावें उतना ही अन्नका ग्रास बढ़ाते जाना और कृष्णपक्ष में एक-एक घटाते जाना । ग्रास का प्रमाण मयूरके अण्डाके समान रखना चाहिये २४

यथाकथञ्चित्पिण्डानां चत्वारिंशच्छतद्वयम्।
मासेनैवोपभुञ्जीत चान्द्रायणमथापरम्॥ २५॥
कुर्यात्त्रिषवणस्नायी कृच्छ्रं चान्द्रायणं तथा।
पवित्राणि जपेत्पिण्डान् गायत्र्याचाभिमन्त्रयेत् २६

अथवा जिस प्रकार महीना भर में, दोसौ चालीस ग्रास भोजन करे तो भी चान्द्रायण व्रत होजाता है॥ २५॥ चान्द्रायण वा कृच्छ्र व्रत करे, तो तीनों काल स्नान करे, पवित्र मंत्रों का जप करे और जो ग्रास भोजन करने हों उन्हें गायत्री से अभिमंत्रित कर लेवे॥२६॥

अनादिष्टेषु पापेषु शुद्धिश्चान्द्रायणेन तु।
धर्मार्थं यश्चरेदेतच्चन्द्रस्यैति सलोकताम्॥ २७॥
कृच्छ्रकृद्धर्मकामस्तु महतीं श्रियमाप्नुयात्।
तथा गुरुक्रतुफलं प्राप्नोति सुसमाहितः॥ २८॥

जो पाप नहीं गिनाये हैं उनमें चान्द्रायण करने से शुद्धता होती है। और जो धर्म के अर्थ इस व्रत को करता है वह चंद्रलोक में प्राप्त होता है॥ २७॥ जो धर्म की कामना से बहुत सावधान होकर कृच्छ्र व्रत करता है उसके बड़ी लक्ष्मी आदि विभूति होती हैं। जिस प्रकार राजसूय आदि बड़े-बड़े यज्ञों का फल अवश्य होता है वैसा इनका भी समझना चाहिये॥२८॥

श्रुत्वैतानृषयो धर्मान्याज्ञवल्क्येन भाषितान्।
इदमूचुर्महात्मानं योगीन्द्रममितौजसम्॥ २९॥
य इदन्धारयिष्यन्ति धर्मशास्त्रमतन्द्रिताः॥
इह लोके यशः प्राप्य ते यास्यन्ति त्रिविष्टपम्॥३०॥

याज्ञवल्क्य मुनि के मुख से इन धर्मों को सुनकर ऋषि लोग उन महात्मा तेजस्वी और योगिश्रेष्ठ से फिर बोले॥ २९॥ जो लोग आलस छोड़कर इस धर्मशास्त्र को धारण करेंगे वे इस लोक में यश और अन्त में स्वर्ग पावेंगे॥ ३०॥

विद्यार्थी प्राप्नुयाद्विद्यां धनकामो धनं तथा ।
आयुःकामस्तथाचायुःश्रीकामो महतीं श्रियम् ॥ ३१ ॥
श्लोकत्रयमपि ह्यस्माद्यः श्राद्धे श्रावयिष्यति ।
पितॄणां तस्य तृप्तिः स्यादक्षया नात्र संशयः ॥ ३२ ॥

विद्यार्थी विद्या, धन की इच्छा करनेवाला धन, आयु चाहनेवाला आयु पाता है । और जो श्री (शोभा आदि) चाहे, तो उसकी श्री बढ़ती है ॥ ३१ ॥ जो श्राद्धसमय इसमें-से तीन श्लोक भी सुनावेगा तो उसके पितरों को अक्षय तृप्ति प्राप्त होगी इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३२ ॥

ब्राह्मणः पात्रतां याति क्षत्रियो विजयी भवेत् ।
वैश्यश्च धान्यधनवानस्य शास्त्रस्य धारणात् ॥ ३३ ॥
य इदं श्रावयेद्विद्वान् द्विजान् पर्वसु पर्वसु ।
अश्वमेधफलं तस्य तद्भवाननुमन्यताम् ॥ ३४ ॥

ब्राह्मण इस शास्त्र को पढ़े तो सुपात्र होजाता है क्षत्री विजयी और वैश्य भी धन-धान्य से युक्त होता है ॥ ३३ ॥ जो पण्डित इस धर्मशास्त्र को हर एक पर्व में द्विजों को सुनावे उसको अश्वमेध यज्ञ का फल होता है । इन सब बातों की भी अनुमति आप करें ॥ ३४ ॥

श्रुत्वैतद्याज्ञवल्क्योऽपि प्रीतात्मा मुनिभाषितम् ।
एवमस्त्विति होवाच नमस्कृत्वा स्वयम्भुवे ॥ ३५ ॥

इति श्रीयाज्ञवल्कीये धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इस प्रकार मुनियों का वचन सुनकर, याज्ञवल्क्यजी ने भी प्रसन्न होकर और परमात्मा को नमस्कार करके कहा कि ऐसा ही होवे ॥ ३५ ॥

श्रीयाज्ञवल्क्यस्मृति में प्रायश्चित्ताध्याय समाप्त ।

हरिः ॐ तत्सत् ।